दयानन्द चरित

(बङ्गला दयानन्दचरितका भाषानुवाद)

लेखक—

श्रीयुत देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

अनुवादक—

श्री बाबू घासीराम जी एम. ए. एल. एल. बी.

मेरठ।

प्रकाशक—

गोविन्दराम हासानन्द

आर्य साहित्य-भवन, नई सड़क, देहली।

तृतीयवार १०००] १६४६ [मूल्य अ० २।) स० २॥)

दयानन्द चरित-विषय-सूची

ओ३म्

अनुवादक की भूमिका

पाठकगण ! आज हम श्रीदेवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित बंगला पुस्तक 'दयानन्दचरित' का अनुवाद आर्यभाषामें आपकी भेंट करते हैं। हमें भय है कि आप स्यात् यह कह उठें कि जब कि अनेक आर्य महानुभावोंके लिखे हुए उत्तम-से-उत्तम ऋषिके जीवनचरित्र उपस्थित हैं, तो एक बंगाली लेखककी पुस्तकका, जो स्यात् स्वयं किसी आर्यसमाजका सभासद् भी नहीं है, अनुवाद पाठकोंके शिर मंढना कहाँ तक उपयोगी हो सकता है। हम कहेंगे कि हमारे इस अनुवादके प्रकाशित करनेका मुख्य कारण ही यह है कि 'दयानन्दचरित' के लेखकका नाम आर्यसमाजके रजिस्टरोंकी शोभा नहीं बढ़ाता। यदि 'दयानन्द-चरित' किसी आर्यसमाजस्थ बंगालीका लिखा हुआ होता, तो कदाचित हम स्वयं उसको आर्यभाषाके वस्त्र पहनानेको उद्यत न होते और आपको भी उसको इस प्रकारसे अलंकृत देखनेका कष्ट उठाना न पड़ता।

हमारी सम्मतिमें ऋषिके एक दो जीवनचरित्रोंको छोड़ कर शेष जीवन चरित्र कहलानेकी योग्यता नहीं रखते। जीवनचरित्र-लेखकका सबसे आवश्यक गुण यह है कि वह स्वयं अपने विषयको जानता हो और चरित्रनायकके जीवनकी घटनाओंके

विषयको जानता हो और चरित्रनायकके जीवनकी घटनाओंके

विषयमें उसने स्वयं अनुसन्धान किया हो; चरित्रनायकसे हार्दिक प्रेम रखने वाला और उसके भावोंको समझने वाला और उनसे सहानुभूति रखने वाला हो। परन्तु निष्पक्ष भी ऐसा हो कि चरित्रनायकके किसी दोष वा स्खलनको छिपाना या उसको गुण-रूपसे प्रदर्शित करना वैसा ही पाप समझता हो जैसा उसके सद्गुणोंको अन्यथा वा अयथा रूपसे प्रकट करना। उसकी लेखनी भी ऐसी हो जो अपने विषयको चित्रके समान पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर सके और भूतको वर्तमान करके दिखला सके। जीवनचरित्र लेखकोंका कार्य केवल यही है कि दूसरेकी संग्रह की हुई सामग्रीको ही थोड़े बहुत परिवर्तनके साथ पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत कर दें। जिनमें न कल्पनाशक्ति हो, न प्रेम और सहानुभूति हो, न उदारशीलता और न्यायप्रियता हो, जिन्होंने न स्वयं कुछ विचारा हो न स्वयं कुछ अनुसन्धान किया हो और केवल दूसरेके घर पर ही त्यौहार मनाना जानते हों, उनको चरित्रलेखककी पदवी देना मानो इस शब्दकी अप्रतिष्ठा करना है।

यह बड़े दुःख और खेदका विषय है कि अब तक आर्य-समाजने ऋषिका एक भी (पूर्ण अर्थमें) सच्चा चरित्रलेखक उत्पन्न नहीं किया। श्रीमान् पण्डित लेखराम आर्यपथिकने अवश्य ही ऋषि सम्बन्धी घटनाओंका पता लगानेमें भूरि परिश्रम और प्रयास किया था, और यदि घातककी छुरी उनके देह-शाखाको जीवन-वृक्षसे असमय पर अलग न कर देती, तो हमें आशा थी कि आर्यसमाजके मस्तकसे ऋषिके सच्चे चरित्र न लिखे जानेका कलङ्कका टीका, जिसके कारण वह साहित्य-संसारमें आँखें ऊँची नहीं कर सकता, धुल जाता। जो काम आर्यसमाजियोंको ऋषिके परलोक गमनके पश्चात् ही एक दो वर्षके भीतर करना

चाहिये था, जिसको वे अभी तक भी सुसम्पादित नहीं कर सके हैं, वही कार्य एक बंगाली सुलेखकने आजसे १६ वर्ष पूर्व सम्पादित करके बंगला-साहित्यके गौरव और श्रीको बढ़ाया था। जिस समय यह ग्रन्थ बंगलामें प्रकाशित हुआ, उस समय समाचार-पत्रोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और ग्रन्थकर्त्ताकी ओजस्विनी लेखिनीका यशोगान किया था। इस यशोगानमें योग देने वाले आर्यपत्रिका सरीखे आर्यसमाजिक पत्र भी थे और उन्होंने यह सम्मति प्रकट की थी कि ग्रन्थका आर्यभाषामें अनुवाद हो जानेसे बहुत लाभ होगा। परन्तु शोक है कि अभीतक उसका अनुवाद नहीं हो पाया। हमने पुस्तकको सब प्रकारसे उपयोगी और चरित्रलेखनकी प्रणालीके अनुसार लिखा हुआ पाकर उसका अनुवाद किया है। आशा है पाठकगण उसको रोचक और शिक्षाप्रद पायेंगे।

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय बंगालके सुप्रसिद्ध लेखकोंकी श्रेणीमें परिगणित होते हैं। उन्होंने कई उत्तम ग्रन्थ लिख कर बङ्गला-साहित्यके कोषमें वृद्धि की है। वह चरित्र-लेखनमें सिद्धहस्त हैं और इससे पहले 'सेंटपालचरित' आदि कई सुपाठ्य जीवनी लिख चुके हैं; परन्तु 'दयानन्दचरित' उनके लिखे हुए जीवन-चरित्रों में सर्वोत्तम है। इसके लिखनेमें उन्होंने अपना बहुमूल्य समय और धन व्यय किया है। पाठकगणको आश्चर्य होगा जब हम उन्हें यह बतलायेंगे कि उन्होंने अपने जीवनका बड़ा और उत्तम भाग ऋषिजीवनकी सामग्री एकत्रित करनेमें अर्पण कर दिया है। उन्होंने सुदूरवर्त्ती बङ्गालसे स्वामीजीके जन्मस्थान और उनके शैशवकी घटनाओंके अनुसन्धान और अनुशीलनके अभिप्रायसे कई वार काठियावाड़की यात्रा की है और ग्राम-ग्राममें फिर कर वृद्ध नारी-पुरुषोंसे पूछताछ करके, पुराने कार्यालयोंके पुराने पांशु-

आच्छादित और कृमिभुक्त पत्रोंको पढ़ कर ऋषिके कुल, जन्म-स्थान आदि सम्बन्धी अनेक घटनाओंका पता लगाया है। इसमें उन्हें जो कुछ कष्ट हुआ है वह उन्होंने लोभादिके नीचभावसे प्रेरित होकर नहीं उठाया। वह केवल उस प्रेम और भक्तिके कारण ही सहन किया है जो उन्हें ऋषिके जीवन और उनके धार्मिक संशोधनके साथ है। वह लगभग २० वर्षसे इस पवित्र कार्यमें लगे हुए हैं और इतने परिश्रमके पश्चात् अब उनको सन्तोष हुआ है कि वह ऋषिके जीवनको सर्वाङ्गसुन्दर और सर्वकलासम्पन्न रूपमें पबलिककी भेंट कर सकेंगे। उनका अनुमान है कि जितनी सामग्री वह अबतक एकत्रित कर सके हैं वह इतनी है कि तीन बृहदाकार वाली पुस्तकोंसे कममें न समा सकेगी और न्यून-से-न्यून दो वर्ष उनको इस बृहद्जीवन चरित्रके लिखनेमें लगेंगे। ईश्वर करे कि उनका यह पवित्र संकल्प निर्विघ्नतया समाप्त हो। हमें दृढ़ विश्वास है कि जब उक्त ग्रन्थ प्रकाशित होगा तो उससे ऋषिजीवनके बहुतसे अंशों पर प्रकाश पड़ेगा और ऋषिकी कीर्त्ति और कान्ति और भी प्रोज्ज्वल होगी, जिसकी ज्योति अनेक दिग्भ्रान्त पथिकोंको मार्गदर्शन करायेगी।

यह लघु ग्रन्थ अगत्य अपूर्ण है। जैसा स्वयं ग्रन्थकारने स्वीकार किया है। केवल यही नहीं कि उसमें ऋषिके जीवनकी कतिपय घटनाओंका जो अन्य जीवन-चरित्रोंमें मिलती हैं उल्लेख नहीं है, वरन् उसमें जीवन-चरित्रके अत्यावश्यक और मुख्य अंशका सर्वथा अभाव है। किसी महापुरुषके जीवनकी साधारण घटनओंका उल्लेख और विशेष घटनाओंका वर्णन इतना लाभदायक नहीं होता जितना उसके कार्यका विवरण और उससे उत्पन्न होने वाली शिक्षाओंका प्रकाशन। इस अंशके विना कोई जीवनचरित्र पूर्ण नहीं कहा जा सकता। परन्तु हमारा यह

अभिप्राय नहीं है कि जिस जीवन-चरित्रमें यह अंश न हो वह सर्वथा अनावश्यक और प्रयोजनशून्य है। ग्रन्थकर्त्ताने इस अंशके न होने पर भी ग्रन्थको बहुत ही सुपाठ्य और रोचक बना दिया है, और उसको पढ़ कर कोई यह नहीं कह सकता कि ग्रन्थमें कोई त्रुटि व न्यूनता रह गई है। अवतरणिका तो ग्रन्थकर्त्ताने असाधारण योग्यताके साथ लिखी है। उसके पढ़नेसे उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार विदित होता है, उनकी विद्वत्ता, गवेषणा, कल्पनाशक्ति और शब्दचातुर्यका परिचय मिलता है, और कई भाग तो उसमें ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर मनुष्य वास्तवमें मुग्ध हो जाता है। यद्यपि हम यह नहीं मानते कि संसारमें ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति उसी ढंगसे हुई जिस ढंगसे विकासवाद वाले मानते हैं जिनका अनुकरण ग्रन्थकर्त्ताने भी किया है, तथापि हम ग्रन्थकर्त्ताके इस सिद्धान्तसे सहमत हैं कि आर्यजाति ही संसारमें पहिली जाति थी जिसने ब्रह्मवादकी ज्योतिको देखा और औरोंको दिखलाया। हमारा पूर्ण विश्वास है कि मनुष्य अपने स्वाभाविक ज्ञानको शनैः २ बढ़ा कर ईश्वरका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। ईश्वरका ज्ञान जबतक ईश्वर की ओरसे उसे न दिया जायगा, तब तक वह कदापि स्वयं उसको प्राप्त न कर सकेगा। यह ज्ञान ईश्वरने वेद द्वारा मनुष्यको दिया और इसको ही सुरक्षित रखने और सुप्रसारित करनेका ऋषिके जीवनका मुख्य उद्देश्य था। यही वह केन्द्र था जिसके चारों ओर ऋषिका देहबल, वाग्बल, बुद्धिबल, योगबल और विद्याबल घूमता था। वेद ऋषिके प्राण थे और इसी कारण ऋषि वेदपरायण थे। इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता, कमसे कम वे जो आर्यनामाभिमानी हैं अवश्य स्वीकार करेंगे, कि आर्यजाति अवनतिके गर्तसे निकल कर उन्नतिके शिखर पर पहुँच सकती है तो एकमात्र उपाय वैदिक शिक्षाके

अनुसार चलना ही है। आर्यजीवनको फिरसे पुराने साँचेमें ढालना, वर्णाश्रम धर्मको अङ्गीकार करना, संस्कारोंकी महिमाको जानना और उनके अनुकूल आचरण करना ही आर्यजातिके उभार और उठावके अवलम्ब हैं और आर्योंके अधः पतनका मुख्य कारण भी वेदविमुखता ही है। हमने न केवल वेदोंकी ओर पीठ फेरी, वरन् उनका अनर्थ करनेमें भी संकोच नहीं किया। प्राचीन भाष्योंके विलुप्त वा अपरिचलित होजानेसे लोग वेदोंके अर्थोंको भूल गये और जिन आधुनिक विद्वानोंने वेदोंके भाष्य करनेका प्रयत्न किया उन्होंने वेदोंको अपने ही मतका पोषक सिद्ध करने की चेष्टा की। वे स्वयं वेदोंके पीछे नहीं चले, प्रत्युत वेदोंको अपने पीछे चलाना चाहा। यही कारण है कि हमें वैदिक मन्त्रोंके ऐसे ऊटपटांग अर्थ उनके भाष्योंमें मिलते हैं जिनको पढ़ कर वेदोंमें श्रद्धा उत्पन्न होनेके स्थानमें घृणा उत्पन्न होती है।

योरुपियन पण्डितोंने जो वेदोंके अर्थ किये हैं वे भी इसी दोषसे दूषित हैं। वेदोंको हाथमें लेनेसे पहले ही वे उन्हें असभ्य और अशिक्षित जातिकी गीतियां मान कर उनमें से वैसे ही अर्थ निकालते हैं जो एक गडरिये या ग्वालियेके अनुकूल हों, क्योंकि उनकी समझमें ही नहीं आता कि ऐसे प्राचीन समयमें जब स्वयं उनके पूर्वज जांगलिक अवस्थामें रहते थे कोई जाति ऐसी हो सकती है जिसके विचार उच्च और मार्जित हों। इस कारण वे सूर्य, अग्नि, वायु आदि भौतिक पदार्थोंकी पूजाको वेदोंसे निकालने में वाध्य हो जाते हैं और इसी प्रकार इतिहास आदिका भी अस्तित्व वेदोंमें मानने लगते हैं। अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारके कारण हमारे कालिज शिक्षा प्राप्त युवकगण भी अपने पाश्चात्य गुरुओं का अनुसरण करते हुए वेदोंके प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगते हैं।

ऋषि दयानन्दका गौरव यही था कि उन्होंने वैदिक सूर्यके ऊपर छाये हुए लाञ्छन रूपी बादलोंको छिन्नभिन्न करके पुनः उसके स्वच्छ और जीवनप्रद प्रकाशको प्रसारित किया। उन्होंने बतलाया कि वेद ही सम्पूर्ण ज्ञानके मूलस्रोत हैं। वे अपौरुषेय हैं; उनमें केवल एक अजर, अमर, अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, निराकार, निर्विकार परमेश्वरकी उपासनाकी आज्ञा दी गई है। अग्नि, वायु आदि जिसको अन्य आधुनिक भाष्यकार देवविशेष मानते हैं ईश्वरके गौण नाम है। हां प्रसङ्ग-वश वे भौतिक पदार्थोंके लिये भी प्रयुक्त होते हैं; परन्तु जहाँ कहीं उन्हें उपास्य रूपसे वर्णन किया गया है वहाँ ईश्वरवाचक ही हैं। देव शब्दने जितनी भ्रान्ति उत्पन्न की है उतनी किसी अन्य शब्दने नहीं की। आधुनिक भाष्यकारों ने देव शब्दसे हरेक स्थानमें उपास्यदेवके ही अर्थ ग्रहण किये और इस कारण वे वेदोंमें अनेक देवोंकी उपासना का विधान मानने लगे। ऋषि दयानन्द इस कालके स्यात् सबसे पहिले भाष्यकार हैं जिन्होंने देव शब्दके सच्चे अर्थोंका प्रकाश किया। उन्होंने बतलाया कि देव किसी योनिविशेषका नाम नहीं है। वह सब पदार्थोंके लिये, चाहे जड़ हों या चेतन, प्रयुक्त हो सकता है, यदि उनमें द्विर्यीत-कांतिविजीगीषा, आदि गुण पाये जाते हैं; और इसलिये वेदोंमें किसी वस्तुको देवनाम से अभिहित होते देखकर यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उस पदार्थको उपास्य माना गया है। इसी प्रकार पितर शब्दके अर्थ वयोवृद्ध ज्ञानीके हैं न कि मृत पितामहादि के।

यज्ञ शब्दके सम्बन्धमें भी देव शब्दके समान ही भ्रान्ति फैली हुई है। यज्ञोंमें पशुबलिदानकी प्रथा वाममार्गियोंके समयमें भारतवर्षमें प्रचलित हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतवर्षसे यह प्रथा मूसाई आदि मतोंने ग्रहण की, इसलिये योरुपके

बद्वानोंका यही मन्तव्य हो गया कि बिना पशुबलिके कोई यज्ञ नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्दने वेदोंसे दिखलाया कि वैदिक यज्ञमें पशुहिंसाकी कहीं आज्ञा नहीं है, प्रत्युत यज्ञ कहते ही उसे हैं जिसमें हिंसा न की जाय। इसलिये वेदोंमें यज्ञका नाम अध्वर है—अध्वर अर्थात् हिंसासे रहित। यज्ञका अभिप्राय यह नहीं है कि इष्टदेवको पुष्ट पशुकी बलि देकर सन्तुष्ट किया जाय, किन्तु यज्ञ उसका नाम है जहाँ विद्वान् महात्माजन एकत्रित होकर वायु-जलकी शुद्धि और रोगनिवृत्तिके लिये अग्निहोत्र करें वा अन्य उपायोंसे शिल्पशिक्षा। आध्यामिक विद्या द्वारा मनुष्योंका कल्याण करें। आधुनिक जात-पातके बन्धनोंका वेदोंमें चिन्ह भी नहीं है। वेदोंमें मनुष्यजातिको केवल चार वर्णोंमें विभक्त किया गया है जो गुण कर्म स्वभावके अनुकूल निर्धारित होते हैं, और जैसे उच्च वर्णका मनुष्य नीच कर्म करनेसे पतित हो जाता है वैसे ही नीच वर्ण वाला उत्तम कर्म करनेसे अपनेसे उच्च वर्णका अधिकारी बन सकता है। यह नहीं कि उच्च कुल में जन्म लेनेसे किसी मनुष्य पर श्रेष्ठताका ठप्पा लग जाता हो और वह विद्या-गुणहीन, हीन, बुद्धिहीन होने पर भी सर्वशास्त्रपारंगत ब्रह्मवादी ब्राह्मणकी पदवीका अधिकारी समझा जाता हो

जैसे मनुष्य जातिकी समष्टि रूप उन्नतिके लिये चारों वर्णों की मर्यादाका स्थित रहना आवश्यक है, वैसे ही इसकी व्यष्टिरूप उन्नतिके लिये चार आश्रमोंका पालनकरना अनिवार्य है। जीवन-क्षेत्रमें उतरनेसे पहले मनुष्यको उसके प्रलोभनका सामना करने उसके इन्द्रजालको तोड़ने और उसके दुःखोंको सहनेके लिये अपने आपको सज्जित करना चाहिये; न्यूनसे न्यून २५ वर्षतक ब्रह्मचारी रह कर शरीरको पुष्ट और मन और इन्द्रियोंको वशीभूत करके विद्यासे बुद्धिको परिष्कृत करके, गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना

चाहिये, जिसमें अपने-अपने वर्णके धर्मोंको करताहुआ उत्तम सन्तान उत्पन्न करके पचास वर्षकी आयुमें वानप्रस्थी बनकर अपने विद्या और अनुभवको परिपक्क करे और तीनों प्रकारकी एषणाओंको जीत कर मनुष्य प्राणिमात्रका उपकार करनेके लिये सन्यासाश्रम ग्रहण करे, जिसमें गृहस्थोंको अपने विद्या बुद्धि पुरुषार्थ और सदाचारसे लाभ पहुँचाकर सब प्रकारके ऋणोंसे उऋण होकर अन्तमें मोक्षधामका अधिकारी बने।

सोलह संस्कार जो मनुष्योंके गर्भसे अन्त्येष्टि पर्यन्त करने की आज्ञा शास्त्रोंमें है उनका अभिप्राय मनुष्यमें सद्गुणोंकी उत्पत्ति करना और दुष्टगुणोंका नाश करना है। केवल अन्त्येष्टि संस्कार ऐसा है जिससे मृत मनुष्यका आत्मिक सुधार कुछ नहीं होता। परन्तु शवको अग्नि द्वारा सुगन्धित पदार्थोंके साथ भस्मसात् करनेसे जीवित मनुष्यकी रक्षा होती है, क्योंकि शवको पृथ्वीमें गाड़ने या जलादिमें बहानेमे अत्यन्त दुर्गन्धि तथा रोगों की उत्पत्ति होती है।

ऋषि दयानन्द पहिला मनुष्य था जिसने वेदोंके अमृतस्रोत को मनुष्यमात्रको पान करनेकी आज्ञा दी। उससे पहले जो वेद द्विजातियोंके लिये अमृतसमान समझे जाते थे वही शूद्रोंके लिये विषतुल्य गिने जाते थे। स्वार्थान्ध ब्राह्मण नामधारियोंने शूद्रोंको वैदिक मन्त्रोंके सुनने तकसे वर्जित कर दिया था। उनका पढ़ना तो दूर रहा, यदि किसी शूद्रके कानमें वेदध्वनि पड़ जाती थी, तो उस निरपराधीके कानोंमें पिघला हुआ सीसा भर दिया जाता था, परन्तु उस दुष्टकी जिह्वा नहीं काटी जाती थी जिससे वेदमन्त्र को असावधानीसे पढ़ा कि वह एक शूद्रके कानोंमें जा पड़े।

दयानन्द वास्तविक अर्थोंमें सुधारक और संस्कारक था। वह मनुष्यमात्रमें समानता और भ्रातृभावका प्रचार करता था, परन्तु

यह सन्था (पाठ) उसने किसीके चरणोंमें बैठकर प्राप्त नहीं की थी। वह सब मनुष्योंको बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, द्विजाति और शूद्र सबको विद्योपार्जन करनेका परामर्श देता था और सबको सब प्रकारकी सांसारिक और आध्यात्मिक विद्याओंका अधिकारी समझता था, परन्तु यह विचार उसने किसी पाश्चात्य विद्वानके ग्रन्थोंसे नहीं लिया था। वह बाल-विवाहका विरोधी और बाल-विधवा विवाहका पक्षपाती था, परन्तु यह शिक्षा उसने किसी योरुपियन डाक्टर वा अन्य विद्वान् से नहीं पाई थी। दयानन्दमें सब कुछ अपना था, किसी विदेशीका ऋणी नहीं था। सौभाग्यवश वह अंग्रेजीसे सर्वथा अनभिज्ञ था, नहीं तो यह कहा जाता कि उसने अपनी सुधारपद्धति अंग्रेजी पुस्तकों से ली। प्राचीन संस्कृत साहित्यभण्डार ही दयानन्दका आधार था जिसमेंसे उसने ये बहुमूल्य रत्न निकाले थे। इसीलिये दयानन्द विशेष अर्थोंमें हमारा था। यद्यपि उच्चतम लक्ष्यसे देखनेसे दयानन्द सारे संसारका है, क्योंकि उसकी शिक्षा वही है जो वेदोंकी है, और वेद मनुष्यमात्रके हैं। परन्तु हमारी दृष्टिसे देखनेसे दयानन्द हमारा ही है और उसके प्रदर्शित पथ पर चलना हमारे लिये सर्वांशमें हितकर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसे पुरुषके जीवनको वारंवार अवलोकन करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंके सहवाससे ही, जो उनकी मृत्युके पश्चात् उनके जीवन चरित्र और उनके रचित पुस्तकों द्वारा प्राप्त हो सकता है, मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

जो कुछ स्वामी दयानन्दके विषयमें संक्षिप्त रूपसे हमने यहां कहा है वह केवल उनकी शिक्षाका दिग्दर्शनमात्र है। अनुवादक की भूमिकामें ऐसे गहन विषयका स्थान नहीं होता और न कोई उससे इस प्रकारके विषयोंकी पर्यालोचना की आशा रखता है।

परन्तु इस भूमिकामें में इतना भी कहनेकी आवश्यकता विशेष कारणसे हुई। हम आशा करते हैं कि पाठकगण भूमिकाकी और अनुवादकी त्रुटियोंपर दृष्टि न देकर जिस भावसे भूमिका लिखी और अनुवाद किया है उसी भावसे दोनों को पढ़ेंगे, और यदि उनके पढ़नेसे पाठकगणकी रुचि ऋषि दयानन्द प्रणीत ग्रथों की ओर हुई और ऋषिके कार्यमें, जो अब आर्यसमाज द्वारा हो रहा है, सहानुभूतिका अंकुर उनके हृदयोंमें उत्पन्न हुआ, तो हम समझेंगे कि हमारा श्रम निष्फल नहीं गया।

नोट—यह अनुवाद ग्रन्थकर्त्ता की आज्ञासे किया गया है और उन्होंने इस अनुवादके बहुतसे अंशोंको पढ़वा कर सुन भी लिया है और कई स्थानोंमें ग्रन्थमें कुछ २ परिवर्तन भी उन्होंने कर दिया है। इसी कारण कुछ स्थलोंमें अनुवादमें और ग्रन्थमें भेद हो गया है। यह अनुवाद ग्रन्थकर्त्ताकी अनुमति और सम्मतिसे प्रकाशित किया जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि ग्रन्थ कई अन्शोंमें अपूर्ण है। ग्रन्थकर्त्ता उसको पूर्णरूपसे पुनः लिखकर बृहदाकारमें प्रकाशित करनेका विचार कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि जब वह ग्रन्थ प्रकाशित होगा* तो इस विषयमें अद्वितीय होगा। हमने यह अनुवाद इस समय प्रकाशित करना इसीलिये उचित समझा है कि बृहद् ग्रन्थके प्रस्तुत होनेमें अभी कई वर्षोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और इस लघु पुस्तकको पढ़ कर पाठकगण बृहद्ग्रन्थके पढ़नेके लिये उद्यत भी हो जायेंगे। इस पुस्तकमें परिशिष्ट भाग उपयोगी और आवश्यक समझ कर बढ़ा दिया गया है। बङ्गला पुस्तकमें यह भाग नहीं है।

घासीराम

---

* हर्ष का विषय है कि ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र बृहदाकार श्री घासीरामजी ने सम्पादन के प्रकाशित करा दिया है।

विज्ञापन ।
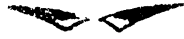
हम यह स्वीकार नहीं करते कि हम इस दुरूह कार्यके सम्पादनमें समर्थ हुए हैं क्योंकि इस ग्रन्थमें बहुत सी बातें अप्रकाशित रही हैं । किन्हीं-किन्हीं घटनाओंकी पूर्वापरताके सम्बन्धमें सन्देह रहा है; विशेषतः स्वामीजीके मन्तव्यामन्तव्यकी आलोचना तो सर्वथा ही अनुल्लिखित रही है । फलतः स्वामीजी को समझने और अन्योंको समझानेके पक्षमें यह ग्रन्थ हमारा प्रथम उद्यममात्र है । हम भरोसा करते हैं कि भविष्यत्‌में स्वामी दयानन्दके जीवनवृत्तको सर्वाङ्गसुन्दर रूपसे प्रकाशित करने की चेष्टा करेंगे ।

कलकत्ता,
ति० ३० फाल्गुन १३०४
बंगाब्द

श्रीदेवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

दयानन्दचरित ।

अवतरणिका ।

हिन्दुओंके समान धर्म्म-प्राचीन जाति और कोई नहीं है। हिन्दुओंके समान धर्म्म-जीवन मनुष्य संसारमें दृष्ट नहीं पड़ते। हिन्दुओंके समान एकसूत्रग्रथित और पात्रोचित विभक्त साधनपद्धति भी अन्य जातियोंके साधकसमाजमें लक्षित नहीं होती। इस लिये स्वीकार करना पड़ता है कि धर्म्मके इतिहासमें हिन्दुओंका विशेषत्व है। अधिक क्या धर्म्मका इतिहास केवल हिन्दुओंका ही है। कारण यह कि हिन्दुओंने ही धर्म्मके यथार्थ मर्म्मको प्राप्त किया था, धर्ममें सम्यग्दर्शिता हिन्दुओंकी ही थी और धर्म्मकी सर्वाङ्गमें हिन्दुओंने ही रक्षा की थो। कृष्टान,(ईसाई) मुसलमान आदि विशेषणसे जितने धर्म्म विशेषित होते हैं और साम्प्रदायिक सीमाके भीतर जितने धर्म्म आते हैं, उन सबको धर्म शब्दसे पुकारना यहाँ उपयुक्त नहीं है। कारण यह कि वे सब व्यक्तिविशेषोंके विशेष-विशेष मत हैं या धर्मरूप विराट पुरुष के एक-एक अङ्ग हैं, इसके सिवाय और कुछ नहीं। इसलिये मैं उन सबको धर्म शब्दसे पुकारना उचित नहीं समझता, चाहे उनकी सैकड़ों पुस्तकोंमें कीर्ति वर्णन क्यों न की गई हो या सैकड़ों प्रवक्ताओंने अपने मुखसे उनकी प्रशंसा क्यों न की हो।

ज्ञानके साथ धर्मका अति निकट और गूढ़ सम्बन्ध है। ऐसा सम्बन्ध है कि एकके अभावमें दूसरेकी विद्यमानता एक प्रकारसे

असम्भव ही है। ज्ञानहीन धर्म या धर्महीन ज्ञान आकाशकुसुमवत् एक अलीक वस्तु कही जा सकती है। फलतः जैसे-जैसे ज्ञानकी उन्नति होती है वैसे-वैसे धर्मकी उन्नति होती है। इसी कारण जान पड़ता है कि जब मनुष्यके ज्ञानचक्षु बन्द थे, उस समय वह जल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, लता, पर्वत, नदी झरना प्रभृति प्राकृतिक पदार्थसमूहकी अर्चना किया करता था। धर्मके इतिहासावलोकनसे इस विषयके शतशः प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्राचीन मनुष्योंमें कोई जल, कोई पृथ्वी, कोई वायु और कोई प्रज्वलित अग्निको ही ईश्वर-पदवी पर स्थापित करके अपनी अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पण किया करते थे*।

ईरानके प्राचीन रहनेवाले पर्वतके ऊपर खड़े होकर आंखोंको ऊपर करके, नभोमण्डलकी ओर देख कर अग्नि, सूर्य, वायु प्रभृति पदार्थोंकी स्तुतिगान किया करते थे❀। ऐसा जान पड़ता है कि प्राकृतिक पदार्थसमूहमें जो जो अधिकतर शक्तिमान् या ज्योतिष्मान् होते थे उन्हींको विशेष कर ईश्वरभावसे स्वीकृत किया जाता था। इसी कारण नभोमण्डलान्तर्गत सूर्य चन्द्रादि पदार्थोंकी उपासना बहुत सी जातियोंमें प्रचलित दीख पड़ती है※।

* प्राचीन मिश्रदेशनिवासी जलको, फ्रिजिया वाले पृथ्वीको, असीरियाके रहने वाले वायुको और पारसी लोग अग्निको ईश्वरभावसे पूजते थे। Mackay,s Progress of the Intellect. Vol. I. P. 112. पारसी लोग अग्निके भिन्न और २ प्राकृतिक पदार्थोंको भी ईश्वरभावसे पूजते थे।

❀ Mackay,s Progress of the Intellect, Vol I. P. 114.

※ प्राचीन ग्रीक लोग हिलियस नामके देवता पर अश्वका बलिदान करते थे। यह हिलीयस प्रसिद्ध सूर्यदेव हैं। एक समय ऐसा था जब कि

अस्तु, जिस समय मनुष्यके ज्ञाननेत्र कुछ-कुछ खुलने लगे, उस समय मनुष्यकी बुद्धिको मेघमुक्त चन्द्रकलाकी न्याई थोड़ा थोड़ा विकास प्राप्त होने लगा; परन्तु तो भी मनुष्य प्राकृत वस्तुओंकी उपासनासे विरत नहीं हुआ या यों कहो कि विरत नहीं हो सका। तब भी मनुष्य जल, वायु, अग्नि प्रभृति नैसर्गिक पदार्थ-समूहकी पूजामें रत रहा। तब इतना ही विशेषत्व हुआ कि वह सम्पूर्ण वस्तुओंमेंसे एक-एक को चैतन्य-विशिष्ट जीव समझने

ग्रीक लोग उदित सूर्यकी ओर देख कर उसकी उपासनाके उद्देशसे अपने २ हाथोंका चुम्बन किया करते थे। Tylor's primitive Culture, Vol. II. p 267-69 यद्यपि यहूदी जाति एक ईश्वरकी उपासक प्रसिद्ध है, तो भी वह सूर्य-तारकादिकी पूजा से विरत नहीं थी, क्योंकि यहूदियोंका परम्परा गत विश्वास था कि हरेक जातिका अधिष्ठाता एक २ नक्षत्र है। Mackay's progress of the Intellect, vol I. p 112. यहूदी जातिके ईश्वरको स्वर्गमें सर्वदा सूर्यतारकादिसे परि-वेष्टित रहना बहुत प्रिय था—यह उनके धर्मग्रन्थोंमें बहुत स्थलोंमें देखा जाता है। I Kings XXII. 19. एक समय जेसुइट सम्प्रदायके एक प्रचारक दक्षिण अमेरिकाके एक स्थानमें जाकर उपदेश करते थे, तो वहांके लोगोंने उनसे निर्भयतासे कहा था कि "हम सूर्यके भिन्न और किसी महान् देवताको नहीं जानते और न स्वीकार करते हैं।" Tylor's primitive culture, vol. II. p 306 योरुपान्तर्गत व.मेरिनिया प्रदेशके कोई २ लोग ज्वराक्रान्त होनेपर प्रातःकाल सूर्यके सामने खड़े होकर कहते थेः—हे सूर्य्य! तुम आकर हमारे सत्तर ज्वरोंको ले जाओ।" Ibid. vol II. p 269 ज्योतिर्मण्डलकी पूजा केवल असभ्य समाजमें ही नहीं देखी जाती। जो लोग अपेक्षाकृत उन्नतधर्मावलम्बी प्रसिद्ध हैं, उनके भीतर भी सूर्य्यकी उपासना प्रचलित देखी जाती है। आर्मीनया

लगा*। कारण यह है कि ज्ञानके कुछ-कुछ प्रकाशित होने पर वह यह समझने लगा कि चेतनता या शक्तिके अभावमें क्रियाके होनेकी सम्भावना नहीं हो सकती इसीलिये जब उसने देखा कि अग्निके क्षणिक प्रज्वलनसे ही बड़े-बड़े पदार्थ भस्मसात् हो जाते हैं, वायु एक मुहूर्त्त के भीतर वृक्षसमूहको भूतलशायी कर देता है, जलके वेगसे शतशः नगर विनिष्ट हो जाते हैं, प्रातःकाल सूर्य्यके थोड़े प्रकाशसे ही सारा विश्व उद्भासित हो जाता है, और चन्द्रमाके प्रिय और कमनीय किरणमालाके स्पर्शसे ही मनुष्यके प्राण प्रफुल्लताका भाव धारण कर लेते हैं, तब वह उनमेंसे हरेक को शक्तिसम्पन्न जीव मानने लगा। यह अज्ञानकल्प मनुष्योंके लिये अत्यन्त स्वाभाविक था।

देशमें ईसाइयोंका एक सम्प्रदाय था जो अपनेको सूयर्यकी सन्तान बतलाता था और सूर्यकी उपासना करता था। Neander's church History, vol VI. p 341. अधिक क्या कहें, ईसाकी पांचवीं शताब्दीमें एक ईसाइयोंका सम्प्रदाय था जो पर्वतके ऊपर खड़े होकर या सेंट पीटस नामके गिरजामें प्रवेश करनेसे पूर्व उदित सूर्य्यकी ओर दृष्टिपात करके शिर निवाते थे। मुसलमान लोग अब भी चन्द्रमाको उदय होते देखकर करताली देते और प्रार्थना वाक्य पढ़ते हैं। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दि तक योरुपके अनेक लोग चन्द्रमाको प्रथम उदय होता देख कर नतजानु होते थे या शिरसे टोपी उतार कर उसकी उपासना करते थे। Tylor's primitive, culture vol II. p 269-73 इस प्रकार से सूर्य्यतारकादिकी उपासना बहुतसी जातियोंमें बहुतायतसे देखी जाती है। इस देशमें भी सूर्यपूजा और सूर्य्यप्रणामका बहुत कुछ प्रचलन है।

* Tylor's primitiv3 culture, vol. p. 258.

इसके पश्चात् देखनेमें आता है कि अग्नि जलादि भौतिक पदार्थोंमें चेतनता या शक्तिका आरोप करके ही मनुष्य निश्चिन्त नहीं हुआ, बल्कि पदार्थोंको परिवर्तित होता देख कर उनके अन्तरालवर्तिनी शक्तिका आराधन करने लगा, और यह भी देखनेमें आता है कि वह आन्तरिक शक्ति उसकी अधिनायक या अधिष्ठात्री देवतारूपसे परिगणित होने लगी। इसी प्रकार जल देवता, वायु देवता, अग्नि देवता प्रभृति बहुत प्रकारके देवताओं का प्रसङ्ग और स्तुतिवन्दना अपेक्षाकृत उन्नत समाजके इतिहासमें देखी जाती है। परन्तु इससे भी मानवीय कल्पना की परितृप्ति नहीं हुई। मनुष्यका चित एक ओर जिस प्रकार प्राकृतिक वस्तुओंके अन्तरालवर्तिनी शक्तिमें ईश्वरत्वका आरोप करके उसकी आराधनामें नियुक्त था, दूसरी ओर उसी प्रकार रोग, शोक,जरा, मृत्यु, सुख, दुःख, अन्धकार, प्रकाश प्रभृति प्राकृत घटनाओंमेंसे हरेककी एक २ अधिष्ठात्री देवी है ऐसा विश्वास करता था। केवल यही नहीं, समरसुदक्ष योधृगण और प्रतापान्वित नृपतिगण देवपदवी पर अधिष्ठित होकर देवोचित प्रीति-भक्तिके सहित पूजित होते थे*।

---

* ईसाके आविर्भाव समय के पूर्व ग्रीस, रोम, सिरिया, बाबीलोनिया और मिश्र प्रभृति देशोंमें नाना रूपसे देवताओंकी उपासना प्रचलित थी। अनेक स्थलोंमें हरक्यूलीज प्रभृति वीरगणकी पूजा होती थी। किसी २ जीवित सम्राटके उद्देशमें भी मन्दिरादि निर्मित होते थे। अधिक क्या कहें, रोम नगर तकने देवताका आसन ग्रहण कर लिया था। सूर्य्य-चन्द्रादिकी पूजा तो प्रचलित थी ही, प्रेत पिशाच प्रभृति वायुविहारी अदृष्टपदार्थसमूह भी ईश्वरभावसे आराधित होते थे। इसके अतिरिक्त क्षमा, दया, यश, निद्रा, स्मृति प्रभृतिके उद्देशसे भी वेदियां निर्मित होती थीं। इसी प्रकार समुद्र, आकाश, रात्रि, अन्धकार, विद्या, बुद्धि

और चाहे जो हो, परन्तु इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि ज्ञान शुभ ज्योतिके अभावके कारण मनुष्य इस प्रकार कभी भौतिक वस्तुओंकी पूजामें रत होता था, कभी उनकी अन्तवर्तिनी शक्तिकी आराधनामें नियुक्त होता था और कभी आकाश और वायुमण्डल अथवा किसी अदृष्ट और अज्ञात लोकमें असंख्य प्रकारसे देवताओंकी कल्पना करके उनके उद्देश्यसे आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति अर्पण करता था। जैसे पथिक अन्धकारावृत रजनीमें अपने ग्रहनिरूपणमें असमर्थ होकर इधर-उधर भटकता फिरता है, ऐसे ही मनुष्य अज्ञानताकी तमिस्रामें प्रकृत धर्मनिकेतन का सन्धान न पाकर नाना वस्तु अथवा नाना विषयों का धर्मरूपसे अवलम्बन करता था। किन्तु जैसे दिग्भ्रान्त पथिक उषाप्रकाशके किन्चत् २ सञ्चार होनेपर अपने घरको स्वयं ही पहिचान लेता है, ऐसे ही मानव चित्त भी आत्मिक ज्ञानके पवित्र और परिस्फुट आलोकके उद्भासित होने मात्रसे ही धर्मके प्रकृत तत्वके अवधारणमें समर्थ हो जाता है।

आत्माज्ञानके उन्मेष होने पर मानव चक्षुके सामने एक नया राज्य उद्घाटित हो जाता है। जिसको मनुष्य पहिले नहीं देखता था, जिस विषयकी कभी चिन्ता भी नहीं करता था, उसीको वह उस समय देखने लगता है और देखकर विस्मित रह जाता है। जिस शक्तिको केवल जल, वायु, अग्नि प्रभृति परिचित पदार्थोंकी अन्तर्वर्तिनी शक्ति मानता था, उस समय मनुष्य उसी शक्तिको सम्पूर्ण संसारकी अन्तरावर्तिनी शक्ति देखकर अवाक् रह जाता

वाग्मिता इत्यादिमेंसे भी हरेककी एक २ अधिष्ठात्रीदेवी कल्पित हो गई थी। यहां तक कि मिश्रके देवमन्दिरसमूहमें विढाल, कुक्कुर, अजा प्रभृति पशुओंकी पूजाके निमित्त भी आसन निर्दिष्ट हो गया था। Cudworth's Intellectual System of the Universe, VOII. 361-364 AND 522.

है। अधिक क्या, उस समय मनुष्य यह भी जान सकता है कि उस विश्वव्यापिनी और विश्वब्रह्माण्डधारिणी शक्तिकी प्रकृति या प्रकृत स्वरूप क्या है। आत्मिकज्ञानसम्पन्न मनुष्य बाह्य जगत्में उस शक्तिकी अद्भुत और अचिन्तनीय लीलाका दर्शन करके जिस प्रकार आश्चर्य्यन्वित होता है उसी प्रकार अन्तर्जगत्में उससे भी अधिकतर अद्भुत और अचन्तनीय लीलाका अवलोकन करके विस्मयसागरमें निमग्न हो जाता है। अधिक क्या, आत्मज्ञानसम्पन्न मनुष्य दिव्य चक्षुसे यह देखने लगता है कि जो शक्ति अन्तर्वर्तिनी होकर सूर्य्यको नियमित करती है,* वायु को प्रवाहित करती है, अग्निको प्रज्वलित करती है, और सागरकी तरङ्ग और विहङ्गके कण्ठमें विद्यमान होकर कभी मानव प्राणको आतङ्कसे कम्पित करती है और कभी आनन्दसे विवश करती है— वही शक्ति उसकी आत्माके भीतर प्रतिष्ठित होकर उसके जीवनको अनन्त पथमें प्रचलित कर रही है।

धर्मके विकास या क्रमोन्नति विषयमें इस स्थलमें जो कुछ लिखा गया है उससे यही समझमें आता है कि मनुष्य शक्तिकी सत्ता और क्रियाके विषयमें जितना चिन्ताक्षम होता है, मनुष्य की विषयग्राहिणी या विश्लेषणकारिणी बुद्धि जितना विकास पाती है, चिन्ताके सूक्ष्म सूत्रका अवलम्बन करके मानवमन बहिर्जगत्से अन्तर्जगत्में जितना प्रविष्ट होता है, सारांश यह कि आत्मज्ञानके शुभ स्वर्गीय आलोकमें मनुष्यके मानस नयन जितने उज्जवल और उन्मीलित होते हैं, मनुष्यका धर्म उतना ही मार्जित उतना ही उन्नत और उतना ही विशुद्ध हो जाता है। फलतः

* य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो भयादित्यो न वेद यस्यादित्याः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येषः त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः। बृहदारण्यकोपनिषद् पंचम प्रपाठक प्रथम ब्राह्मण।

संसारपथमें यह आलोक ही प्रकृति आलोक है। धर्मके दुर्गम और दुर्दर्शनीय प्रदेशमें यही एकमात्र आलोक है। धर्मनिरूपण पक्षमें आत्मज्ञानके अतिरिक्त और दूसरा आलोक नहीं है।

हिन्दुओंने आत्मज्ञानके परिस्फुट आलोकमें धर्मका निरूपण किया था, इसी कारण हमने पहिले कहा है कि धर्मका सम्यक् मर्म हिन्दुओंने ही प्राप्त किया था। मिश्र और बाबीलोनिया, रोम और जिरुसलम जिस समय अज्ञानताके गाढ़ तिमिरमें निमिज्जित थे, अथवा योरुपके उदीयमान जाति समूहके पूर्व पुरुषा जिस समय बनमें विचरण करके बानरवत् विकृत भाषामें अपने मनोभावोंको व्यक्त करते थे, उससे बहुत पूर्व हिन्दुओंके हृदयमें धर्मका प्रकृत आलोक सञ्चारित हो चुका था। जिस समय लूथर योरुपके धर्मको संस्कृत करनेके व्यापारमें प्रवृत्त हुआ, जिस समय मोहम्मदने मक्काके काबा मन्दिरमें अद्वितीय ईश्वरके नामको गौरवान्वित किया, जिस समय ईसाने जिरुसमलके राजमार्गमें खड़ा होकर स्वर्गसम्वादको प्रचार करनेके निमित्त सहस्रजिह्वाको नियोजित किया, और जिस समय प्लेटो और पिथागोरस* प्रभृति तत्त्ववेत्ताओंने ऐहिक और पारलौकिक विषयक अमूल्य तत्त्वसमूहको प्रचारित करके ज्ञानगरिमासे ग्रीसको गौरवान्वित किया, उससे पूर्व सरस्वती और दृषद्वतीके पुण्यमय पुलिन पर पवित्रचित्त ब्राह्मणगण समासीन होकर परमात्माके ध्यानमें निरत होते थे। फलतः ब्रह्मवाद ही हिन्दुओंका आदिम

---

*जिस वर्षमें पैरीक्लीज़की मृत्यु हुई उस वर्ष अर्थात् ईसासे ४२९ वर्ष पूर्व एथन्सं नगरमें प्लेटोने जन्मग्रहण किया। पिथागोरसकी जन्मभूमि समोस नगर थी। उन्होंने ईसासे ५८० वर्ष पूर्व जन्मग्रहण किया था।

धर्म है। हिन्दू चिरन्तन ब्रह्मवादी हैं, अथवा हिन्दुओंके समान ब्रह्मवादी और कोई नहीं है।

किन्तु योरुपके मैक्समूलर प्रभृति कतिपय संस्कृतज्ञ पण्डित इस मतका प्रतिवाद करते हैं। वे यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि अग्नि जलादि प्राकृत पदार्थोंकी पूजा ही हिन्दुओंका आदि धर्म था। अधिक क्या, उनका यह विश्वास है कि हिन्दुओंका परम पूज्य और प्राचीनतम शास्त्रस्वरूप ऋग्वेदसंहिता केवल एक असभ्य जातिके आवर्जनापूर्ण ग्रन्थके सिवाय और कुछ नहीं है। वे यह कहनेमें तनिक भी सङ्कोच नहीं करते कि वेदसंहिता कतिपय सरलस्वभाव कृषकोंकी सरलभावोद्वेलित गीतावलीके भिन्न और कुछ नहीं है, और 'ऋ' धातुका अर्थ भूमिकर्षण है और इसीलिये 'ऋ' धातुसे निकला हुआ 'आर्य्य' शब्द कृषकका वाचक है*। पूर्वोल्लिखित पण्डितगण इसप्रकारकी अद्भुत व्याख्यासे संसारमें यह प्रतिपादन करना चाहते हैं कि हमारे नितान्त पूज्यपाद पुरुषागण बैलकी पूंछ मरोड़ने वाले और हल चलानेवाले कृषकोंके भिन्न और कुछ भी नहीं थे। केवल यही नहीं उनके मतमें ऋग्वेदसंहिताका जो-जो अंश ब्रह्मप्रतिपादक है अथवा उसके अन्तर्गत जो-जो सूक्त विश्वकारण ईश्वरके स्वरूपका ज्ञापक है उस सब पर आधुनिकता रूप दोषारोपण करनेसे भी वह क्षान्त नहीं होते**। फलतः यही समझमें आता है कि मैक्सलूमर प्रभृति

---

*'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' प्रथम भाग उपक्रमणिका का पृष्ठ आठ देखो।

** अध्यापक मैक्समूलरने ऋग्वेदसंहिताके जिन सूक्तोंकी ब्रह्म प्रतिपादक कहकर विवेचना की है उन्होंने यह सम्मतिप्रकाश करनेमें कि यह सब आधुनिक है कुछ इतस्ततः कर दिया है। यह कहनेकी इच्छा होते हुए भी कि आर्यलोग आदिकालसे ही ब्रह्म-

महोदयगणका इसी मतके प्रतिपादनका संकल्प था कि हमारे पूर्व पुरुषगणकी नितान्त हेय और हीन अवस्था थी, वह ज्ञानालोकसे सर्वतोभावेन वञ्चित होकर अत्यन्त बर्बर दशामें कालक्षेप करते थे। अस्तु, हम इस स्थलमें इस विषयमें अपना कोई विचार प्रकट नहीं करते कि उनकी इस प्रकारकी असत्य और अनुदार उक्तियोंकी सत्यताके पक्षमें कोई प्रमाण है या नहीं, और यदि है तो वह प्रमाणरूपसे परगृहीत होनेके योग्य है या नहीं। कारण यह है कि ऐसा करनेसे वहुत कुछ अप्रासांगिक दोषके उपस्थित होने की सम्भावना है और विशेषतः पुस्तकके उपयुक्त स्थलमें इस विषय पर यथोचित आलोचना करनेकी भी इच्छा है, इसलिये इस स्थलमें हम ऋग्वेदसंहिताकी एक ऋचाका अवलम्बन करके यह प्रतिपादित करनेकी चेष्टा करेंगे कि आर्य्यगण आदिम काल से ही ब्रह्मवादी थे।

वादी थे उन्होंने उसको ऐसे संकोचके साथ कहा कि उनका मनोभाव स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आता दशवें मण्डलके अन्तर्गत १२९ सूक्तका अंग्रेजी अनुवाद करते हुए उन्होंने हिन्दू जातिकी सूक्ष्मचिन्ता और गम्भीर तत्त्वदर्शिताकी बड़ी प्रशंसा अवश्य की है, परन्तु उन्होंने यह प्रतिपादन करनेकी भी चेष्टा की है कि यह सूक्त अपेक्षया आधुनिक है। इसी प्रकार इस मण्डलके अन्तर्गत पुरुष सूक्त और हिरण्यगर्भसूक्त प्रभृतिकी भी आधुनिकता प्रतिपादन की है। Max Muller's History of Ancient Sanskrit Literature, P 558-571. फलतः यही कहा जा सकता है कि मैक्समूलर महोदयका पूर्वोक्त सूक्तोंकी आधुनिकता प्रतिपादन करना प्रमाणहीन मीमांसाके तुल्य असम्बद्ध और असंगत है।

पूर्वोक्त ऋचा अति प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र है जो ऋग्वेद-संहिता*के तृतीय मण्डलके अन्तर्गत है *१। उपरोक्त ऋचा यह है:—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्*२।

इसका तात्पर्य्य यह है—"जो हमारी धी (बुद्धि) शक्तिको प्रेरणा करता है हम उसी सवितृ देवताके वरणीय तेजका ध्यान करते हैं"*३।

सवितृ देवता अद्वितीय परमेश्वरके भिन्न और कोई नहीं है*४। वह एक ओर वरणीय तेजस्सम्पन्न और दूसरी ओर ज्ञान

---

* यह ऋचा यजुर्वेद और सामवेदमें भी है।

*१—ऋग्वेदसंहिताका यह अंश, ज्ञात होता है, आज तक योरुपीय वेदव्याख्याताओंके मतमें भी आधुनिक कह कर प्रतिपादित नहीं हुआ।

*२—ऋग्वेदसंहिता ३। ६२। १०।

*३—भिन्न २ भाषाओंमें इस ऋचाके भिन्न २ अनुवाद हुए हैं। बङ्गला भाषामें भी इसके अनुवाद, किसी २ अंशमें, भिन्न २ देखे जाते हैं। पूर्वोल्लिखित अनुवाद सर्वसाधारणमें प्रचलित होनेसे ग्रहण किया गया है।

*४—सायणाचार्य्य ने सवितृ शब्दके सूर्य्य और ब्रह्म दो अर्थ किये हैं। किन्होंके मतमें सूर्यकी अन्तर्वर्तिनी शक्तिका ही सवितृ शब्द बोधक हैं। परन्तु सम्पूर्ण ऋचाके तात्पर्य्यकी आलोचना करनेसे यही समझमें आता है कि सवितृ शब्द ब्रह्म का बोधक होनेसे ही सर्वान्शमें सुसङ्गत और युक्तियुक्त होता है, कारण यह कि सूर्य्य को मनुष्यकी ज्ञान बुद्धिका प्रेरक निर्देश करना अत्यन्त असम्भव और असङ्गत है।

बुद्धिका प्रेरक है। अधिक क्या, ब्रह्म विषयमें इसकी अपेक्षा अधिकतर उन्नत और विशुद्ध सिद्धान्त मनुष्य समाजमें आज तक भी और कोई प्रचारित नहीं हुआ और यह भी आशा नहीं की जाती कि भविष्यत् में कभी होगा* ।

सवितृ कैसा मनोहर शब्द है। उसका अर्थ कैसा प्रगाढ़ है। ऐसा जान पड़ता है कि सारे वैदिक साहित्यमें इसके समान और दूसरा शब्द नहीं है। पूज्यपाद आर्यगणने अनन्त-स्वरूप ईश्वरको सवितृ शब्दसे सम्बोधित करके सृष्टितत्त्वकी पर्यालोचनाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। उन्होंने विश्वव्यापिनी वरणीय तेजो महिमाके चिन्तन करनेसे मनुष्य-संसारमें उपासना के मूल सूत्रका निर्देश कर दिया है और विश्वकारण ईश्वरको ज्ञान-बुद्धिके प्रेरक और परिचालक पद पर प्रतिष्ठित करके उन्होंने अन्तर्यामित्व और विधातृत्वके तत्त्वको हृदयङ्गम करनेका भी सुस्पष्ट प्रमाण उपस्थित किया है। सारांश यह है कि पूर्वोल्लिखित पवित्र ऋचाके आद्योपान्तमें अन्तर्दृष्टिका प्रगाढ़ समावेश है। यह कहना बाहुल्यमात्र है कि अन्तर्दर्शिताके अभावमें परमार्थ विषयक कोई भी मीमांसा समीचीन नहीं हो सकती। ब्रह्म विराट जगत्का रचने वाला हो सकता है यह मनुष्यकी दृष्टिमें बाह्य घटनाओंके पुञ्जका नियन्ता भी प्रतीयमान हो सकता है, किन्तु अन्तर्दृष्टिके उज्ज्वल प्रकाशके विना उसको अन्तर्जगत्का अधि-

---

* यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि ईश्वर, आत्मा, परलोक प्रभृति विषयमें भिन्न २ व्यक्तियोंके भिन्न २ समयोंमें जितने विचार पृथिवीमें प्रचारित हुए हैं वे भारतीय ऋषियोंके निकट कुछ भी नूतन नहीं है फलतः परमार्थ तत्त्वके सम्बन्धमें अब तक मनुष्यसमाजमें जो कुछ व्यक्त वा प्रचारित हुआ है वह अधिकांशमें वैदिक ऋषियोंकी उच्छिष्ट वा उद्गीरितवस्तु मात्र है।

नायक नहीं विश्वास कर सकते। और यदि उसको अन्तर्जगत्के अधिनायक रूपसे न समझा जाय अथवा यदि चित्तमें यह बोध न हो कि वह मनुष्य के अन्तर्वासी और अन्तर्यामी होकर क्षण प्रतिक्षण विद्यमान है तो उसके सम्बन्धमें वास्तव कुछ भी समझना या जानना सम्भावित नहीं होता। अस्तु, अति प्राचीन कालमें हमारे पूर्व पुरुषगण जिस मानसिक उन्नतिके समुन्नति शिखर पर आरोहण करके परमार्थके चिन्तन में निमग्न हुए थे, सृष्टि और अध्यात्म तत्त्वके विषयमें समीचीन मींमांसा करनेमें समर्थ हुए थे, और अधिक क्या, उन्होंने ज्ञानकी निर्मल भूमिके ऊपर खड़े होकर विशुद्ध ब्रह्मवादको ही मनुष्यका एकमात्र धर्म अवधारण करके अवलम्बन किया था—यह बात इस परम पवित्र गायत्री मन्त्रकी पुनः २ आलोचना करनेसे ही समझमें आती है।

केवल यही नहीं, पञ्चनदप्रक्षालित पवित्र भूखण्डमें ब्रह्म विषयक जो ज्ञान उद्भासित और आलोचित हुआ, वास्तवमें वह ब्रह्मज्ञान नाम से अभिहित होनेके योग्य है। इसी हेतु यद्यपि इतिहासके पृष्ठोंमें यहूदी जाति ब्रह्मोपासक* नामसे प्रसिद्ध है

* ब्रह्मोपासक नामसे यहूदी जातिकी प्रसिद्धि होने पर भी वह किसी समय भी मूर्त्तिपूजासे विरत नहीं हुए। यह बात कि वे सूर्य्य-चन्द्रादिकी उपासना करते थे इससे पूर्व कही जा चुकी है। इसके अतिरिक्त वे समय २ पर सुवर्णमय और पित्तलमय सर्पकी पूजामें प्रवृत्त होते थे। Exodus Ch. XXXII.2--5 Numbers XXI, 9. यहूदी लोगोंने मिश्रदेशमें बहुत दिनों तक वास किया था और यह इतिहासप्रसिद्ध है कि मिश्रवासीगण सर्प, बैल और गौवत्स प्रभृति इतर प्राणियोंकी पूजा करते थे। इसी कारणसे बहुत लोग यह अनुमान करते हैं कि यहूदियोंने मिश्रवासियोंसे ही पूर्वोल्लिखित पार्थिव वस्तुसमूहकी पूजा सीखी

और अद्वितीय ईश्वरकी आराधनाके विषयमें मुसलमानोंके समान निष्ठावान् जाति और नहीं है, तो भी उनका ब्रह्मवाद हिन्दुओंके ब्रह्मवादके तुल्य नहीं हो सकता। कारण यह है कि ब्रह्मके स्वरूप निरूपण पूर्वक समुज्ज्वल रूपसे उपलब्धि करना तो दूर रहा, वे तद्विषयक साधारण ज्ञानसे भी वञ्चित रहे। यहां तक कि सामान्य हित और अहितका ज्ञान रखने वाले मनुष्यके प्रति जिन दोषोंका आरोपण करना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है उन्होंने परमपवित्र परमेश्वरके प्रति उन सब दोषोंके आरोपण करनेमें अणुमात्र भी संकोच नहीं किया* अस्तु। इस विषयके प्रतिपादन करनेको बहुतसे प्रमाण हैं कि आर्योंके अतिरिक्त अन्य जातिका ब्रह्मविषयक ज्ञान प्रकृत और परिस्फुट नहीं था।

थी। Cyclopedia Biblical Theological, Ecclesiastical Vol 1II. Page 917. और यह अनुमान सत्य जान पड़ता है।

* प्रकृत ज्ञानके अभावके कारण मनुष्यने परात्पर परमेश्वरके प्रति नानाविध दोषों और दुर्बलताओंको आरोपित किया है। इसके बहुतसे प्रमाण भिन्न २ सम्प्रदायोंके शास्त्रोंसे उद्धृत किये जा सकते हैं। बाइबिलके ईश्वरको घननिविड अंधकारके मध्यमें वास करना बहुत प्रिय था। Mackay's Progress of the Intellect Vol. 11. P. 421-22. परमेश्वरका क्रोधान्ध होना और इस कारण अपनी नासारन्ध्रसे धूमावलि और मुखविवरसे ज्वलन्त अग्निशिखाका निकालना वर्णित है। 11. Sumual Ch. XX1I. 9. शैतानको दण्ड देनेमें भी उसको अत्यन्त व्यस्त होना पड़ा। स्वाधीन चिंतनके नितान्त पक्षपाती टामस पेनने लिखा है कि बाईबिल वर्णित ईश्वर एक दानवविशेषसे अधिक नहीं है। यद्यपि ऐसी कठोर भाषाका प्रयोग यथायोग्य नहीं है तो भी बाईबिल वर्णित ईश्वरको क्रोधी, हिंसाशील और परिमित, शक्ति-

मनुष्यजातिके धर्मसाहित्यमें ब्रह्मके बहुत स्वरूप वर्णित हैं। किसीने उसको राजाधिराज, किसीने परम प्रभु, किसीने परम-पिता, किसीने परम गुरु, और किसीने परम प्रणयास्पद सखा रूपसे सम्बोधित किया है। यह नहीं है कि हिन्दुओंके विशाल धर्मसाहित्यमें ब्रह्मके यह सकलस्वरूप वर्णित नहीं हैं, किन्तु उसके विद्यमान होनेपर भी भारतके प्रवुद्धवुद्धि धर्माचार्यगणने

वाला व्यक्ति कह सकते हैं—इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। मुसलमानोंके ईश्वरने स्वर्गधाममें यहूदी और क्रिष्टानोंके प्रति कठोर दण्डकी व्यवस्था की है। J. J. Pools Studies in Mohemmadanism P. 203–204. किन्तु मोहम्मदके अनुयायियोंके लिये स्वर्गमें भोगविलासकी सामग्री प्रस्तुत करनेमें कुछ भी त्रुटि नहीं की। मोहम्मदके अनुचरोंके लिये स्वर्गधाममें उत्तम मदिरा, परम सुन्दरी कामिनी और शोभासम्पन्नाय विलास-काननोंकी प्रचुर व्यवस्था है। अधिक क्या, प्रत्येक स्वर्गारूढ़ मुसलमानके लिये बहत्तर काली आँखोंवाली रूपवती युवतियोंके सम्भोगकी व्यवस्था करनेमें भी ईश्वरने त्रुटि नहीं की, और उसने इस व्यवस्थाके करनेमें भी भूल नहीं की कि प्रत्येक स्वर्गारूढ़ मुसलमानोंके आहारार्थ नानाविध खाद्य सामग्रीसे भरे हुए तीन सौ पात्र प्रदान किये। Idid P. 195–97. फलतः यह बात कि मोहम्मदवर्णित स्वर्गधाम इस प्रकारके इंद्रियसुख और भोग-विलासकी लीलाक्षेत्र है और अपापबद्ध ईश्वर ऐसे इन्द्रियसुख और भोगविलासकी व्यवस्था करता है उनके धर्मग्रन्थकी आलो-चना करनेसे भली भांति समझमें आ सकती है अस्तु, धर्मके इतिहासमेंबहुत जगह यह दर्शाया गया है कि अपरिपक्क ज्ञान-वाले मनुष्य की ब्रह्मविषयक धारणा ऐसी ही अनुन्नत, अमार्जित और कलुषित होती है।

ब्रह्मोपलब्धिके पक्षमें इस सकलस्वरूपको यथेष्ट नहीं माना है। कारण यह कि मनुष्यके साथ ब्रह्मका सम्पर्क जैसा एक ओर अनन्त और अज्ञेय है दूसरी ओर वैसा ही निकट और निगूढ़ है, सुतरां केवल बाह्य विषय या बाह्य दृष्टान्तका अवलम्बन करनेसे उस निकट निगूढ़ सम्पर्कके यथार्थ मर्मका प्रकाशित करना सर्वतो भावेन संगत नहीं है। पूर्वतन आर्यगण इस अत्यावश्यक विषयको उत्तमरूपसे समझते थे और उसको समझकर ही वे परमेश्वरको पूर्वोल्लिखित स्वरूप-समूहसे अभिहित करनेसे तृप्त नहीं हो सकते थे। पिताको पुत्रका सुहृद्, सहायक, शान्तिदाता या शुभानुष्ठाता कहना किसी अंशमें भी असङ्गत नहीं है, किन्तु पितृनिष्ठ पुत्र यदि पिताको इन सब नामोंसे न पुकार कर केवल पिता ही कहे तो जैसे पिता कहनेसे ही तदन्तर्गत समस्त भाव व्यक्त हो जाते हैं ऐसे ही इस देशके आत्मज्ञानी आचार्यगणने भी विश्वाराध्य ईश्वरको "प्राणस्यप्राण" नाममे अभिहित करके तद्विषयक समग्र भावको प्रकाशित कर दिया था। पितृ शब्दके साथ जैसे पूर्वकथित समस्त भाव अविच्छिन्न रूपसे जड़ित हैं वैसे ही "प्राणस्यप्राण" के साथ भी पूर्वोल्लिखित समस्त स्वरूप अविच्छिन्न रूपसे संयुक्त हैं। सुतराँ ब्रह्मको "प्राणस्यप्राण" नामसे अभिहित करनेसे ही तत्सम्बन्धी समस्त स्वरूप अवगत और व्यक्त हो जाते हैं। वास्तवमें परमेश्वरको प्राणका प्राण, मनका मन, वाणीकी वाणी, चक्षुका चक्षु कहनेसे उसका भाव जिस प्रकार से सर्वान्श और सुचारु रूपमें परिव्यक्त होता है वैसा अन्य शब्द

द्वारा नहीं होता। इसीलिये हम कहते हैं कि केवल हिन्दुओंके साहित्यके अतिरिक्त पृथिवीकी अन्य किसी जातिके धर्म-साहित्य में विश्वविधाता परमेश्वरको "प्राणस्यप्राण" रूपसे वर्णित या अभिहित नहीं किया गया॥। इसलिये स्वीकार करना पड़ता है

॥केवल बाइबिलमें एक जगह ब्रह्मके सम्बन्धमें इस भावके अनुरूप एक कथा दृष्ट पड़ती है यथा—"In Him we live and move and haveour being." The Acts Ch XVII 28. कडवर्थ नामक प्रसिद्ध धर्मविज्ञानवेत्ता पण्डित कहते हैं कि यह भाव ख्रिष्टीय शास्त्रका अपना नहीं है। उनका विश्वास है कि ग्रीक कवि आरफियस॥ (Orpheius) अथवा एरेटास लिखत ग्रन्थसे सैंटपाल ने इस भावको लिया है। Cudworth's Intellcetual System of the Universe, Vol. 1p.194. ऐसा विश्वास अमूलक नहीं है। कारण यह कि मूसा और ईसा-प्रचारित अनेक कथायें यहां तक कि ईसाइयोंके शास्त्रों के अनेक मन्तव्य ग्रीक प्रभृति प्राचीनतर जातियोंके धर्मशास्त्रोंसे लिये गये हैं। इसके बहुतसे प्रमाण हैं। टामस पेन लिखित धर्मविज्ञान विषयक ग्रन्थोंके पाठ करनेसे इस विषय सम्बन्धी अनेक बातें जानी जा सकती हैं। Thomas Paine's Theological Works P. 14-17.

॥ आरफियस होमर और हिसियड (Hesiod) से पहिला कवि था। बहुतोंकी सम्मतिमें वह ट्रोजन युद्धसे पहले वर्तमान था। वह एक प्रसिद्ध कवि और संगीतविशारद मनुष्य हुआ है। उसके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उसकी संगीतध्वनिसे पशुपक्षी और जड़ पदार्थ तक आर्द्रीभूत हो जाते थे। अनेकोंके मतमें आर्फियस ही ग्रीक धर्मोपख्यानका प्रवर्तक था, किन्तु महापण्डित एरिस्टाटिल ने आर्फियस नामके किसी कविका

कि भारतीय ब्रह्मवाद अन्यान्य जातिके ब्रह्मवादके समान नहीं है* ।

अस्तित्व आदि स्वीकार नहीं किया है। Cudworth's Intellectual System of the Univers V. IP 493–494. आर्फियसको यदि ट्रोजन युद्धका पूर्ववर्ती माना जावे तो उस को ३००० वर्षसे पूर्व मानना पड़ेगा। एरेटास भी एक विख्यात ग्रीक कवि था। परन्तु आर्फियस और एरेटाससे भी बहुत शताब्दि पहिले आर्य्यऋषिगण कह चुके थे—"प्राणस्यप्राणः चक्षुषश्चक्षुः" इत्यादि—केनोपनिषद्। जिस समय यह माना जाता था कि भारतीय दर्शनका कोई २ मत पिथागोरस प्रभृति पण्डितगणसे लिया गया, क्या उस समय यह किसी ने कहा कि ब्रह्मविषयक यह समीचीन भाव भारतसे (यूनान) में नहीं आया ?

* इस सम्बन्ध में शास्त्रदर्शी श्रीयुत चन्द्रशेखर वसु महाशयने लिखा है "अन्यान्य जिन २ देशोंमें धर्म्मतत्त्व आलोचित और शास्त्रबद्ध हुआ है उस सबका पाठ करनेसे पाया जाता है कि उनमें भारतप्रकाशित ब्रह्मज्ञानके तुल्य कुछ भी नहीं है। फलतः कुरान और बाइबिलकी उपनिषदोंके साथ कुछ भी तुलना नहीं की जा सकती। उपनिषदोंकी श्रेणीका एक शास्त्र भी मुसलमान या कृष्टानोंके मध्यमें नहीं है। उनके यहां जो कुछ है वह कुरान या बाइबिलमें है। किन्तु कुरान या बाइबिलका एक अध्याय भी ईश्वर के स्वरूप वर्णनमें उपनिषदोंके समीप आसन पाने योग्य नहीं है।" वक्तृता कुसुमांजली पृष्ठ २८, २६ ॥

भिन्न पृथिवी की अन्य जातियोंने आज तक भी नहीं समझा या नहीं समझ सकीं। दूसरी जातियोंकी कथा हम नहीं कह सकते, परन्तु यह भलीप्रकार कह सकते हैं कि हिन्दुओंके निकट मनुष्य जीवन एक उद्देश्यशून्य, असम्बद्ध, या अनर्थक व्यापार नहीं है

हिन्दुओंकी आचारानुवर्तिता

सदाचार धर्मका मूल है❀। अधिक क्या, सदाचारके अभावमें धर्मसाधन या धर्म्माचरण एक निरर्थक व्यापार है—यह आर्य्योंके

प्रत्युत मनुष्यका जीवन एक सुनिर्दिष्ट लक्ष्यसूत्रमें बंधा हुआ है। सुतरां हिन्दुओंका यह विश्वास है कि वह सार्थक सङ्गत और सुसम्बद्ध है। इसलिये जीवनमें की हुई हरेक घटना और हरेक

❀ महर्षि मनु ने लिखा हैं—

आचारः परमो धर्म्मः श्रुयुक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥
मनु० १।१०८॥

'परम्परागत आचार उत्कृष्ट धर्म्म है—यह श्रुति स्मृति दोनोंने ही प्रतिपादित किया है, अतएव आत्महित के अभिलाषी ब्राह्मण को श्रुतिस्मृतिविहित आचारके अनुष्ठानमें निरन्तर यत्नवान् रहना चाहिये।'

पुनः लिखा है—

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्म्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलं आचारं जगृहुः परम्॥
मनु० १।११०॥

'मुनिगणने यह अवगत करके कि आचार द्वारा ही धर्मकी प्राप्ति हो सकती है आचारको ही सम्पूर्ण तपस्याका प्रधान कारण माना है।'

इस प्रकार मन्वादि महात्माओंने अनेक स्थलोंमें आचार-परताकी बहुत २ प्रशंसा की है।

कार्य्यका उसी निर्दिष्ट लक्ष्यके अनुकूल वा उपयोगी होना नितान्त आवश्यक है। जैसे एक पथिक गन्तव्य प्रदेश पर दृष्टि रखकर पदक्षेप करता है, जैसे अविचलित चित्तवाला साधक सिद्धिको नियत लक्ष्यमें रखकर एक एक पद चलता है, वैसे ही मनुष्य भी मोक्षरूप महालक्ष्यकी ओर अविच्छिन्न दृष्टिपात करके अनन्त पथमें एक एक पद बढ़ता है—यही आर्यशास्त्रकी कथाकासार है। थोड़ासा ध्यान देनेसे ही समझमें आ जाता है कि स्थूलताके साथ सूक्ष्मताका, बाह्य जगत्के साथ अन्तर्जगत्का कैसा अति निकट और निर्दिष्ट सम्बन्ध है। यह सभी जानते हैं कि अति भोजन करनेसे अजीर्ण हो जाता है, अजीर्ण होनेसे देहकी शान्ति नष्ट हो जाती है, देहके अशान्त होनेसे मन अशांत हो जाता है, और मन की शान्तिके न रहने और उसकी प्रकृतिके बिगड़नेसे ध्यान धारणादि कार्योंका सम्पादित होना तो दूर रहा, वह सामान्य सांसारिक कार्यके साधनमें भी असमर्थ हो जाता है। इसलिये विहित भोजनका करना ही सर्वथा कर्तव्य है। जैसे भोजन वैसे ही पान स्नान, निद्रा, शयन, भ्रमण, अङ्गचालन आदि देहसम्बन्धी जितने भी कार्य हैं वे यदि अच्छे प्रकार सम्पादित न हों तो देह स्वस्थ वा शुद्ध नहीं रह सकता, और देहके स्वस्थ वा शुद्ध न रहनेसे चित्त भी स्वस्थ वा शुद्ध नहीं रह सकता; और अस्वस्थ या अशुद्ध चित्त वाले व्यक्तिसे आध्यात्मिक शक्तिका प्रसारण अथवा परमार्थतत्त्वका अनुशीलन प्रभृति किसी महान् कार्यका साधित होना सम्भावित नहीं होता। फलतः बाह्यपरिच्छिन्नता मानसिक परिच्छिन्नता का कारण है। और मानसिक परिच्छिन्नता आध्यात्मिक परिच्छिन्नताका कारण है इसको अधिक स्पष्ट करके समझानेकी आवश्यकता नहीं है। इसी कारण जिनकी ब्रह्मपूजा वा ब्रह्मप्रीति केवल शब्दमयी है, जो दिन विशेष या तिथि विशेषमें जनकोलाहल परिपूरित प्रदेशमें अथवा किसी निर्जन स्थानमें कुछ समय तक बैठकर अनन्तस्व[illegible]श्वरके उद्देश्यसे केवल कुछ शब्दोंका

जाप, उच्चारण वा पुनः पुनः पाठ करने मात्रको ही धर्मका परम साधन समझते हैं, और जो लोग किसी नित्य नियताचरित कार्य के साथ, यहाँ तक कि पारिवारिक वा सामाजिक किसी अनुष्ठान से भी, किसी रूपसे सम्पर्क न रखकर धर्मको केवल वक्तृतामात्र का विषय कहते हैं या साप्ताहिक आलोचना अथवा सामयिक कथोपकथनके विषयोंमें परिगणित करते हैं, हमारी विवेचनामें उनका धर्म परम्पराकथित एक प्रकारकी प्रवादकथाके सिवाय और कुछ नहीं है। कारण यह कि धर्म केवल आलोचनाका विषय नहीं है, न शब्दशास्त्रान्तर्गत संज्ञाविशेष ही है और न वह मनुष्यकी जिह्वा पर नृत्य करने वाली वस्तु है; वह कुसुममें रहने वाली सुगन्धिके समान, इन्धनके बीचमें रहने वाली अग्निशिखाके समान, अथवा बहुकालसाधित सिद्धिके समान बहुत दिनोंमें और बहुत परिश्रमसे स्फुरित होता है; और स्फुरित होने पर अपनी प्रोज्ज्वल दीप्तिसे अपने आपको और अपनेसे संसर्ग रखने वाली सम्पूर्ण वस्तुओंको दीप्तिमान् कर देता है। इस विषयमें और अधिक कथन करना अनावश्यक है कि उसके स्फुरणके लिये पद २ सदाचारिताका अनुसरण करना नितान्त आवश्यक है। आचारानुगामिताका गूढ़ तात्पर्य्य आर्योंके समान और किसी ने नहीं समझा। केवल आर्यजातिकी शास्त्रसंहिताओंमें ही आचारपरताकी बहुत २ प्रशंसा दृष्ट पड़ती है और नियमानुवर्तिताके अभावमें आचारानुवर्तिता तो सर्वथा ही असम्भव है। इसलिये हिन्दुओंके समान जैसे आचारवादी और कोई नहीं है ऐसे ही नियमवादी भी और कोई नहीं है। फलतः अब यह सिद्ध होगया कि भारतीय ब्रह्मवाद सदाचारिता-मूलक है।

तृतीय अधिकारिता।

अधिकारिताके सम्बन्धमें हिन्दुओंके ब्रह्मवादको विशेषता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दुओंके अतिरिक्त दूसरी

जातियोंके धर्मशास्त्र*में अधिकारतत्त्वकी अवतारणा वा आलोचनाका एक प्रकारसे अभाव ही है। जो लोग जिस तत्त्वके ग्रहण करनेमें असमर्थ हों, अथवा जो लोग जिस विषयके परिपाकमें अपटु हों उनको उस तत्त्वकी वा उस विषयकी शिक्षा देना विडम्बनामात्र है। इसलिये यह स्वीकार करना उचित है कि यद्यपि धर्मानुशीलनमें सम्पूर्ण व्यक्तियोंका समान अधिकार है और मुक्तिरूप परम पुरुषार्थ प्राप्तिका मनुष्यको समान अधिकार है, तो भी धर्मशिक्षाकी योग्यतानुकूल व्यवस्था करना परम कर्तव्य है। यदि किसी व्यक्ति पर ऐसे विषयका भार समर्पित

*यह कहा जा सकता है कि यह कहना सत्य नहीं है कि अन्य जातियोंकी शास्त्रसंहिताओंमें अधिकारतत्त्वकी आलोचना सर्वथा नहीं है। कारण यह कि पण्डितवर पिथागोरस जब तक कोई मनुष्य निर्दिष्टकाल पर्यन्त मौनावलम्बन नहीं कर सकता था तब तक उसको शिष्यरूपसे ग्रहण नहीं करते थे। ईसाने कहा है "अय स परिश्रान्त और भाराक्रान्त लोगो! मेरे पास आओ मैं तुमको शांतिदान दूंगा।" इससे जाना जाता है कि परिश्रान्त और भाराक्रान्त लोग ही शांतिलाभके अधिकारी हैं। इसके अतिरिक्त ईसाने और भी एक स्थलमें कहा है "मैं सुअरोंके सामने मोती नहीं बखेरूँगा।" St. Metthew. VII.6.

इस प्रकारसे यद्यपि ईसाने अधिकारानधिकारका विचार किया है, परन्तु इस समय ईसाके शिष्यगण उस पर आदिमें दृष्टि रखकर नहीं चलते। अस्तु। आर्य्यजाति इसकी आवश्यकता जिस प्रकारसे स्वीकार करती है और जिसप्रकारके सूक्ष्मभावसे उसका अनुसरण करती है उस प्रकारसे अन्य जातियोंके भीतर दृष्टिगत नहीं होता। इसलिये इस अंशमें आर्य्यजातिका श्रेष्ठत्व स्वीकार करना पड़ता है।

किया जाय जो उसकी शक्तिसे बाहर वा योग्यतासे अधिक हो, तो जैसे वह उसको सम्पदित नहीं कर सकता वैसे ही समर्पित विषयका गुरुत्व वा गौरव भी नहीं रहता। ऐसी अवस्था में वह अर्पित विषय चाहे सर्वांशमें पवित्र वा गौरवास्पद ही हो उसके प्रति लोगोंकी अश्रद्धा उद्दीपित हो जाती है। धर्मतत्त्व अति उन्नत और पवित्र है। संसारमें धर्म-साधन वा धर्मानुशीलनके समान अधिकतर उच्च और सुखप्रद विषय दूसरा कोई नहीं है। इसलिये अयोग्यताके ऊपर खेतमें धर्मबीजका बोना किसी प्रकार भी संगत नहीं है। इसी कारणसे भारतके सूक्ष्मतत्त्वदर्शी आचार्यगण बहुत विवेचना और बहुत परीक्षाके पश्चात् लोगोंको धर्मविषयमें उपदेश प्रदान करते थे। संसारमें जैसे एक ही सामग्री सब मनुष्योंके आहारके योग्य नहीं हो सकती, जैसे बालक, वृद्ध, युवक, रुग्ण और अतिरुग्ण प्रभृति भिन्न २ अवस्था वाले लोगोंके लिये भिन्न २ खाद्य सामग्रीका प्रयोग करना होता है, वैसे ही धर्मका एक ही तत्त्व वा धर्मकी एक ही कथा मनुष्य मात्रके लिये उपयोगी नहीं हो सकती। इसलिये जो लोग यह आशा करते हैं कि उनके महापुरुषोंका प्रचारित धर्म एक दिनमें वा सौ दिनमें पृथ्वीके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक प्रसारित हो जायगा, जो लोग यह विचार किये हुए बैठे हैं कि आधी शताब्दिके पश्चात् उनकी उद्दीयमान धर्म-पताकाके नीचे पृथ्वीकी सारी जातियाँ और सारे सम्प्रदाय आकर आश्रय ग्रहण करेंगे, और जो लोग किञ्चिद्गर्व पूर्वक यह कहने लगते हैं कि उनके आचार्यविशेष वा प्रवक्ताविशेषकी एकमात्र वक्तृतासे सारा संसार प्रमोहित होकर तत्क्षण उनके उपदिष्ट मार्गका अनुसरण करके चलने लगेगा, मैं उनको मनुष्यचरितके विषयमें नितान्त अनभिज्ञ समझकर अनेक बार हँस २ पड़ता हूँ। प्रकृतिका परिवर्तन, चरित्रका संशोधन, शुद्धता वा सात्त्वि-

कताके साथ चरित्रका क्रमपूर्वक उन्नतिसाधन और अन्तमें मनुष्य के परमपुरुषार्थ-स्वरूपका अनन्त ईश्वरके साथ सम्मेलन एक दिन वा एक वर्षका काम नहीं है। अस्तु। अधिकतर आश्चर्यका विषय यह है कि संसारमें पदे २ अधिकारिताका विचार होता है। संसारके प्रत्येक कार्यमें अधिकारके अनुरूप फाफलकी व्यवस्था होती है। परन्तु धर्मके व्यापारमें न उसका विचार ही है और न उसकी व्यवस्था ही है।

ब्रह्मज्ञान निश्चय ही अतिसूक्ष्म, अति जटिल और अति प्रगाढ़ है। आत्मा वा परलोकसम्बन्धी विषय-समूह सचमुच ही नितान्त दुरवगाह्य है। इसलिये इस अति जटिल और दुरवगाह्य विषय-समूहका अमार्जित बुद्धि और अस्थिर चित्त वाले मनुष्य को उपदेश करना निपुण आचार्यका काम नहीं है। प्रकृत धर्मा-चार्यगण यही शिक्षा प्रदान करते हैं कि मनुष्यको अधिकारा-नुकूल शिक्षा देनी चाहिये, मनुष्यके सम्मुख सर्वदा प्रकृत आदर्श का चित्र रखना चाहिये, और आदर्शको सम्मुख रख कर क्रमशः अग्रसर होनेके लिये मनुष्यकी ज्ञानोन्नतिके साधनोंकी यथोचित व्यवस्था करनी चाहिये। इस देशके तत्त्वविशारद आचार्यगणने मनुष्यके मङ्गलोद्देशसे इसी प्रकार शिक्षाकी व्यवस्था की है। इस विषयके बहुतसे प्रमाण विद्यमान हैं कि वह दुरवगाह्य ब्रह्मतत्त्व को बिना विचारे ही मनुष्यमात्रमें प्रचारित नहीं करते थे*। फलतः इसमें कुछ संदेह नहीं है कि हमारे ज्ञानभूयिष्ठ धर्माचार्य-गणने इस प्रकारकी नीवके ऊपर स्थापित करके ही भारतीय ब्रह्मवादके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया है।

---

*तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥
मुण्डकोपनिषद्।

अब यह सिद्ध हो गया कि आर्योंका ही ब्रह्मवाद प्राकृत ब्रह्मवाद है। कारण यह कि आर्योंके अतिरिक्त और कोई विश्व-प्राण ईश्वरको "प्राणस्यप्राणः" रूपसे उपलब्ध करनेमें समर्थ नहीं हुआ। आर्योंका ब्रह्मवाद केवल प्रकृत ही नहीं, किन्तु विशिष्ट भी है, अथवा उसको विशिष्ट कहना ही प्रकृत है। कारण यह कि आर्योंके अतिरिक्त और कोई जाति इस विषयमें आचारानुवर्तिता और अधिकारिताका विचार करके आगे नहीं बढ़ी।

अर्थात् उस विद्वान् ने अपने समीप आये हुए सम्यक् रूपसे प्रशान्तचित्त शमगुणान्वित व्यक्तिको उस ब्रह्मविद्याका यथावत् उपदेश किया जिससे वह उस अक्षय सत्यपुरुषको जान लेवे।

आर्य ऋषियोंने इस स्थलमें अधिकार तत्त्व विचारपूर्वक प्रशान्तचित्त और शमादिसाधनसम्पन्न व्यक्तिको ही ब्रह्मविद्याकी शिक्षा देनेका उपदेश किया है। फलतः अप्रशान्तचित्त और अशमान्वित व्यक्तिको ब्रह्मविद्याके विषयमें शिक्षा दान करनेसे इष्टके बदले अनिष्ट साधित होता है। यह बात इस देशके ब्रह्मवाद विषयक वर्तमान आन्दोलनके फलके अवलोकनसे उत्तम रूपसे समझमें आ जाती है।

जिस समय नचिकेताने यमसे परलोक विषयकी जिज्ञासा की, तो यमने यह कहाः—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यान्तं वित्तमोहेन मूढम्। (कठोपनिषद्)

अर्थात् वित्त-मोहसे विमूढ, प्रमादी और अविवेकी व्यक्तिको परलोकविषयक उपाय प्रतिभात नहीं हो सकते हैं।

इस प्रकारसे आर्यऋषिगणने बहुतसे स्थलोंमें अधिकारिताकी कथा की आलोचना की है।

आर्यजातिका आदि-धर्म यद्यपि ब्रह्मवाद था, परन्तु हम यह विश्वास नहीं करते कि सब मनुष्य उस पथके अवलम्बी थे। किन्तु सत्य यह जान पड़ता है कि वेदवर्णित समयमें कर्मकाण्ड का प्रेम भी कुछ कम नहीं था। ज्ञानपथ सर्वतोभावेन अवलम्बनीय होने पर भी अज्ञानताके संस्रवका सम्पूर्ण रूपसे परिहार करना अतीव दुस्तर कार्य है। इसी कारणसे देशविशेष वा जाति विशेषके भीतर ज्ञानालोकके उद्भासित हो जाने पर भी अज्ञान की निशाका पूर्णरूपसे अन्त होना कभी सम्भव नहीं है। अधिक क्या, प्रायः सब ही जातियोंके भीतर सबही समयोंमें एक २ दल ज्ञान-विद्वेषी वा ज्ञान-विरक्त देखनेमें आता है। ज्ञान वा ज्ञान-संसृष्ट विषयके सम्पर्कको विष के तुल्य समझ कर उसको दूरसे ही त्याग देता है और कर्मकाण्डके आडम्बरमय कोलाहलमें ही अहरह प्रमत्त रहना ही उसको प्रिय लगता है।

अस्तु। सिन्धु सरस्वतीके पवित्र पुलिनमें जब परम शक्तिका उद्बोधन होता था, ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षियोंके शान्त रसास्पद आश्रमोंके समूहमें जिस समय ब्रह्मविद्याका अध्ययन और आलोचना होती थी, ईश्वर और आत्मविषयक अतिदूरूह तत्व जिससमय सरल और सुललित सूक्तमालामें सम्बद्ध और अलंकृत हो कर भारतीय आचारवृन्दको धर्मके इतिहासमें अमर और अनुपम करते थे, उस समय भी आर्योंके भीतर कितने ही कर्मकाण्डप्रिय लोग वर्तमान थे—ऐसा होना स्पष्ट रूपसे समझमें आता है। वेदसंहिताओंके बहुतसे स्थलोंमें कर्म-काण्ड परायण मनुष्योंके प्रति तिरस्कार-मिश्रित उपदेशोंका शमावेश दृष्ट पड़ता है। यद्यपि आचार्यगणने विविध उपायोंसे ब्रह्मवादके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया था, परन्तु कर्मकाण्डी लोग उसको ग्रहण नहीं करते थे; यद्यपि सुजन और सामाजिकवर्गको ब्रह्मज्ञान के विशुद्ध आनन्दका उपभोग करते हुए देखते थे, तो भी कर्म

काण्डीलोग यज्ञादि कर्मोंके प्रलोभनोंका त्याग करनेमें समर्थ नहीं होते थे, और यद्यपि ज्ञानपथ सर्वांशमें आश्रितव्य सिद्ध हो चुका था, तो भी कर्मकाण्डी-लोग उसपर चलनेकी इच्छा नहीं करते थे किन्तु वे लोग विश्वकारण ईश्वरकी आराधना और उसके अनुसन्धान विषयमें उदासीन रहते थे, कर्म-कोलाहल में मत्त रहकर समय नष्ट करते थे और अज्ञानरूप निविड नीहारमालामें समावृत्ति होकर तत्कालिक विषय-समूहके आस्वादन करनेसे ही तृप्त रहते थे* ।

* नतं विदार्थ य इमा जजानान्यद्यस्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण परावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ऋ० सं० १०।८२।७।

अर्थात् जिसने यह सृष्टि रची है उसको तुम नहीं जानते, तुम्हारे अन्तःकरणको उसके समझनेका सामर्थ्य प्राप्त नहीं हुआ नीहारावृत होकर संसारमें नाना प्रकारकी कल्पनायें करते हो, अपने प्राणोंकी तृप्तिके लिये आहाराति करते हैं और स्तुति—उच्चारण पूर्वक विचरण करते हो ।

इस स्थलमें तत्कालीन कर्मकाण्डवादियोंका सच्चा सच्चा चित्र दिखाई पड़ता है । फलतः कर्मकाण्ड यदि ज्ञानानुमोदित वा ज्ञानोद्दिष्टि न हो तो उसके द्वारा प्रकृत फल भी प्राप्त नहीं होता । यहाँ तक कि अज्ञानी कर्मकाण्डीके कर्म केवल संसारबन्धनके ही हेतु होते हैं, यह बात तत्वविशारद शास्त्रकारोंने सहस्र वार कही है । महर्षि मुण्डकने कहा है—"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान् नास्त्यकृतः कृतेन" ॥ (मुण्डकोपनिषद) । "कर्मसे प्राप्त होनेवाले सब लोकोंकी परीक्षा करके ब्राह्मण लोग वैराग्यका अवलम्बन करते हैं । कर्मद्वारा नित्यार्थ उपलब्ध नहीं हो

यह नहीं है कि केवल वैदिक समयमें ही कर्मकाण्डका प्रभाव या प्रचार रहा हो। वेदोल्लिखित समयसे आजतक भारतीय धर्म के इतिहासमें एक प्रकारसे कर्मकाण्डकी परिस्फुट धारा-वाहिता दृष्ट पड़ती है। अधिक क्या, इस देशके धर्मक्षेत्रमें ब्रह्मवाद और कर्मवादरूपी दो परस्पर पार्श्ववर्ती नदियोंकी न्याई चले आते हैं। इसीकारणसे वेदोंके बहुतसे मन्त्रोंमें जिस प्रकारसे कर्मकाण्डकी निकृष्टताके प्रतिपादन करनेवाली बहुतसी कथाओंका समावेश हुआ है, उसीप्रकारसे वेदोत्तर समयमें प्रचारित ग्रन्थ-समूहमें भी कर्मकाण्डीगण कठोर भावसे तिरस्कृत हुए हैं। अभिप्राय यह है कि अज्ञानताकी तमिस्राने जब-जब गाढ़तर मूर्ति धारण की; कर्मकाण्डी लोगोंके अट्टहासमय कोलाहलसे जब-जब दिगन्त-पर्यन्त कम्पित हुआ, और हेमन्त-ऋतुकी उषाकालकी नीहारमाला से आवृत सूर्यप्रभाके समान बहुत प्रकारके कर्म-धूमसे भारतीय ब्रह्मवाद जब जब नितान्त म्लान और म्रियमाण हो गया, तब २ ही एक २ महाबली पुरुषने आविर्भूत होकर उसको सञ्जीवित करने का प्रयास किया।

ब्रह्मवाद—आर्यजातिका आदिम धर्म—एकबार भी विनष्ट नहीं हुआ। ब्रह्मवाद—आर्यजातिका चिरन्तनधर्म—एकबार भी विनष्ट नहीं हुआ। वह सत्य और एकमात्र धर्म होने पर भी काल के अनन्त प्रभावमें अपसारित नहीं हो सका। यदि हिमाचल दिगन्तरित हो जाय, यदि यमुनाका स्रोत संरुद्ध हो जाय, यदि जाह्नवीकी युग-युगान्तरवाहिनी तरङ्गमाला मिट्टीमें विलुप्त हो जाय तो भी हमें आशा है कि आर्यावर्तमें ब्रह्मवादकी विजयपताका

सकता।" अस्तु। नित्य सत्य परमेश्वरकी प्राप्ति न करनेसे जीव संसारके बन्धनसे विमुक्त नहीं होता, इस बातका सर्वशास्त्र अनु-मोदन करते हैं॥

विलुप्त नहीं होगी। यदि कोई दुर्निवार्य नैसर्गिक घटना भारतकी प्राकृतिक स्थितिका परिवर्तन कर डाले, अथवा कोई विदेशी विरेन्द्र पुरुष पुनः आविर्भूत होकर अपने विपुल बाहुबलसे भारतकी सारी शान्तिसम्पत्ति और सुख-समृद्धिको ग्रास कर डाले, तो भी यह विश्वास नहीं होता कि ब्रह्मज्ञानकी विशुद्ध वह्नि आर्योंके हृदयसे किसी समयमें भी तिरोहित हो जायगी। जबतक नाड़ियोंमें शोणित-स्रोत सञ्चारित रहता है तबतक मनुष्यका प्राणवायु बाहर नहीं निकलता। जैसे शाखापल्लवादिमें जब तक रसधारा प्रवाहित रहती है, तब तक तरुलता शुष्क नहीं होती, ऐसे ही आर्योंके हृदयमें जबतक ब्रह्मज्ञानका एक अणु भी विद्यमान रहेगा, तब तक यह कह सकते हैं कि आर्योंका विलय नहीं होवेगा। ब्रह्मवाद आर्यजातिका प्राणस्वरूप है, आर्यहृदय का शोणितस्वरूप है, और आर्यवर्तका मेरुदण्डस्वरूप है, सुतराम् ब्रह्मवादके अभावमें आर्योंकी स्थिति और विस्तृति सर्वथा असाध्य है। मनुष्यजातिके जातीय इतिहासमें भारतने जो धर्माचार्यका आसन ग्रहण किया था, ज्ञान और सभ्यताके सम्पर्क में जो यह देश पृथिवी भरमें अद्वितीय बन गया था, और औरों के ठोकरोंसे बारंबार विलुण्ठित और विगतसर्वस्व होने पर भी जो भारतीय कीर्त्ति परम्परा आज तक भी सभ्यसमाजमें विस्मया-पादन करनेमें समर्थ होती है उसका मूल कारण सनातन ब्रह्मवाद ही है। वस्तुतः आर्य जातिके ज्ञान-गौरव वा मान-महिमा सबका ही मूल हेतु ब्रह्मवाद ही है। इसलिये यह स्वीकार करना होगा कि आर्यगण ब्रह्मज्ञानका आश्रय करके उन्नतिके अत्युच्च शिखर पर अधिरूढ़ हुए थे और ब्रह्मज्ञानके प्रति उदासीन वा शिथिल-प्रयत्न होनेसे ही अब आर्यगण दारुण विपत्तिमें फंसे हुए हैं अस्तु। इसीकारणसे हम ब्रह्मवादके प्रचारकों वा संशोधकोंकी भारतके यथार्थ हिताकाँक्षी लोगोंमें गणना करते हैं।

वैदिक ब्रह्मवादके इतिहासमें राजा राममोहनरायके नामका भीउल्लेख होना किसी अंश तक आवश्यक है* । वह इस देशके एक ब्राह्मण-सन्तान थे । उनका जन्म वंगदेशान्तर्गत ग्रामविशेषमें हुआ था‡ । जिस समय मुग़लों की हड्डियोंसे भरी हुई क़बरों पर बृटेनकी विजयिनी शक्ति लीला करती थी और अंग्रेजोंके राजत्वके उषाका प्रकाश जिस समय भारतके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक धीरे-धीरे संचारित होने लगा था, उस समय अर्थात् अठ्ठारहवीं शताब्दिके अन्तमें राजा राममोहनराय आविर्भूत हुए । महापुरुषगण सूर्यके समान प्रभासमन्वित होते हैं । सूर्यके उदय होनेसे जिस प्रकार अन्धकारराशि दूर हो जाती है, महापुरुषगणके आविर्भावसे उसी प्रकार सामाजिक तमोजाल भी तिरोहित हो जाता है । सुतराम् राममोहनके समागमसे भारत-समाजकी तत्कालीन अन्धकारराशिभी अन्तर्हित हो गई थी, किन्तु उनको जिस अन्धकार-जालका प्रभेदन करके भारत-भूमिकी पृष्ट पर पदार्पण करना पड़ा था वह अन्धकार-जाल अति प्रगाढ, अति विकट, और अति विस्तृत था ।

---

*शङ्कराचार्यके समयसे राममोहनरायके समय तक गुरु नानक, कबीर, चैतन्य प्रभृति कतिपय एकेश्वरवाद प्रचारक महा-पुरुषोंका आविर्भाव हुआ, परन्तु उनके प्रचारित मतोंके साथ वेदप्रतिपादित ब्रह्मवादका सर्वांशमें सादृश्य नहीं है, यहां तक कि किसी-किसी अंशमें विशेष रूपसे असादृश्य ही है । इस स्थलमें उसका प्रसंग नहीं है ।

‡ राममोहनरायने १७७४ ईस्वीमें हुगली जिलाके अन्तर्गत राधानगर ग्राममें जन्मग्रहण किया और १८३३ ई० में २७ वीं सितम्बरको इङ्गलैण्डके अन्तर्गत विएटल नगरमें उनका देहान्त हुआ ।

उस दिगन्तविस्तृत अन्धकारमें समग्र भारतसमाज निमज्जित था। तन्त्राचार्यगण उस तमोराशिके भीतर धर्म और धार्मिकता का नाम लेकर बहुत प्रकारके पापोंका अनुष्ठान करते थे। नर-हत्या, सुरापान और परस्त्रीगमन आदि जुगुप्सित कार्य सब तन्त्राचार्योंकी उपासनाके सहायक थे। मदिरा, गांजा प्रभृति उन्मादक सामिग्रीके सेवन करनेसे ही वे लोग चित्तकी परमशान्ति प्राप्त करते थे; नरमांस, नरशोणित, और नरकपाल प्रभृति वीभत्स वस्तुओंके सहचारोंमें ही नितान्त तृप्त रहते थे; और मारणोच्चाटन आदि अभिचारमंत्रोंसे सिद्धिलाभ कर सकनेमें ही अन्तमें अक्षय सुखके अधिकारी होनेका विश्वास करते थे। दूसरी ओर नाम साधन और नामसंकीर्तन आदि कार्य जैसे बाह्यवस्तु वैष्णवसमाजमें समादृत होते थे; विनय नम्रतादिके सम्पर्कसे वे लोग एकप्रकारसे उदासीन हो गये थे, और भगवत्प्रीति वा भगवत्प्रसङ्गको शब्दशास्त्र की ही एक संज्ञा समझने लगे थे। मस्तकमुण्डन, शिखाधारण, मालाग्रहण, चन्दनलेपन, और अपने-अपने नामके पीछे दासानुदासादि शब्दोंका प्रयोग आदि बाह्य-व्यापार-समूह भक्तिपथके परम साधक समझे जाते थे, और परमात्मविषयक जिस निर्मला रतिका आध्यात्मयोग और इन्द्रियनिग्रहके अतिरिक्त प्राप्त होना सर्वथा असम्भव है वे लोग उसको कामिनीसंग वा कामुकताके प्रभावसे ही प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। केवल यह ही नहीं, स्वाधीन चिन्तन और कर्तव्य निष्ठा वङ्गभूमिसे अन्तर्हित हो गई थी—ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं है। कुलगुरु और कुलपुरोहितकी आज्ञासेही यजमान लोग उठते और बैठते थे, और इच्छानुसार दक्षिणा दे सकनेसे ही यजमान अतिपातक और महापातकोंसे छुटकारा पा सकते थे, और अन्धेके पीछे चलने वाले अन्धेके समान यजमान और पुरोहित दोनों ही अज्ञानताके गर्तमें गिरकर धर्मके नामको कल-

ङ्कित करते थे, वेदवेदान्तकी जगह भागवत और भजनविलास की आलोचना होती थी, ब्रह्मचर्य और वैराग्यका साधन न करके लोग इन्द्रियविलासमें ही मत्त रहते थे, और सबप्रकारसे उत्कट और बीभत्स हो सकने पर ही धार्मिकोंके शिरोमणि कहलाकर आदर पाते थे। इसके भिन्न उस भयानक निशामें, उस नितान्त आतङ्कोद्दीपक अमावस्याकी रात्रिमें, अथवा उस दिग्दिगन्तप्रसा-तमोराशिके भीतर भारतके सैकड़ों असहाय बालक अस्फुट आर्त-ध्वनिके साथ भागीरथीके उद्दामतरङ्गोंमें डूबते थे, और सैकड़ों सहस्रों अबला—पतिवियोगके शोकसे मृतप्राया अबला आत्मीय जनकी बनाई हुई ज्वलन्त चिताकुण्डमें गिरकर परम यातनासे व्यथित होकर भारतके मनुष्यत्वको शतधिक्कार प्रदान करते-करते इस लोकसे गमन करती थीं। उन्हीं डूबते हुए बालकोंकी अस्फुट आर्तध्वनि और उन्हीं दयापात्र अबलागणकी मर्मघातिनी रोदन ध्वनिसे उस तामसी निशाको और भी भयङ्कर कर दिया था। फलतः उस समय देशका सर्वनाश सर्वत्र मूर्तिमान् होकर राज्य करता था।

राममोहनराय ने उड्डीयमान सूर्यप्रभाके समान, सुनिपुण चिकित्सकके समान अथवा विचक्षण व्यवस्थाकर्त्ताके समान उपस्थित होकर उस विपन्न और विशृंखलामय समाजमें शान्तिकी घोषणा की। जैसे सुनिपुण चिकित्सक सबसे पहले रोगका 'मूल-निरूपण करता है और मूलनिरूपित हो जानेके पश्चात् चिकित्सा में प्रवृत्त होता है, वैसे ही राममोहनराय ने रोगका मूलनिरूपण करके चिकित्सा आरम्भ की। उन्होंने प्रतिभाके उद्भासित प्रकाश से यह समझ लिया कि हिन्दुओंका जातीय जीवन सर्वतोभावेन धर्मसंसृष्ट है, इस लिये शिल्पके उद्धारसे, राजनीतिके संशोधनसे, अथवा मार्जित और उन्नत शिक्षापद्धतिके विस्तारसे भी हिन्दुओं

की उन्नति सम्भव नहीं है। यदि हिन्दुओंकी उन्नति करनी है तो हिन्दुओंके धर्मकी उन्नति करनी चाहिये। हिन्दुओं का धर्म सनातन ब्रह्मवाद है। अतएव सनातन ब्रह्मवादका उद्धार और उन्नति होनेसे ही हिन्दुओंका उद्धार और उन्नति हो सकती है। यह निश्चय करके वे सैकड़ों रुकावट और सहस्रों प्रतिकूलताओंके होने पर भी अदीनपराक्रम वीर पुरुषकी न्याइ ब्रह्मवादके प्रचारके कार्यमें प्रवृत्त हुये।

उन्होंने पहिले ब्रह्मप्रतिपादक ग्रन्थसमूहका प्रचार किया। ब्रह्मसूत्र वा वेदान्तके समान ब्रह्मप्रतिपादक ग्रन्थ पृथिवी भरमें और नहीं है। महर्षि वादरायण ने ब्रह्मज्ञानकी श्रेष्ठता और ब्रह्मोपासनाको आवश्यकताको ऐसी शृङ्खला, ऐसी धारावाहिता, और ऐसी युक्तियुक्तताके साथ इस ग्रन्थमें प्रतिपादित किया है कि उसके चिन्तनसे विस्मित होना पड़ता है। फलतः वेदान्तको एक अत्युत्कृष्ट ब्रह्मविज्ञानके नामसे उल्लेख कर सकते हैं। इसी कारण राममोहन रायने सबसे पहिले इस अनुपम पुस्तकका अनुवादके सहित प्रचार किया। वेदान्तके पश्चात् वह उपनिषदोंके प्रचारमें कृतसंकल्प हुए। उपनिषदोंको ब्रह्मज्ञानकी खान कह सकते हैं। जैसे मणिकार खानमेंसे रत्नोंको निकाल कर रत्नमाल की रचना करता है, वैसे ही कृष्णद्वैपायन ने भी उपनिषद्रूपी खानमेंसे वेदान्तरूपी रत्नमालाकी सृष्टिकी है। अस्तु। उन्होंने कई एक उपनिषदों को क्रमशः प्रकाशित किया। उनके हृदयमें यह विश्वास अभ्रान्तरूपसे प्रतिष्ठित था कि वेदान्त आदि ब्रह्मप्रतिपादक ग्रन्थसमूहके अध्ययन वा आलोचनाके अभावके कारण ही बङ्गभूमिके रहनेवाले ब्रह्मोपासनाके सम्पर्कसे अज्ञ और उदासीन हो गए हैं। इस लिये उनको यह निश्चय होगया कि ब्रह्मज्ञानकी विमल ज्योतिःशिखाको प्रकाशित करने के निमित्त इन सब ग्रन्थोंका

पुनः २ प्रचार करना ही परम कर्तव्य है। उन्होंने स्वप्रणीत वेदान्तभूमिकाके एक स्थलमें लिखा है:—

"लोकमें शास्त्रके प्रचार न होनेसे स्वार्थपर पण्डितोंके वाक्य प्रबन्ध और पूर्वशिक्षा और संस्कारोंके बलके कारण अनेक सुबोध लोग इस कल्पनामें मग्न हैं, इस लिये मुझ अकिञ्चन ने वेदान्त शास्त्रका अर्थ भाषामें यथासाध्य प्रकाशित किया है। इसके अवलोकनसे ज्ञात होगा कि हमारे मूल शास्त्रोंके अनुसार और अति प्राचीन परम्पराके अनुकूल और युक्तिसे भी जगत्का स्रष्टा, पालता, संहर्त्ता इत्यादि विशेषणोंसे युक्त केवल ईश्वर ही उपास्य माना गया है।" राजा राममोहनराय प्रणीत ग्रन्थावली पृष्ठ ८।

राममोहन राय किसी नये धर्मके प्रवर्तक या नये मतके संस्थापक नहीं थे। इसलिये जो लोग उनको नये धर्मका प्रवर्तक या किसी नये मतका आविष्कारक कहते हैं, हम समझते हैं, वे लोग राममोहनरायका वास्तविक रूपसे सम्मान नहीं करते। कारण यह कि किसी नये धर्मका प्रवर्तक न होकर अथवा भूमण्डलमें किसी नये मतवादको प्रतिष्ठित न करके उन्होंने ऋषिगणप्रदर्शित मार्गका ही अनुसरण किया है, और अपने देशके मनुष्योंको अनुसरण करनेके लिये आग्रहपूर्वक उपदेश किया है। इससे ही उनका यथार्थ महत्त्व प्रभासित हुआ है। असामान्य प्रतिभा, अगाधपांडित्य, प्रभूत मानसिकशक्ति, और क्षुरधारके तुल्य बुद्धि-ये सब ही राममोहन रायमें विद्यमान थीं। इसलिये वे, यदि इच्छा करते, तो नये मतके प्रकाशक वा आविष्कारकके नाम से पूजित हो सकते थे; अथवा अद्वितीय ब्रह्मके अंशावतार किंवा पूर्णावतार रूपसे ही अभिहित वा अभिवादित होनेमें समर्थ हो जाते—इसमें कुछ संशय नहीं है। विशेषतः जिस देशमें इतर जन्तुओं की अर्चना हो, जिस देशमें निरक्षर यहां तक कि निकृष्ट

इन्द्रियासक्त मनुष्य भी परात्पर परमेश्वर कहला कर पूजित होते हों, जिस देशमें वायस विहंगराजके आसनमें अधिष्ठित हों, और जिस देशमें मनुष्य शृगालको सिंहपदके लिये वरण करनेमें अणु-मात्र भी कुण्ठित और संकुचित न होते हों, उसदेशमें राममोहन राय सरीखे अलौकिक शक्तिशाली व्यक्तिके ईश्वर या ईश्वरके अवतार कहलाये जाकर पूजित होनेमें क्या विचित्रता हो सकती है ! किन्तु आश्चर्यका विषय यह है कि उन्होंने अपने आपको साधारण मनुष्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा। इस देशमें धर्मके नामकी कैसे अधोगति हो गई है, और धर्मका नाम लेकर मनुष्य जिस प्रकार क्रमशः ईश्वरपदवी तक अधिकार जमा कर बैठे हैं—यह उनको उत्तम रूपसे विदित था। इस लिये इस भयसे कि भविष्यत्में उनका कोई वंशज व्यक्ति उनको नये अवतारपद पर प्रतिष्ठित करके अथवा स्वर्गगत किसी देवतारूपसे समझके उनके प्रति अनुचित प्रीतिभक्ति अर्पण न करें, उन्होंने अति स्पष्ट भाषामें इस विषयमें अपने मनोभावको व्यक्त कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि:—"अपने लिखे हुए किसी ग्रन्थ में या किसी मौखिक विचारमें मैंने अपनेकी :एकेश्वरवादका संशोधक वा आविष्कारक नहीं कहा है। अधिक क्या, इस प्रकारका सङ्कल्प मेरे अन्तःकरण में कभी उदित भी नहीं हुआ। मैंने अब तक जो ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं उन सबमें यह प्रतिपादित करनेकी चेष्टा की है कि ब्रह्मो-पासना ही हिन्दु जातिका वास्तविक धर्म है और हमारे पूर्वपुरुष-गण उसका ही अनुष्ठान करते थे※।

※In none of my writings, nor in any verbal discussion have I ever pretended to reform or discover the doctrines of the unity of God, nor have I ever assumed the title of reformer or discoverer

वस्तुतः वे इसके बहुत ही विरुद्ध थे कि उनका प्रचारित मत नामान्तरसे परिचित हो वा धर्मान्तरमें परिगणित हो। इसकारण उनके जीवनमें उनका मत धर्मान्तरमें परिगणित वा परिणित नहीं हो सका*। अस्तु। जो मनुष्य राममोहनरायको नये धर्मका

so far from such an assumption, I have urged in every work that I have hitherto published that the doctrines of the unity of God are the real Hinduism, as that religion was practised by our ancestors and as it is well known even at the present age to any learned Brahmans. (Raja Ram Mohan Rai's English Works, Vol, 1, Page 106)

उन्होंने इस प्रकारकी बातें अपने आत्मजीवनवृत्त नामक निबन्धमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखी हैं।

*राममोहनरायका बना हुआ समाज ब्रह्मसभा व ब्रह्मसमाजके नामसे पुकारा जाता था, परन्तु उनका प्रचारित मत ब्राह्मधर्मके नामसे नहीं पुकारा जाता था। उस समय वह 'वेदान्त प्रतिपाद्य सत्यधर्म' के नामसे अभिहित होता था। उनके देहान्तके बहुत दिनों पीछे तक उनका मत इसी नामसे परिचित था। उसके पश्चात् इस नामको परिवर्तित करनेके अभिप्रायसे १७६६ शकाब्द के १५ ज्येष्ठको कलकत्तेके मन्दिरमें एक सभा बुलाई गई और उस सभामें ही 'वेदान्तप्रतिपाद्य सत्यधर्म' के नामके स्थानमें 'ब्राह्मधर्म' नाम परिगृहीत हुआ। उस समयसे राममोहनरायका प्रचारित मत ब्राह्मधर्म नामसे अभिहित होने लगा—(तत्त्वबोधिनी पत्रिका १७६६ शकाब्द आग्रहायन ११४ पृष्ठ)। और इसमें कोई संशय नहीं है कि अब जो ब्राह्मधर्म कहलाता है उसके साथ राममोहन रायके प्रचारित मतका किसी किसी अंशमें पार्थक्य है।

प्रवर्तक सिद्ध करना चाहते हैं अथवा उनके बनाये हुए समाजको स्वजातिके साथ सब प्रकारसे छिन्नसम्पर्क करके एक स्वतंत्र सम्प्रदाय रूपसे परिगणित करने की इच्छा करते हैं, यह हो सकता है कि उनके अन्तःकरणमें अग्निमय उत्साह हो, स्वदेशके लिये यथार्थ ममता हो, और उनके हृदय बहुत कुछ उन्नत और उदार भावसे सम्पन्न हों, परन्तु जातिगत उन्नतिके सूक्ष्म तत्त्व सम्बन्धमें हम उनको अनभिज्ञ मनुष्य ही कहेंगे। यदि हिन्दू-समाजसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई मनुष्य राममोहनरायको अहिन्दू या म्लेच्छधर्मी कहकर अनादर करे, तो यह हम उसको अज्ञानताका कारण समझेंगे; परन्तु यदि उनका कोई मतावलम्बी उनको हिन्दूसमाज वा हिन्दू धर्मसे बहिर्भूत कहकर परिगणित करनेकी इच्छा करे, तो हमको उसकी जातीय हितकामनाके सम्बन्धमें बहुत ही सन्देह होगा।

उनका मत और आर्यधर्म एक वा अभिन्न हैं; परन्तु जिस प्रचारपद्धतिका उन्होंने अवलम्बन किया वह आर्यभावकी सम्यक् रूपसे अनुसारिणी नहीं थी। उन्होंने ब्रह्मवादकी प्रतिष्ठाके उद्देश से विशेषरूपसे वेदान्तका अवलम्बन किया, कठादि पञ्चोपनिषद् का अनुवादके साथ प्रचार किया; और शास्त्रीय विचारके सम्बन्ध में श्रुतिकी सर्वोपरि प्रमाणिकताभी प्रतिष्ठित की; किंतु तो भी उनकी प्रचार-प्रणाली सर्वांशमें आर्यप्रकृतिकी अनुवर्तिनी नहीं हो सकी। कारण यह है कि जिस प्रकारसे भारतीय ब्रह्मवादकी विशेषता है वैसे ही भारतीय ब्रह्मवादके आचार्यपदकी भी विशेषता है। जिस देशमें संसारको अनित्य समझे बिना धर्मबुद्धिका उन्मेष न होता हो, जिस देशमें जिज्ञासु हुए बिना धर्मका अधिकार उत्पन्न न होता हो, जिस देशमें निर्मलचित्त हुए बिना धर्मतत्त्व निरूपित न होता हो, और इससे भी अधिक जिस देशमें जितेन्द्रिय वा ब्रह्म

चर्यपरायण हुए विना धर्मका साधन सर्वतोभावेन असम्भव हो, यहां तक कि जिस देशमें साधनमार्ग शाण पर रक्खे हुए उस्तरेकी धारके समान अतिशय सङ्कटापन्न हो, तो इसमें क्या सन्देह है कि उस देशमें धर्माचार्यकी पदवी अतीव दुरूह और दायित्वसापेक्ष होगी। सर्वलोकपूजित श्रुति ही जिस देशका धर्मशास्त्र परिगणित किया जाता हो, अङ्गिरादि महर्षिगण जिस देशके धर्माचार्य नामसे प्रसिद्ध हों, व्यासादि विश्वविश्रुत महारथगण जिस देशके धर्मव्याख्याता नामसे विख्यात हों, कणादादि कुशाग्रबुद्धि मनस्वि-गण जिस देशके तत्त्वमीमांसक कहलाये जाकर समादृत होते हों, मन्वादि महाभागगण जिस देशके सामाजिक व्यवस्थापकके पद पर प्रतिष्ठित हों, और शङ्कराचार्य और रामानुज प्रभृतिके समान महापुरुषगण जिस देशके धर्मप्रवक्ता कहलाये जाकर कीर्तित होते हों, उस देशमें धर्मप्रचारक का पदपरिग्रहण विशिष्ट शक्ति और विशिष्ट साहसिकता का परिचायक है—इसमें संशय ही क्या हो सकता है। अब इस स्थान में यह विचारने योग्य है कि राममोहन राय भारतीय धर्माचार्यके पद पर अभिषिक्त होनेके योग्य थे वा नहीं। इस विषयमें किसीका भी मतभेद नहीं है कि राममोहनराय केवल अपनी ही जातिके निकट नहीं किन्तु अन्य देशोंमें अन्य जातियोंके निकट भी, अपनी विद्या बुद्धि पाण्डित्य, प्रतिभा, और मनस्विताके कारण एक असाधारण व्यक्ति समझे जाते थे, और इस विषयमें भी किसीकी विरुद्ध सम्मति नहीं है कि उनका समा-गममुहूर्त्त भारतकी भूमिके लिये अतीव शुभ मुहूर्त्त था और उनके शुभ समागमके कारण ही भारत भूमि बारबार लाञ्छित वा अपमानित होने पर भी जगत्के सञ्जीवित जातिसमूहके निकट आज भी गौरव-पदवीका अधिकार प्राप्त किये हुए हैं*। परन्तु

---

* ब्रिस्टल (Bristol) नगरमें राममोहन रायकी मृत्युके

यदि उनकी समुज्ज्वल प्रतिभा, सुशाणित मेधा, सर्वशास्त्रान्त गामिनी विद्या, और अद्भुत मनस्विताके साथ ब्रह्मचर्य और विषयविरागिताका समावेश होता, संक्षेपतः यदि वह अपनेको विषयसंसृष्ट वा विषयासक्त व्यक्तियोंके मध्यमें परिगणित न करते, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि वह तारकमण्डलसे परिवृत चन्द्रमाकी न्याई भारतीय धर्ममण्डलमें अद्वितीय धर्मप्रवक्ता के आसनका अधिकार प्राप्त कर लेते। परन्तु बङ्गभूमिके दुर्भाग्य के वशसे हो अथवा अन्य किसी कारणसे हो, राममोहन रायके पक्षमें ऐसा नहीं हुआ। आर्यजातिके धर्मप्रवक्ता वा धर्माचार्यके पदके लिये कठोर तपस्या आवश्यक है, ज्वलन्त वैराग्य आवश्यक है, एवं विषयतृष्णा वा वैषयिकताके साथ सर्व प्रकारसे सम्बन्ध छोड़ देना आवश्यक है। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति इच्छा करनेसे ही ज्ञानापन्न हो जाय, प्रथितनामा पण्डित हो जाय, किंवा मेधा और मनस्विताके सम्पर्कसे लोगोंके हृदयमें विस्मय उत्पन्न करदे; परन्तु यह नहीं हो सकता कि वह इस देशमें धर्माचार्य वा धर्मप्रचारकके नामसे परिगणित हो जाय। इसी कारण हृदयकी

उपलक्षमें अनेक सभा-समितियोंके अधिवेशन हुए थे। उन सब सभा-समितियोंमें इङ्गलैण्डके अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्तियोंने प्रशंसित राजा साहेबके गुणग्रामके सम्बन्धमें नाना रूपसे आलोचनाएँ की थीं। मेरी कार्पेन्टर (Mary Carpenter) ने अपने राममोहन राय विषयक ग्रन्थमें उन सब आलोचनाओंको अधिकांश लिपिबद्ध किया है। उन आलोचनाओंके भीतर एक सुपण्डित और सदाशय अंग्रेजने कहा है:—"Strange is it that such a man should have been given by India to the world.........Strange is it—but he was not of India, so much as for India." Rev. W. J. Fox.

उद्दाम आकांक्षाके रहते हुए भी हम भारतीय ब्रह्मवादके इतिहासमें राममोहन रायको आचार्य, संस्कारक वा प्रचारकके पदके लिये वरण नहीं कर सकते। वह ब्रह्मवादके सहायक थे—विशिष्ट सहायक थे, विशिष्ट सहायकके भिन्न और कुछ नहीं थे * अस्तु, जिस प्रचारपद्धतिका उन्होंने अवलम्बन किया वह सम्यक प्रकार से हिन्दुओंके भाव की अनुसारिणी क्यों नहीं है—यह बात अब समझमें आगई और इसी प्रसंगमें एक प्रकारसे यह भी प्रतिपादित हो गया कि उनके प्रवर्तित ब्रह्मवाद विषयक व्यापारका सर्वतोभावेन जातीयताके साथ सम्बन्ध नहीं है।

इसके अतिरिक्त इस विषयमें एक और बातकी आलोचना करनी आवश्यक है। वह बात यह है कि इस देशमें ब्रह्मवादके प्रतिष्ठित करनेके उद्देशमें राममोहन रायने क्या २ किया है। इसकी मीमांसाके लिये उनके अनुष्ठित कार्योंके विचार वा विश्लेषनपूर्वक हम इस स्थलमें यही उल्लेख कर सकते हैं, कि

* इस विषय को वह स्वयं भी उत्तम रूप से जानते थे और इसी लिये वह अपने को कभी ब्रह्मवादका संस्कारक वा प्रचारक स्वीकार नहीं करते थे इसके अतिरिक्त इसका भी प्रमाण मिलता है कि उन्होंने अपने सम्बन्धमें यह आक्षेप प्रकट किया है कि मैं ब्रह्मज्ञानी के कर्तव्यकार्य का पालन नहीं कर सकता हूँ। उन्होंने ईशोपनिषद् की भूमिका में लिखा है—"यह सत्य ही है कि जो २ कर्त्तव्य और धर्म हैं वह हमसे नहीं होता, इसके लिये हम सर्वदा सापराध हैं"। यहाँ तक कि उन्होंने अपनेको "सम्यगनुष्ठानाक्षम तज्जन्यमनस्तापविशिष्ट" इत्यादि शब्दोंसे अभिहित करने में भी अनुमात्र संकोच नहीं किया। यह मानना होगा कि वास्तव में यह सब उस महापुरुष की सरलता का परिचायक है। (राममोहन राय की ग्रन्थावली पृष्ट १५१)

उन्होंने एक ओर ब्रह्मोपासनाकी आवश्यकताका प्रतिपादन किया और दूसरी ओर निर्दिष्ट दिवसमें और नियमित समय पर सर्वसाधारण लोगोंके साथ सम्मिलित होकर परब्रह्मकी उपासनाके लिये ब्रह्मसभा स्थापितकी, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। परन्तु हम इसको ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठाके विषयमें यथोचित नहीं कह सकते। क्योंकि यह हो सकता है कि मनुष्यके समाज वा चरित्रकी नीवके ऊपर धर्मको प्रतिष्ठित न कर सकने पर अथवा मनुष्यके नित्यनियमानुष्ठित कर्मको धर्म-सूत्रमें ग्रथित न कर सकने पर भी मनुष्यमण्डलमें धर्म परिघोषित हो जाय, परन्तु पाषाणभूमि में बोये हुए बीज की न्याई वह अति अल्पकाल में ही शुष्क और विलुप्त हो जायगा। दुःख का विषय है कि राममोहन राय अपने प्रचारित ब्रह्मवाद को ऐसी सुदृढ़ और सुनिश्चित भितिके ऊपर संस्थापित करनेके उद्देशसे कुछ भी न कर सके *। वस्तुतः राममोहन रायने जो नहीं किया वा जो नहीं कर सके, उसीके करनेके लिये दयानन्दका आविर्भाव हुआ।

---

* भक्तिभाजन देवेन्द्रनाथ ठाकुर महाशय ने इस विषय में बहुत कुछ प्रयास किया है, परन्तु हम नहीं जानते कि उनका प्रयास कहां तक सार्थक हुआ है। यह भी नहीं कह सकते कि उनकी सङ्कलित की हुई अनुष्ठान-पद्धति ब्रह्मसाधारण लोगोंमें परिगृहीत हुई है वा नहीं। अधिक क्या, इसमें भी सन्देह है कि उनके संसृष्ट सम्प्रदायके सब लोग भी उसको ग्रहण करते हैं वा नहीं। इस प्रकार से अनुष्टान-पद्धति के सङ्कलन और अन्यान्य उपायों से उन्होंने राममोहन राय के बोए वृक्ष को पल्लवित करने के लिये प्रयत्न किया है, परन्तु हम नहीं कह सकते उनका यह प्रयत्न कहां तक सफल हुआ है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने ब्रह्म और ब्रह्मोपासना के नाम पर सहस्रों

दयानन्द ने कहा है:—"अनेक लोग यह जिज्ञासा करते हैं मैं ब्राह्मण हूँ वा नहीं, और वे लोग अनुरोध करते हैं कि इसके प्रमाण के लिये अपने कुटुम्बियों के नाम बतलाओ अथवा उनमें से किसी का लिखा कोई पत्र दिखलाओ। यह कहना अनावश्यक है कि गुजरातवासी लोगों के साथ मैं अधिकतर अनुरागसूत्र में निबद्ध हूँ। अपने कुटुम्बियों के साथ यदि मेरा किसी प्रकार से साक्षात् हो जाय, तो जिस सांसारिक अशान्ति से मैंने अपनेको सर्वतोभावेन स्वतन्त्र किया है फिर मुझे उसी अशान्तिजाल में निश्चय ही फंसना होगा। इसी कारणसे मैं अपने कुटुम्बियोंके नाम बतलाना वा उनमें से किसी का पत्र प्रदर्शन करना उचित नहीं समझता।

मैंने मोरवीमें जन्मग्रहण किया। मोरवी एक नगर है। वह गुजरातके अन्तर्गत दुर्गान्धरा राज्य का सीमान्तवर्त्ती है। मैं उदीच्य श्रेणी का ब्राह्मण हूं। यद्यपि उदीच्य ब्राह्मणगण सामवेदी हैं, परन्तु मुझे यजुर्वेद की शिक्षा दी गई थी। मैंने जिस परिवारमें जन्मग्रहण किया वह एक विस्तृत सम्पत्तिसम्पन्न परिवार था। इस समय मेरी अवस्था ४६ वा ५० वर्ष की है। हमारा कुटुम्ब इस समय पन्द्रह पृथक् २ परिवारों में विभक्त है। मैंने बाल्यावस्थामें रुद्राध्याय की शिक्षापूर्वक यजुर्वेद का पाठारम्भ किया। क्योंकि मेरे पिता शैवमतावलम्बी थे, इस लिये मैं

रुपये अकातरभाव से व्यय किये हैं और अपने जीवन को ब्रह्मनिष्ठा और सत्यपरायणता का एक जीवन्त उदाहरण बनाया है। फलतः उनके समान ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति भारतवर्ष के धनाढ्य पुरुषों में नहीं है। केवल धनाढ्य लोगों की ही क्या कथा है, उनके समान धर्मपरायण व्यक्ति साधारण मनुष्यों की श्रेणी में भी बहुत ही कम हैं।

दश वर्षको आयुसे शिवकी उपासनाका अभ्यास करने लगा था। पिता यह इच्छा करते थे कि मैं शिवरात्रिका व्रत रक्खूं। पिताकी इच्छा पालनेमें मेरे असम्मति प्रकट करने पर भी मुझको शिवरात्रि के व्रत की कथा सुननी पड़ती थी। सुनते २ वह व्रतप्रसङ्ग मुझे ऐसा प्रीतिकर बोध होने लगा कि माता की असम्मति होने पर भी मैं उस व्रत के रखने के लिये कृतसंकल्प होगया। यद्यपि मैं कृतसङ्कल्प होगया तो भी उस व्रतके उद्यापन करने के लिये समर्थ नहीं हुआ। नगर के बाहर एक विशाल शिवमन्दिर था। वहां शिवचतुर्दशी के दिन बहुत लोग आया करते थे एक बार शिवरात्रि के उपलक्ष में मैं, मेरे पिता, और अन्यान्य बहुत से लोग उस मन्दिर में एकत्र हुए। वहाँ महादेव की प्रथम पूजा हो जाने के पश्चात् जब दूसरी पूजा भी समाप्त हो गई, तब रात्रि का प्रायः दूसरा प्रहर था। मन्दिर में आये हुए उपासक गण क्लान्ति दूर करने के निमित्त थोड़ी देर को सोने की इच्छा से एक के पश्चात् एक शयन करने लगे। अधिक क्या मेरे पिता भी थोड़े देरके लिये सो गये। इस बीचमें पुरोहितगण भी मंदिर से चले गये। परन्तु इस आशङ्का से कि व्रतभङ्गका पाप होगा और अभिलषित फल की प्राप्ति से वंचित रहूँगा मैं नहीं सो सका। अस्तु, निद्राके कारण जब मन्दिर निस्तब्ध होगया, तो कई एक चूहे बिलमें से बाहर निकल कर महादेवकी पिण्डी के ऊपर इच्छापूर्वक विचरण और उनके मस्तकस्थित चावलादि भक्षण करने लगे। मैं जागते हुए इस व्यापार को देखता रहा। पहिले दिन जो शिवरात्रि के व्रत का उपाख्यान सुना था उससे मुझे यह विश्वास होगया था कि महादेव एक महाप्रतापान्वित पुरुष हैं। इस कारण इस व्यापारके समय मेरे सरल अन्तःकरण में यह प्रश्न उठा कि जो कई २ सौ दुर्दमनीय दानवों के संहार में समर्थ हैं, वे अपनी देह परसे

थोड़े से चूहों को दूर करनेमें समर्थ क्यों नहीं। इस प्रश्न को बहुत देर तक सोचते २ मेरा मस्तिष्क घूमने लगा और अन्तमें प्रगाढ़ संशय में परिणत होकर मुझको इतना अशान्त कर दिया कि मैं पिता की निद्रा भंग किये विना न रह सका। जब पिता जागे, तो मैंने इस प्रश्न को पूछा और महादेव की पिण्डी परसे चूहों को भगा देने के लिये कहा। जिज्ञासित प्रश्न के उत्तर में पिता ने कहा—"तू अल्पबुद्धि बालक है। यह तो केवल महादेव की मूर्ति मात्र है।" पिता के इस प्रकार के उत्तरसे मैं सन्तुष्ट न हो सका. इसलिये मैंने उसी स्थान और उसी क्षण में यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं त्रिशूलधारी महादेव के दर्शन न करूंगा, तो मैं किसी प्रकार से भी उनकी आराधना नहीं करूंगा।

"इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके मैं घर लौट आया और माता से यह कह कर कि मैं बहुत ही भूखा हूँ खाने को पदार्थ माँगा। उसके उत्तर में माता ने कहा—"मैंने तो तुझे व्रतग्रहण करने से निषेध किया था, क्योंकि मैं जानती थी कि तू उपवास नहीं कर सकेगा। तूने तो अपने ही हठ से व्रत ग्रहण किया था।" उसके पश्चात् मेरे खाने के लिये जो सामग्री उपस्थित थी वह प्रस्तुत करके माता ने मुझको यह परामर्श दिया कि तू दो दिन तक पिता के सामने उपस्थित मत होना और उनके सामने इस की कथामात्र भी न कहना; क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि मैं पिता के निकट उपस्थित हूँगा या कोई कथा कहूँगा तो इस अपराध में मुझको अवश्य ही दण्ड मिलेगा। मैं भोजनकार्य्य सम्पादित करके ऐसे प्रगाढ़ भाव से निद्रित हुआ कि अगले दिन प्रातःकाल के ८ बजे से पहिले किसी प्रकार से भी शय्यात्याग न कर सका। यह समझ कर कि परिगृहीत और प्रभूत पाठाभ्यास करने के सम्बन्धमें विघ्न होगा, मैंने पितामह महाशय से कह दिया कि मैंने व्रतभङ्ग का अपराध किया है, और उन्होंने

ही इस बातको समझ कर पिता का कोप शान्त कर दिया। मैं उस समय यजुर्वेद का पाठ करता था और एक पण्डित के पास संस्कृत व्याकरण पढ़ता था। उस समय मेरी आयु ९ वा १० वर्ष की थी। उस समय यजुर्वेद को समाप्त करके मैं पाठ-क्रिया समाप्ति के निमित्त अपनी जमींदारी के अन्तर्गत एक ग्राम को चला गया।

"हमारे घर एक समय एक घटना विशेषके उपलक्षमें नृत्यगीत हो रहा था। उसी समय मेरी एक बहन दारुण रूप से रुग्ण हो गई। मैं उसके रोग का संवाद सुन कर उसकी शय्या के पास गया। इससे पूर्व मैंने कभी किसी मनुष्य को मृत्यु की यन्त्रणा से पीड़ित होते हुए नहीं देखा था। फलतः मैं उस बहन की दशा को देख कर बहुत व्यथित हुआ और मुझे इस बात का निश्चय हो गया कि मनुष्यमात्र को ही इसी प्रकार से मृत्यु के मुंहमें जाना होगा। उसकी मुमूर्षु दशा को देखकर मेरे भिन्न परिवारके सब लोग विलाप और रोदन करने लगे इसलिये पिता और माता तक भी मुझको पाषाणहृदय कहने लगे। मैं उस अदृष्टपूर्व घटनाको देखकर अतीव आतङ्कित होगया था और इस कारण मैं उनके समान विलाप या अश्रुपात नहीं कर सका था—यह कहना बाहुल्यमात्र ही है। उसके पश्चात् उनकी आज्ञाके अनुसार शय्या पर जाकर सोनेकी चेष्टा की, परन्तु मैं तनिक भी न सो सका। अस्तु, ऐसी शोकावह घटना के अपने सामने एक वार संगठित होने पर भी मैं अपने देश की अद्भुत रीति के अनुसार एक वार भी शोक प्रगट न कर सका। इस कारण मैं अपने कुटुम्बियों की दृष्टिमें निन्दा का पात्र बन गया। जब मेरी १९ वर्ष की आयु थी तब मेरे पितामह ने विषुचिका रोग में ग्रस्त होकर प्राणत्याग किये। जिस समय पितामह मुमूर्षु दशा को प्राप्त हुए, उस समय मुझको अपनी शय्या के पास बुलाकर

मुझे बैठने के लिये आज्ञा की और मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर अश्रुधारा प्रवाहित करने लगे। मैं भी उनको उस अवस्थामें देख कर इतना व्यथित हुआ कि अत्यन्त रोने के कारण मेरी दोनों आँखें सूज आईं। वस्तुतः इस घटना के पहिले मैंने कभी इतना रोदन नहीं किया था। इसके अतिरिक्त इस घटना के पश्चात् मैं यह चिन्ता भी करने लगा कि मुझको भी इसी प्रकार से कालकवल बनना पड़ेगा। जब क्रमशः मृत्युर्चिंता बहुत प्रबल हो गई, तो मैं अपने बान्धवोंसे पूछने लगा कि किस उपाय का अवलम्बन करके अमरत्व प्राप्त हो सकता है। स्वदेश के पण्डितों ने मुझको योगाभ्यास करने का परामर्श दिया, इसलिये मैंने गृहपरित्याग करने का सङ्कल्प कर लिया। उस समय मेरी आयु २० वर्ष की थी। मुझको शान्त और स्वच्छन्द चित्त करने के उद्देश से पिता की यह इच्छा थी कि जमींदारी के कामकाज का भार मेरे ऊपर अर्पित करें, परन्तु मैं उससे सहमत नहीं हुआ। तब पिता ने मुझको विवाहशृङ्खला में बांधने का सङ्कल्प किया। जब विवाह की बातचीत होती थी, तो मैं अपने बन्धुओंसे कह दिया करता था कि मैं कभी विवाह नहीं करूंगा। परन्तु वे उसका प्रतिवाद किया करते थे। जब कभी विवाह के विषय में बान्धवगण मुझ से अनुरोध करते, तब ही मैं उनसे विवाह के बदले गृहत्याग की अनुमति की प्रार्थना किया करता था। मेरे देखते २ एक मास के भीतर ही विवाह सम्बन्धी सब सामग्री प्रस्तुत होगई। यह देख कर एक दिन सायङ्काल को बन्धुविशेष से साक्षात करने के उपलक्ष से मैं घर से बाहर निकल पड़ा। पास ही एक गांवमें रात्रि बिता कर अति प्रातःकाल उठकर मैं फिर चल पड़ा।

"कुछ देर के पश्चात् मैं हनुमान् के मन्दिर में पहुँचा। संक्षेपतः सीधमार्ग का अवलम्बन करके चलने से मुझको कम से

कम दश कोश चलना पड़ा उस मन्दिर में थोड़ी देर ठहर कर जलक्रिया की और वहां से शैलायोगी के उद्देश से प्रस्थान कर दिया; परन्तु वहां मुझे आशा के अनुकूल फल प्राप्त नहीं हुआ और वहां मेरा जाना वृथा हुआ। लाला भक्त नामक एक पुरुष योगी करके परिचित थे, इसलिये मैं इसके पश्चात् उनके अनुसन्धान करने के लिये चला मार्ग में मेरा एक वैरागी के साथ साक्षात् हुआ। वैरागी के पास कई मूर्तियां थीं। वैरागी ने मुझको स्वर्णालङ्कार से भूषित देखकर कहा कि तुम्हारे जैसे मनुष्यों के लिये योगाभ्यास सम्भव नहीं है और इस प्रयोजन से कि मैं अपनी स्वर्ण की अंगूठियां जो मैं अंगुली में पहरे हुए था उन मूर्ति आदि के अर्पण करदूं उसने मुझसे प्रस्ताव किया। अस्तु। मैं लाला भक्त के पास जाकर योगाभ्यास करने लगा। एक दिन रात्रि के समय वृक्ष के नीचे बैठा हुआ योगाभ्यास कर रहा था कि उस समय वृक्ष पर बैठे हुए विहङ्गविशेष की विकट ध्वनि श्रुतिगोचर होने लगी। मैं उसको सुनकर अत्यन्त भयभीत हुआ और यहाँ तक कि मठ में प्रत्यागमन करने के लिये बाध्य होगया। और यह सुन कर कि अहमदाबाद नगर के पास किसी स्थान विशेष में कई वैरागी आये हैं मैंने लाला भक्त के पास से उस स्थान के लिये यात्रा की। मैंने उन वैरागियों के भीतर एक राजमहिषी देखी वह राजमहिषी कहाँ की थी यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु वह मेरे साथ परिहासादि करने लगी। मैं उसके पास से दूर रहने लगा। मैं रेशमी कपड़े पहने हुए था। उनको देख कर वैरागी लोग बहुधा हंसा करते थे, इस कारण मैंने उनको फेंक दिया और सामान्य वस्त्र मोल लेकर पहनने लगा। उस समय मेरे पास केवल ३) रुपये शेष रह गये थे। अस्तु, उस स्थान में मैं ब्रह्मचारी के नाम से प्रख्यात हो गया, और वहां तीन मास ठहर कर कार्तिक के महीने में एक दिन सिद्धपुर

पहुँचा। कारण यह था कि उस समय सिद्धपुर में एक मेले के लगने की चर्चा थी। इसके अतिरिक्त यह आशा करके कि मेलेके कारण अनेक योग-विद्या विशारद योगियों का समागम होगा और उनमें से किसी के उपदेश से मुझे अमरत्व प्राप्त होना सम्भव है, मैं सिद्धपुर गया था। सिद्धपुर के मार्ग में एक पूर्व-परिचित व्यक्ति के साथ मेरा साक्षात् हुआ। दुःख का विषय है कि उसी परिचित व्यक्ति ने पिता के पास जाकर मेरे भाग निकलने का समाचार कह दिया। उस समय तक हमारे जाति और बन्धुवर्ग चारों ओर मेरा अनुसन्धान करते थे। उसके मुंह से सिद्धपुर की यात्रा का संवाद सुन कर मेरे पिता चार सिपाहियोंको साथ लेकर एक दिन मेरे पास आकर उपस्थित होगये। पिता की इस प्रकारकी आकस्मिक उपस्थिति से अत्यन्त भयभीत होकर मैं यह सोचने लगा कि वह मेरे साथ बहुत ही निर्दय व्यवहार करेंगे। इसलिये पिता के सामने प्रणत होकर मैंने कहा कि "मैं एक गोसाईं के बहकाने और फुसलानेसे इस स्थान में आया हूँ, और मैं घर लौट चलने के लिये सहमत हूँ।" इसको सुनकर पिताके क्रोप की शान्ति तो हो गई, परन्तु उन्होंने मेरा काठ का पात्र तोड़ डाला और पहनने के वस्त्र उतार कर फेंक दिये और उपयुक्त वस्त्र पहनने की आज्ञा की, और इस शंका से कि मैं फिर न भाग सकूं उन्होंने दो सिपाहियों को सर्वदा के लिये मेरे ऊपर नियत कर दिया। अधिक क्या, उनका कोई न कोई मनुष्य सारी रात्रि मेरे पास रहने लगा। एक ओर मैं भी प्रस्थान के लिये उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा और यह देखने के लिये कि सिपाही सोता है या नहीं मैं सारी २ रात जागने लगा मेरे खर्राटों को सुन सिपाही यह समझ जाता था कि मैं हर रात्रि को ही गहरी नींद सो जाता हूँ। इसी प्रकार जागते २ तीन रात बीत गईं। चौथी रात को जब सिपाही और

अधिक न जाग सका तो सो गया। मैंने उस समय दैवयोग से अवसर आया हुआ समझ के शय्यात्याग किया और प्रातःकृत्य करने के उद्देश से एक लोटा हाथ में लेकर बाहर निकल आया। उसके पश्चात् नगर के पार जाकर अपने को छिपाने के अभिप्राय से एक निविड उद्यानके बीच में एक वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। वृक्षारूढ़ होकर सारा दिन बिना भोजन किये अतिवाहित करने के पश्चात् जिस समय संध्या का अन्धकार छा गया, उस समय मैं वृक्ष से नीचे उतरा और अपने देश और बन्धु-जन से सारे जन्म के लिये बिदा होकर वेग से भागने लगा। उसके पश्चात् अपने देश के लोगों से केवल एक वार प्रयाग में मेरा साक्षात् हुआ है; परन्तु उस समय मैंने उनसे अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार से परिचयप्रदान नहीं किया।

मैं सिद्धपुर से नर्मदातीरवर्त्ती प्रदेश में गया। वहां योगानन्द स्वामी के साथ मेरा साक्षात् हुआ। योगानन्द के साथ कृष्णशास्त्री नामक एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। वे मुझको किसी किसी विषय में शिक्षा दिया करते थे, और उसके पश्चात् उसी राजगुरु के साथ वेदाभ्यास किया करता था। २३ वा २५ वर्ष की आयु के समय चाणोद में मेरी एक संन्यासी के साथ भेट हुई। शास्त्रानुशीलन में मेरी प्रगाढ़ आकांक्षा थी और संन्यासाश्रम को शास्त्रकी शिक्षा के लिये सर्वापेक्षया सुविधाजनक समझ कर उसी सन्यासी से मैंने दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के पश्चात् मैं दयानन्द सरस्वती के नाम से परिचित हो गया। वहां दो राजयोगपरायण गोस्वामियों के साथ भी मेरा साक्षात् हुआ। उनके साथ मैं अहमदाबाद को चला गया। वहां मेरा एक ब्रह्मचारी से मिलना हुआ, परन्तु मैं उनका संग छोड़ कर हरिद्वार की ओर चला गया। उस समय हरिद्वार में कुम्भ का मेला था। हरिद्वार से मैं हिमालय के उस स्थान को चला गया

जहां से अलखनन्दा निकली है ।अलखनन्दा के जल में किसी वस्तुविशेष के आघात लगने से मेरे पांव ऐसे आहत हुए कि उनमें से रक्त की धारा बह निकली। मैं उससे इतना व्यथित हुआ कि बर्फराशि के बीच में गिर कर मुझे यह प्रतीत होने लगा कि मेरे लिये प्राणत्याग करना ही वाञ्छनीय है। किन्तु मेरी ज्ञान-स्पृहा अतीव प्रबल थी, इस हेतु मैं उस कार्य से प्रतिनिवृत हो हो गया और मथुरा में विरजानन्द नामक सुपण्डित साधु के पास चला आया विरजानन्द पहले अलवर में रहते थे। उस समय उनकी आयु ८१ वर्ष की थी। एक ओर विरजानन्दकी दृष्टि में जहां वेदादि आर्षग्रन्थोंकी प्रगाढ प्रतिष्ठा थी, वहां दूसरी ओर शेखर कौमुदी प्रभृति आधुनिक-पुस्तकों में उनकी बड़ी अश्रद्धा थी। अधिक क्या, वे भागवतादि पुराण के बहुत ही विरुद्ध थे। विरजानन्द अन्धे थे और उनको उदर की पीडा थी। मैंने उनके पास वेदादि ग्रन्थोंका अध्ययन आरम्भ किया। वहां अमर लाल नामक एक सहृदय व्यक्ति अध्ययन विषय में मेरी विशेष रूप से सहायता करने लगे। भोजन और ग्रन्थादि के सम्बन्ध में उदार सहायता के लिये मैं अमरलाल का बहुत ही बाधित हूं। वे भोजनके विषय में इतने सयत्न थे कि पहिले मुझे खिलाये बिना आप भोजन नहीं करते थे। वस्तुतः इसमें संशय नहीं है कि वे एक महान् अन्तःकरण वाले मनुष्य थे। विरजानन्द के पास पाठ समाप्त करके दो बर्ष तक मैं आगरा नगर में रहा। आगरा रहने के समय में शंषयनिवृत्ति के निमित, कभी मैं स्वयं उपस्थित होकर कभी पत्र द्वारा गुरु के पास नाना प्रकार की जिज्ञासा किया करता था।

"आगरे से ग्वालियर जाकर मैं वैष्णवमतके खण्डन में प्रवृत्त हुआ। वहां अनुत्तमाचार्य, नामक एक व्यक्ति मेरी शास्त्रा-लोचना सुनने के लिये सर्वदाआया करते थे और अपने को

किरानी बतलाया करते थे। विचार प्रसङ्ग में जब कभी मेरे मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकल जाता था, तो तुरन्त ही वे उसे शुद्ध कर दिया करते थे। आश्चर्य है कि बहुत वार जिज्ञासा करने पर भी अपने को किरानी के भिन्न और कुछ नहीं बतलाते थे। इसके अतिरिक्त उनसे ज्ञान सम्बन्धी किसी बातकी जिज्ञासा करने पर वह बड़े विनयके साथ कहते थे कि मैंने जो कुछ सुना है उसी कोशिक्षा करता हूँ। एक दिन वक्तृता देते हुए मैंने कहा कि यदि वैष्णवगण मस्तक पर कृष्णवर्ण की रेखा धारण करने से मोक्ष को प्राप्त होते हे, तो सारे मुह को काली रेखाओं से अंकित करने पर वे मोक्ष से भी उच्चपद को प्राप्त होवेंगे। अनुत्तमाचार्य इस बात को सुन कर क्रुद्ध होकर चले गये। उसके पश्चात् मैं ग्वालियर से करौली गया। करौली में कबीरपंथी के साथ मेरा साक्षात् हुआ। उनसे मैंने यह सुना कि कबीरोपनिषद् नाम की एक उपनिषद् है। उसके पश्चात् करौली से जयपुर गया। जयपुर में हरिश्चन्द्र नामक एक महापण्डित से वैष्णवमत पर मेरा शास्त्रार्थ हुआ और उनको पराजित करके शैवमत का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया। इस घटना से जयपुर में महान् आंदोलन होने लगा। महाराजाने शैवमत अवलम्बन किया और प्रजावर्ग भी उसके पक्षपाती होगये। अधिक क्या लोग इतने उत्तेजित हुए कि सहस्त्रों रुद्राक्ष की मालायें वितरित होने लगीं और घोड़े और हाथियों के गले में भी रुद्राक्ष की माला पड़ने से वह अपूर्व शोभा से सुशोभित हो गये। अस्तु। जयपुर से मैं पुष्कर गया। वहां से अजमेरमें आकर शैवमतके विरुद्ध भी प्रचार करने लगा। उस समय राजा रामसिंह निमन्त्रित होकर गवर्नर-जनरल से मिलने आगरे जाते थे। उन्होंने मुझको शैवमत का समर्थक समझ कर मुझको साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की। उनकी इस इच्छा का कारण यह था कि उनको आशा थी कि मैं

पुकारने लगे। कारण यह था कि वहांके कई शास्त्री विचारकी इच्छासे हमारे पास आये और सब ही एक ही समय बोलनेको उद्यत हुए। यह देख कर मैंने उनके विचार व्यापारको कोलाहल नामसे पुकारा। विदित होता है कि इस कारणसे ही उन्होंने मुझको उक्त नाम प्रदान किया। रामगढ़में त्रिचणगढ़ निवासी दश आदमियोंने मुझे मार डालनेका उद्योग किया। मैंने बड़ी सावधानताके साथ उनके हाथसे छुटकारा पाया। उसके पश्चात् मैं कानपुर होकर प्रयाग गया। प्रयागमें भी मुझे मार डालनेके लिये एक दुर्जन प्रेरित हुआ था, परन्तु उस समय एक पुरुष महादेवप्रसाद नामकको सहायतासे मैं मारनेवालोंके हाथसे बचा। महादेवप्रसाद बहुत ही सज्जन थे। उन्होंने प्रयागवासी पण्डितोंमें यह विज्ञापन बांटा था कि यदि वह तीन महीनेके भीतर आर्यधर्मकी उत्कृष्टता सिद्ध न कर सकेंगे, तो मैं क्रिश्चियनधर्म ग्रहण कर लूंगा। किम्बहुना, आर्यधर्मकी उत्कृष्टता प्रतिपादन करके मैंने उनको क्रिश्चयनधर्म अवलम्बन करनेसे रोका। प्रयागसे मैं रामनगर आया। मुझे रामनगरके महाराजाने इसी सङ्कल्पसे बुलाया था कि मैं काशीनिवासी पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ करूं। अस्तु। मैं इसके अनुसार ही काशीसे शास्त्रार्थके लिये गया था। काशीके शास्त्रार्थके सम्बन्धमें वहांके पण्डितोंने हमसे जिज्ञासा की कि वेदमें प्रतिमा शब्द है वा नहीं। उसके उत्तरमें मैंने प्रमाणके सहित कहा कि वेदमें प्रतिमा शब्द है, परन्तु उसके अर्थ सायणके हैं। काशीका शास्त्रार्थ पुस्तकरूपमें छपा है, जिन लोगों की इच्छा हो वे सब उसको देख सकते हैं। मैंने काशीके पण्डितोंके साथ इस बातके सिद्ध करनेकी भी चेष्टा की कि वेदोंके ब्राह्मणभागकी इतिहासमें ही गणना करनी उचित है। पिछले भाद्रपदमें मैं काशीमें चौथी वार गया था। मैं जितनी वार काशी गया, उतनी ही वार वहाँके पण्डितोंको इस बातके

सिद्ध करनेके लिये निमन्त्रण दिया कि मूर्त्तिपूजा वेदप्रतिपादित है वा नहीं, परन्तु उनमेंसे कोई भी इस बातको सिद्ध करनेके लिये मेरे सामने नहीं आया। इस उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने प्रायः समस्त भारतवर्षमें परिभ्रमण किया है। पिछले दो वर्षोंके भीतर मैंने कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर और जब्बलपुर प्रभृति स्थानोंमें सहस्रों मनुष्योंके सामने आर्यधर्मका प्रचार किया है और संस्कृतभाषाके अनुशीलनके अभिप्रायसे काशी और फर्रुखाबाद प्रभृति स्थानोंमें कई संस्कृतकी पाठशालायें स्थापित की हैं। परन्तु अध्यापकोंकी अनुदारताके कारण उन पाठशालाओंसे आशाके अनुरूप कोई फल उत्पन्न नहीं हुआ। मैं पिछले वर्ष बम्बई आया था। बम्बई नगरमें महाराजमतके प्रतिवादमें प्रवृत हुआ और वहां एक आर्यसमाज संस्थापित किया। बम्बईसे अहमदाबाद और वहांसे राजकोट जाकर वैदिक-धर्मकी जयघोषणा की। दो मासके लगभग हुए कि मैं आपके निकट ठहरा हुआ हूँ। फलतः इस समय जो कुछ मैंने कहा है वही संक्षेपमें मेरे जीवनका इतिहास है। आर्यधर्मकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें सच्चे प्रचारकों का वास्तवमें अभाव ही है। एक व्यक्तिके करनेसे यह महान् कार्य कभी भी सम्पादित नहीं हो सकता; परन्तु मैंने इसके निमित्त अपनेको यथाशक्ति समर्पित करनेकी प्रतिज्ञा करली है मेरी अन्तःकरणसे यही कामना है कि भारतवर्षके एक अन्तसे लेकर दूसरे अन्त तक आर्यसमाज स्थापित हों और देशमें व्यापी हुई कुरीतियाँ उन्मूलित हो जायँ, और मेरी ईश्वरसे शुद्ध हृदयसे यही प्रार्थना है कि सब जगह वेदादि शास्त्रोंकी व्याख्या और आलोचना हो और हमारा निद्रित देश जाग उठे ❀।"

❀ १८७५ ईस्वीके जुलाई और अगस्त मासमें पूनानगरमें

दयानन्दने फिर कहा है:—"१८८१ संवत्‌में काठियावाड़ प्रदेशके मोरवी राज्यके अन्तर्गत एक नगरमें उदीच्य ब्राह्मणोंके वंशमें मैंने जन्मग्रहण किया। मैंने अपने जन्मस्थान और पिताके नामको कर्त्तव्य पालनवश अप्रकाशित रक्खा है। यदि आत्मीय-गण जान जांय, तो वे मुझको ढूंढ़ कर घर ले जांयगे: और ऐसा होने पर मुझको अर्थस्पर्शरूप पापमें फिर लिप्त होना पड़ेगा और सांसारिक लोगोंके समान संसारमें रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा आदि भी करनी पड़ेगी। ऐसा होनेसे जिस धर्म्म-संस्कार रूप पवित्र व्रतमें मैंने अपना समग्र जीवन अर्पित किया है वह असिद्ध और असमाप्त रह जायगा।

"पांच वर्षसे कुछ दिन कमकी आयुमें मैंने देवनागर अक्षर सीखे और अपनी जाति और कुल परम्पराकी प्रथाके अनुसार बहुतसे वेद-मन्त्र और वेदभाष्य कण्ठस्थ कर लिये। आठवें वर्षमें उपनयन हो जानेके पश्चात् मैं प्रति दिन सन्ध्या गायत्रीका अभ्यास किया करता था। उसके पश्चात् रुद्राध्यायसे आरम्भ करके यजुर्वेदसंहिताके अध्ययनमें प्रवृत्त होता था। मेरा परिवार शैवमतावलम्बी था, इसलिये अल्पवयससे ही मैं शिवलिङ्गकी पूजाका अभ्यास करने लगा था। मैं अपेक्षया सबेरे आहार किया करता था; और शिवपूजामें बहुतसे उपवास और कठोरता

दयानन्द सरस्वतीने कई वक्तृतायें दी थीं। अन्तिम दिवस अर्थात् अगस्तकी १५ तारीखको वक्तृताकी समाप्ति के पश्चात् उपस्थित मनुष्योंने उनको अपने जीवन विषयमें कुछ बोलनेके लिये आग्रहके साथ अनुरोध किया। उन्होंने इस विषयमें जो कुछ कहा उपर्युक्त अंश उसका अनुवाद मात्र है। परन्तु यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि अनुवाद करनेमें भाषाकी अपेक्षा भाव पर अधिक दृष्टि रक्खी गई है। The Arya Patrika Vol, 1. Nos. 46, 47 & 48.

सहन करनी पड़ती हैं, इसलिये स्वास्थ्यकी हानिके भयसे माता मुझे प्रतिदिन शिवकी उपासना करनेसे रोका करती थी, परन्तु पिता उसका प्रतिवाद किया करते थे। इस कारण इस विषयको लेकर माताके साथ पिताका प्रायः विवाद रहा करता था। मैं उस समय संस्कृत व्याकरण पढ़ता था, वैदिक मन्त्रोंको कण्ठस्थ करता था; और पिताके साथ कभी शिवालयमें कभी अन्य देवालयमें जाया करता था। पिता मुझे सर्वदा यही उपदेश दिया करते थे कि शिवोपासना ही सर्वोच्च धर्म है और शिवमें प्रगाढ़ भक्ति रखना अवश्य कर्त्तव्य है। मैंने चौदहवें वर्षमें पैर रखनेसे पहिले ही व्याकरण, शब्दरूपावली, समस्त यजुर्वेदसंहिता और अन्य वेदोंके भी कई एक अंश कण्ठस्थ करके एक रूपसे अपने पाठकार्यको समाप्त कर दिया था। मेरे पिताके यहाँ व्यापारका काम होता था और वे जमादार अर्थात् नगरके करसंग्रह करने वाले और मजिस्ट्रेट थे, इस कारण हमें संसार में कोई क्लेश न था। किम्बहुना जमादारीका काम हमारे वंशमें परम्परासे चला आता था। अस्तु। जहाँ कहीं शिवपुराणका पाठ वा व्याख्या हुआ करती थी पिता मुझको वहां साथ ले जाया करते थे। माता के वारंवार प्रतिदिन शिवपूजाके करनेसे निषेध करने पर भी पिता मुझको उसके करनेके लिये कठोर रूपसे आदेश किया करते थे। शिवरात्रिके आने पर पिता ने कहा कि आज तुम्हारी दीक्षा होगी और मन्दिरमें जाकर सारी रात जागना पड़ेगा। माताने यह आशंका करके कि ऐसा करनेसे मैं अस्वस्थ हो जाऊंगा इसका घोर रूपसे प्रतिवाद किया; परन्तु पिताने उनके आक्षेप वा प्रतिवाद पर दृष्टिपात नहीं किया। पिताकी आज्ञाके अनुसार मैं उस दिन रात्रिके समय अन्यान्य लोगों के साथ सम्मिलित होकर शिवमन्दिर में गया। शिवरात्रिका जागरण चार प्रहरों में विभक्त होता है। दो प्रहरोंके पश्चात् जब निशीथ

काल आया, तब पुरोहित और अन्यान्य कई लोग मन्दिर से बाहर आकर सो गये। मैं बहुत दिनसे सुनता था कि यदि वह मनुष्य जिसने व्रतधारण किया है शिवरात्रिको सो जायगा तो वह अभिलषितफलकी प्राप्ति से वञ्चित रहेगा। इस लिये बीच २ में निद्राके वेगसे अभिभूत होने पर भी मैं पुनः २ आँखोंमें जल-सिञ्चन करके जागरित रहा। एक ओर पिता भी मुझको जागनेका आदेश देकर निद्राविष्ट हो गये। उस समय विचार पर विचार आकर मेरे हृदय पर अधिकार जमाने लगे। मेरे मनमें नाना प्रकार के प्रश्न उठने लगे। फलतः मैं चिन्तास्रोतसे विचलित हो गया। मैं आप ही अपने से जिज्ञासा करने लगा कि शास्त्रमें जो कहा गया है कि महादेव विचरण करते हैं, भोजन करते हैं, सोते हैं पीते हैं, हाथमें त्रिशूल धारण कर सकते हैं, डमरू बजाते हैं, और मनुष्योंको शाप प्रदान कर सकते हैं, तो क्या वह महादेव यही वृषवाहन पुरुष हैं जो मेरे सामने हैं? क्या यही वह पुराणकथित कैलाशपति परमेश्वर हैं? इस चिन्तासे अत्यन्त अस्थिरचित होकर मैंने पिता को जगाकर जिज्ञासा की कि क्या यह विकट शिवमूर्ति ही वह शास्त्रोल्लिखित महादेव हैं? उसके उत्तर में पिताने कहा—"तू यह बात क्यों पूछता है?" मैंने कहा कि "यदि यह मूर्त्ति ही सर्वशक्तिमान् जीवन्त परमेश्वर है तो यह अपने शरीरके ऊपर चूहोंको दौड़ता हुआ देखता हुआ और चूहोंके सम्पर्कसे अपवित्र देह होता हुआ भी उनको क्यों नहीं भगा देता?" तब पिताने मुझे समझानेकी चेष्टा की कि कैलाशपति महादेवकी इस प्रस्तरमय मूर्त्तिने पवित्रचित ब्राह्मणोंकी की हुई प्रतिष्ठाके कारण देवत्वलाभ कर लिया है। विशेषतः इस पापमय कलियुगमें महादेवका साक्षात्कार होना असम्भवहै, इसलिये पाषाणादिकी मूर्त्तिमें ही उनकी सत्ता कल्पित की जाती हैं। पिता की इन बातोंसेमेरी तृप्ति नहीं हुई। अस्तु। श्रान्त क्षुधित होनेके

कारण पितासे मैंने घर लौटने की अनुमति माँगी। पिताने आज्ञा देकर मेरे साथ एक सिपाही कर दिया और इस विषयमें कि मैं भोजन करके व्रतभङ्ग न करूं बारंबार मुझसे कह दिया; परन्तु घरमें आकर जब मैंने माता से क्षुधाकी कथाको प्रकाशित किया, तब उन्होंने जो कुछ मुझे आहारके लिये दिया उसको मैं बिना खाये नहीं रह सका। भोजन के पश्चात् मुझे गहरी नींद आ गई। दूसरे दिन प्रातःकाल पिताने घरमें आकर सुना कि मैंने व्रतभङ्ग किया है। यह सुन कर वह मेरे ऊपर बड़े क्रोधित हुए और मुझको वह यह समझाने लगे कि मैंने व्रतभङ्ग करके महापाप किया है। परन्तु मैं उस पाषाणकी मूर्त्तिका परमेश्वरके भावमें विश्वास न कर सका और मनमें सोचने लगा कि मैं फिर कैसे उसकी उपासना करूंगा और उसके लिये उपवास रक्खूंगा। किन्तु उस आन्तरिक भावको छिपाकर मैंने पितासे कहा कि जब मेरा सारा समय पाठाभ्यास करने में ही चला जाता है, तो मेरे लिये नियमित रूपसे शिवकी आराधना करनी कैसे सम्भव हो सकती है? माता और चचा दोनोंने यह कहकर कि यह युक्ति-संगत है मेरी कथाका समर्थन किया। अन्तमें उन्होंने मुझे अधिक समय पाठादि कार्यमें ही लगाने की आज्ञा दी। उसके अनुसार मैंने पाठ्यविषयको कुछ विस्तृत करके निघण्टु, निरुक्त और पूर्व मीमाँसादिका अध्ययन आरम्भ किया।

"हम पाँच भाई बहन थे। उनमें दो मेरे भाई और दो बहनें थीं। जब मेरी आयु १६ वर्षकी थी तब मेरे सबसे छोटे भाई का जन्म हुआ। एक बार रात्रिके समय मैं एक बान्धवके घर नृत्यो-त्सव देख रहा था कि घरसे एक भृत्यने आकर समाचार दिया कि मेरी १४ वर्षकी बहन बहुत ही पीडित हो गई है। आश्चर्य है कि यथोचित चिकित्साके होते हुए भी मेरे घर लौटनेके दो घण्टे पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई। उस भगनी के वियोगका शोक

मेरे जीवनका प्रथम शोक था। उस शोकसे मेरा हृदय विलक्षण रूपसे व्यथित हुआ। जिस समय मेरे आत्मीय और स्वजनगण उस भगनी के लिये चारों ओर विलाप और रोदन करते थे, उस समय मैं पाषाणनिर्मित मूर्त्तिके समान अविचलित भावसे खड़ा हुआ यह सोच रहा था कि इस संसारमें सब मनुष्यों को ही मृत्युके मुखमें जाना होगा। इसलिये मुझे भी एक दिन मृत्युका ग्रास बनना होगा। फलतः मैंने उस समय यह सोचा कि किस जगह जानेसे मैं मृत्युकी यन्त्रणासे बच सकूंगा और मुक्तिके पथ का दर्शन कर सकूंगा। मैंने उसी जगह खड़े २ यह संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार से हो सकेगा उसी प्रकार से मैं मुक्तिपथके दर्शनसे अवर्णनीय मृत्युक्लेशसे अपनी रक्षा करूंगा। ऐसी चिन्ताके पश्चात् उपवासादि में मेरी श्रद्धा नहीं रही और मैं आध्यात्मिक शक्तिके विषय में चिन्ता करने लगा। परन्तु मैंने इस सारी आन्तरिक कथाको किसीको जानने नहीं दिया। कुछ दिन पीछे मेरे चचाकी भी मृत्यु हो गई। मेरे चचा सद्गुणसम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति थे और वह मुझको बहुत प्यार करते थे, इस कारण मैं उनके वियोग से बहुत ही व्यथित हुआ और इस घटनासे मेरे हृदयमें यह भाव और भी बद्धमूल हो गया कि संसार के भीतर कोई ऐसी स्थायी अथवा मूल्यवान् वस्तु नहीं है जिसके निमित्त जीवनधारण किया जा सकता है। ऐसी मानसिक अवस्था के विषयमें माता-पिताको तनिकसा भी ज्ञान न होने देने पर भी मैंने यह बात किसी २ बन्धुसे प्रकट कर दी कि मेरे लिये विवाहित होना वांछनीय नहीं है। होते २ यह बात माता-पिताके कर्ण-गोचर हुई और वे मुझको विवाहकार्यमें शीघ्र संलग्न करने के लिये कृतसङ्कल्प हो गये। जब मैंने यह जाना कि माता-पिता मेरे विवाहके लिये बहुत ही व्यस्त हैं, तब मैं उनको रोकनेके लिये यथासाध्य चेष्टा करने लगा और बन्धुलोगोंसे भी मैंने अनुरोध किया

कि माता-पिताको समझा बुझाकर रोक दें। अन्तमें पिताके समीप मैंने अपने पक्षको ऐसा समर्थन किया कि उन्होंने थोड़े दिनके लिये विवाहव्यापारको स्थगित रखना ही युक्तिसंगत निश्चय किया और सुयोगसे यह इच्छा हुई कि काशी जाकर व्याकरण समाप्त कर और ज्योतिषशास्त्रकी उत्तमरूपसे शिक्षा प्राप्त करलूं, परन्तु यह इच्छा कार्यमें परिणत नहीं हुई। कारण यह कि काशीयात्रा के पक्षमें माताने बहुत ही दुःखित होकर कहा कि तुम जो कुछ अध्ययन करनेकी अभिलाषा रखते हो वह घर रहकर ही अध्ययन कर सकते हो और युवापुरुषगण बहुत लिखना पढ़ना सीख जाने पर बहुधा स्वेच्छापरायण हो जाते हैं, इसलिये आगामी वर्षसे पहिले ही मैं तुम्हारे विवाहका प्रबन्ध करूंगी। अन्तमें काशी जानेके प्रस्तावको छोड़कर मैंने पितासे कहा कि हमारी जमादारी के भीतर एक ग्राम में हमारे परिचित अध्यापक हैं। यदि आप मुझको उनके पास अध्ययनार्थ जानेकी आज्ञाप्रदान करें, तो मैं वहां रहकर ही पाठकार्य कर सकता हूँ। वह प्रवीण अध्यापक हमारे घरसे तीन कोस पर रहता था। अस्तु। पिताके आज्ञा देने पर मैं उनके पास जाकर कुछ समय तक निश्चिन्तचित्त होकर अध्ययन करने लगा। परन्तु वहां एक दिन घटनावश मैंने विवाह के विषयमें अपना विरुद्ध अभिप्रायः प्रकाशित कर दिया। पिताने किसी प्रकार उसको जान लिया और मुझको घर लौट आनेकी आज्ञा भेज दी। उसके अनुसार मैं घर आगया और मैंने देखा कि मेरे विवाहके लिये समस्त वस्तु प्रस्तुत हो गई हैं। तब मैं स्पष्टरूपसे समझ सका कि माता-पिता मुझको और अधिक अध्ययन करनेमें रत नहीं रहने देंगे और मेरा विवाह किये बिना शान्त नहीं होंगे। उसके पश्चात् मैंने स्थिर किया कि जिस काम के करनेसे मुझे विवाहशृङ्खलामें निबद्ध होना न पड़े उसी कार्यका अनुष्ठान करना मेरे लिये कर्त्तव्य है।

"इस प्रकार स्थिर करके संवत् १६०३ में एक दिन संध्याके समय विना किसीके जाने हुए मैंने संसारका परित्याग कर दिया। चार कोस दूर एक गाँवमें रात्रि यापन करके प्रातःकाल होनेसे पहिलेही मैं फिर चल पड़ा। सारा दिन चलकर मैंने पन्द्रहकोस से भी अधिक मार्गातिक्रमण कर लिया। जिस मार्गसे होकर सर्वसाधारण लोग आते जाते थे मैंने इच्छा की कि उस मार्गसे न चलूं। इस सावधानताके साथ पर्यटन करना मेरे लिये कितना मङ्गलकर हुआ—इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि तीसरे दिन एक गवर्नमेन्ट कर्मचारीके साथ साक्षात् होने पर मुझे विदित हुआ कि किसी भागे हुए युवापुरुषके ढूंढने के लिए कई अश्वारोही लोग इधर उधर फिरते हैं। अस्तु, कुछ काल पश्चात् भिक्षुक ब्राह्मणोंके एक दलके साथ मेरा साक्षात् हुआ। वे यह कह कर कि जितना दान दोगे परलोक में उतनाही सुख-भोग करोगे मेरे अलङ्कारादि मांगने लगे। सुतराम् मेरे पास जो रुपये और सोने चांदीके जितने अलङ्कार थे वे सब मैंने उनको दे दिये। इसप्रकार सर्वस्वदान करके मैं शैलानगर में लाला भक्त के पास चला गया। लाला भक्त एक साधु और सुशिक्षित व्यक्ति करके प्रसिद्ध थे। वहाँ एक ब्रह्मचारीके साथ मेरी बातचीत हुई। मैं उससे दीक्षा लेकर ब्रह्मचारीके आश्रममें प्रविष्ट हो गया, और गेरुवे वस्त्र धारण करके शुद्धचैतन्य नाम ग्रहण कर लिया। शैला-से मैं अहमदाबादके पास किसी स्थानको जाता था कि दौर्भाग्य-वश एक परिचित वैरागीके साथ मेरा साक्षात् हो गया। वैरागी हमारे निवासस्थानके पासही किसी ग्राम विशेषका रहने वाला था और हमारे परिवारसे सुपरिचित था। वह मुझको देख कर जितना विस्मयापन्न हुआ मैं भी उसको देख कर उतनाही विपदा-पन्न हुआ। उसके पश्चात् उसके जिज्ञासा करने पर कि ऐसे रूपमें ऐसे स्थानमें आनेका क्या कारण है मैंने कहा कि पृथ्वीके

नाना स्थानोंमें परिभ्रमण करने और दर्शन करनेके अभिप्रायसे ही मैं घरसे निकल आया हूँ। तब उसने मेरे इस अभिप्रायकी निन्दा की और मुझको गेरुवे वस्त्र पहने देख कर उपहास करने लगा। मुझको हतबुद्धिके समान देख कर वैरागी मेरे भविष्य सङ्कल्पके विषयमें जान जायगा मैंने उससे कह दिया कि कार्तिक मासमें सिद्धपुरमें जो मेला होगा मैं उसके देखनेके लिये वहाँ जाता हूँ। फलतः वैरागीके चले जानेके पश्चात् मैं शीघ्र ही सिद्धपुर पहुँच गया और साधु संन्यासियोंके साथ नीलकण्ठ महादेवके मन्दिर में रहने लगा। उस विस्तृत मेलाभूमिमें मैंने नाना श्रेणीके साधु, ज्ञानी और परमार्थपरायण तपस्वियोंके संसर्गमें कितनेही दिन विना किसी आपत्तिके अतिवाहित किये। परन्तु एक दिन प्रातः काल मैं साधुसज्जनोंके साथ नील कण्ठके मन्दिरमें बैठा था कि अकस्मात् मेरे पिता कई सिपाहियोंके साथ मेरे सामने आ खड़े हुए। तब मेरे सहजमेंही यह समझमें आगया कि पूर्वोक्त वैरागी ने घर लौट कर पितासे मेरे पलायनका समाचार कह दिया। पिताने क्रोधसे अग्निमूर्ति धारण करके मुझको बहुतही तिरस्कृत किया और बारंबार यह कहने लगे कि ऐसा कार्य करके मैंने अपने कुलको सदा के लिये कलङ्कित किया है। उनकी बातका किसी प्रकार प्रतिवाद करना उचित न समझ कर मैं हाथ जोड़ कर उनके पैरोंमें गिर गया और यथोचित विनय-नम्रता-प्रकाश करके उनको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा। और उनसे मैंने यह भी कहा कि मैंने एक असद्व्यक्तिके असत्परामर्शसे ऐसा किया है और उसके पश्चात् मुझे अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ है। पितासे मैंने यह भी कहा कि आपका आना मेरे लिये सुविधाका कारण हुआ है; क्योंकि मैं घर लौट जानेका उद्योग कर ही रहा था कि आप आ गये। अब चलिये मैं आपके साथ घर लौट चलूंगा। इस प्रकारके अनुनयविनयसे अपराधक्षमाकी

चेष्टा करने पर भी पिता जी शान्त नहीं हुए। उन्होंने क्रोधाविष्ट होकर मेरे गेरुवे वस्त्र फाड़ डाले, कमण्डलु फेंक दिया और मुझको मातृहन्ता कह कर भर्त्सना करने लगे। अन्तमें मेरी रक्षा करनेके लिये उन्होंने कई सिपाहियोंको नियत कर दिया। सिपाही वन्दीके समान मेरी दिनरात रक्षा करने लगे। इस ओर पिताके संकल्पके समान मेरा संकल्प भी अविचलित था। इस लिये सिपाहियोंके हाथसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये मैं सर्वदा ही सुयोगकी प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन जब रात्रिका तीसरा प्रहर था, तब मुझको निद्राविष्ट समझ कर मेरे रक्षक सिपाही भी निद्रित हो गये। तब मैं उत्तम सुयोग देख कर धीरे-धीरे उठा और एक जलपरिपूर्ण पात्र हाथमें ले कर शीघ्रतासे चल दिया। आधे कोससे अधिक दूर पहुँच कर मैंने एक बहुशाखासमन्वित वृक्ष देखा और अपनेको छिपानेके उद्देशसे उस वृक्ष पर चढ़कर एक सघनपल्लवावृत स्थानमें बैठ गया। उषाकाल होने पर मैंने देखा कि सिपाही लोग चारों ओर मेरा अनुसन्धान करते हैं। मैं संध्याकालपर्यन्त उसी वृक्षके ऊपर चुपचाप और विना हिले-जुले बैठा रहा। उसके पश्चात् जब चारों ओर अन्धकार फैल गया, तब मैं वृक्षसे उतर कर विपरीत दिशामें चलने लगा। चलते २ अहमदाबाद और बड़ौदा पहुँचा। बड़ौदाके चैतन्यमठ नामक मन्दिरमें ब्रह्मानन्द और अन्यान्य ब्रह्मचारी संन्यासियोंके साथ वेदान्तविषयमें विचार हुआ। उन्होंने अब मुझको यह बात उत्तमरूपसे समझा दी कि मैंही ब्रह्म हूँ। पहिले भी वेदान्ताध्ययन के समय यह विषय कुछ २ समझ लिया था, परन्तु अब उनसे पूर्ण रूपसे समझ कर जीव-ब्रह्मकी एकतामें विश्वास करने लगा। इस समय एक काशीकी रहने वाली स्त्रीसे मैंने यह संवाद पाया कि वहाँ पण्डितोंकी एक महासभा होगी। इस संवादके पाते ही मैंने काशीकी ओर यात्रा कर दी और वहाँ पहुँच कर सच्चिदानन्द

परमहंसके साथ मनस्तत्त्वके विषयमें बात चीत करने लगा। सच्चिदानन्दसे मैंने सुना कि नर्मदाके तीर पर चाणोदकल्याणी नामके स्थानमें बहुतसे उन्नतचरित्र संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। इसके अनुसार मैंने वहाँ जा कर अनेक योगदीक्षित साधुओं को देखा। इससे पहिले मैंने किसी योगदीक्षित साधुको नहीं देखा था। चानोदमें कुछ दिन रहनेके पश्चात मैं परमानन्द परमहंससे वेदान्तसार और वेदान्तपरिभाषा प्रभृति ग्रन्थ पढ़ने लगा। इस समय मुझको आप भोजन पकाना होता था, इस लिये मेरे पाठमें बहुत विघ्न होता था। इस लिये मैंने संन्यास आश्रममें प्रविष्ट होनेका संकल्प किया। विशेषतः संन्यासाश्रमका अवलम्बन करनेमे दूसरा नाम ग्रहण करने पर मेरा परिचय-सम्पर्क भी निरापद हो जायगा। इन सब बातोंको सोचकर मैंने यह स्थिर किया कि संन्यासिसम्प्रदाय में प्रवेश करना ही मेरे लिये युक्तिसङ्गत है। उसी समय चानोदके पासही एक जङ्गलमेंसे दाक्षिणात्यसे दो साधु आये। उनमें एक स्वामी थे और एक ब्रह्मचारी। वे शृङ्गगिरि मठसे द्वारिकाकी यात्राको जाते थे। उन साधुओंमें पहिले पूर्णानन्द सरस्वती नाम करके परिचित थे। एक परिचित महाराष्ट्रीय पण्डितके साथ मैं उनके पास गया। महाराष्ट्रीय पण्डितने उनसे संन्यास लेनेके सङ्कल्पको कह कर मुझको दीक्षित करने का अनुरोध किया। पूर्णानन्दने मेरे साथके पण्डित की बातमें यह आपत्ति उठाई कि दीक्षार्थीकी आयु अल्प है, विशेषतः मैं महाराष्ट्रीय हूँ, उसके लिये किसी गुजराती संन्यासीसे दीक्षा लेना विधेय है। उसके उत्तरमें मेरे साथी बोले कि महाराष्ट्रदेशीय संन्यासीगण गौड़ोंको भी दीक्षित कर सकते हैं। अस्तु इस प्रकार की आपत्ति वा असम्मति के पश्चात् अन्तमें पूर्णानन्द सरस्वती से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करके मैं दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुआ। दीक्षाकार्य की

समाप्ति क पश्चात् दोनों साधु द्वारिका को चले गये। मैं चानोदमें कुछ दिन रह कर व्यासाश्रम को चला गया। व्यासाश्रम में योगानन्द नामक एक योगविद्याविशारद साधु रहते थे। उनके पास कुछ दिन शिक्षार्थीरूपसे रहनेके पश्चात् मैं कृष्णशास्त्रीके पास व्याकरण विषयमें विशिष्ट रूपसे ज्ञानलाभ करके फिर चानोदमें चला आया। चानोदमें ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्दगिरि नामक दो साधु थे। मैं उन्हीं पुरी और गिरिके साथ योगालाप और योगाभ्यास करने लगा। कुछ दिन के पश्चात् दोनों साधु चले गये। उनके चले जानेके एक मास पीछे मैं भी उनके निर्देशके अनुसार अहमदाबादके पास दुग्धेश्वर के मन्दिरमें चला गया। वहाँ फिर उनसे साक्षात् हुआ। मैंने वहाँ उनसे योगविद्याके गूढ़तत्त्वोंको सीखा। योगशिक्षाके विषय में मैं उन दोनों साधुओंका विशिष्ट रूपसे ऋणी हूँ। उसके पश्चात् मैं राजपूतानाके अन्तर्गत आबू पर्वतपर गया, क्योंकि मैंने सुना था कि वहाँ सिद्ध महापुरुषगण रहते हैं। आबूसे संवत् १९११ में मैं हरिद्वारके कुम्भ पर गया। कुम्भ पर सैकड़ों साधु तपस्वियोंके समागमको देखकर मैं विस्मयान्वित होगया। जितने दिन कुम्भका मेला रहा, उतने ही दिन मैं एक समीपवर्त्ती जंगलावृत एकान्त स्थानमें रहकर योगाभ्यास करता रहा। मेले की समाप्ति पर हृषीकेश जाकर साधुओंके साथ कभी, योगकी बातचीतमें कभी योगाभ्यासमें कुछ दिन बिताये। वहाँ एक ब्रह्मचारी और दो पार्वतीय उदासियोंके साथ परिचय होगया और हम चारों टिहरी चले गये। टिहरीमें कई साधुओं और राजपण्डितोंके साथ वार्तालाप हुआ। उनमेंसे एक ने भोजनके लिये निमन्त्रित किया। निर्दिष्ट समय पर मैं और ब्रह्मचारी बुलानेवालेके साथ निमन्त्रणकर्त्ताके गृह पर पहुँचे; परन्तु घरमें प्रविष्ट होते ही मैंने देखा कि एक ब्राह्मण माँस काट रहा है।

घरके भीतर कुछ दूर जाकर मैंने देखा कि एक स्थानमें कई पण्डित स्तूपीकृत पशुमाँस और पशुमुण्डको लिये हुए बैठे हैं। यह सब देख कर मेरे भीतर अत्यन्त घृणाका उद्दीपन हुआ। इसलिये यद्यपि गृहस्वामीने मुझको आदरसे आहूत किया, परन्तु मैं उससे एक दो बात कहकर ही शीघ्र लौट आया। कुछ काल पश्चात् वही मांसाहारी पंण्डित मेरे पास आया और यह कहकर कि मेरे ही भोजनके लिये माँसादि बनाया गया है मुझको साथ ले जाने का अनुरोध करने लगा। तब मैंने कहा कि मांसभोजन तो दूर रहा, मांसके दर्शनसे ही मेरे मनमें अत्यन्त घृणा उत्पन्न होती है अतएव यदि आप आहारके लिये मुझसे बहुत अनुरोध करते हैं। तो मुझे कुछ फलमूल भेज सकते हैं। किम्बहुना, निमन्त्रणकर्त्ताने ऐसा ही कर दिया।

"वहां ग्रन्थोंके अनुसन्धान करने पर पूर्वोक्त राजपण्डित बोले कि यहाँ व्याकरण, ज्योतिष और तन्त्र प्रभृति ग्रन्थ मिल सकते हैं। मैंने इससे पहले कभी तन्त्र ग्रन्थ नहीं देखे थे। इसी कारण कई तन्त्रग्रन्थोंको मंगा कर मैं पाठ करने लगा। परन्तु तन्त्रोंमें परदारागमन यहां तक कि मातृगमन, दुहितृगमन और नग्न स्त्री की पूजा प्रभृति नितान्त जुगुप्सित आचारोंका अनुमोदन और मद्यमांसादिके विहित होनेका प्रतिपादन देख कर मुझे अत्यन्त घृणा हो गई। इसके भिन्न उन ग्रन्थोंमें अनुवाद और व्याख्या के सम्बन्धमें भी मैंने बहुत भ्रान्ति देखी। विशेषतः ऐसे २ निन्दनीय कार्योंको धर्ममें परिगणित देख कर मैं अतिशय आश्चर्यान्वित हुआ। इसके पश्चात् टिहरीसे मैं श्रीनगरमें केदारघाटके एक मन्दिरमें कुछ दिन ठहरा। वहां के पण्डितोंके साथ विवाद उपस्थित होने पर मैंने तन्त्रों की कथा खोल कर उनको पराभूत किया। वहां गङ्गागिरि नामक एक साधुके साथ मेरा वार्त्तालाप और मित्रता हो गई। उनके साथ मेरा मिलाप दोनोंके

लिये ही हितकर हुआ। वस्तुतः मैं इतना आकृष्ट हुआ कि उनके साथ दो माससे भी अधिक व्यतीत किये। केदारघाटसे रुद्रप्रयाग प्रभृति स्थानोंमें पर्यटन करके मै अगस्त्यमुनिके आश्रममें आया। उसके पश्चात् शिवपुरी नामक पर्वत की चोटी पर जाड़ोंके चार मास विताये शिवपुरीसे केदारघाट होता हुआ गुप्तकाशीमें आया वहां कुछ दिन ठहर कर त्रिजुगीनारायण, गौरीकुण्ड और भीमगोड़ा प्रभृतिके दर्शन करके मैं फिर केदारघाट चला आया। केदारघाट एक अति रमणीय स्थान है। पूर्वोल्लिखित ब्रह्मचारी और दोनों उदासियोंके न लौट आने तक मैं वहाँ कई जङ्गमसम्प्रदाय के साधुओंके साथ रहने लगा। अस्तु। सिद्ध महापुरुषोंके अनुसन्धानके अर्थ मैंने चारों ओर की हिमाच्छादित पर्वतमालामें भ्रमण करनेका सङ्कल्प किया। परन्तु विस्तृत हिम और संकटमय पार्वतीय पथके विषयमें चिन्ता करके महापुरुषोंके अनुसन्धानके सम्बन्धमें मैं पहिले उन प्रदेशोंके रहने वाले लोगोंसे जिज्ञासा करने लगा। किन्तु मेरी वातको सुन कर वे सब ही मुझे अज्ञ भ्रान्तविश्वासी समझने लगे। फलतः इस प्राकर प्रायः २० दिन तक वृथा पर्यटन करके मैं निरुत्साहित हो गया लौटते हुए तुङ्गनाथ की चोटी पर चढ़ गया। वहां एक मन्दिरके भीतर बहुतसी देवमूर्त्ति और पुरोहितों को देखकर मैं उसी दिन चोटीसे नीचे उतर आया। उतरते समय अपने सामने मुझे दो मार्ग दीख पड़े उनमेंसे एक पश्चिम की ओर और दूसरा दक्षिण पश्चिम की ओर जाता था। मैंने किसी प्रकारकी विवेचना न करके जंगल की ओर जाने वाले मार्गका अवलम्बन किया। उस मार्ग पर चलते२ मैं एक निबिड जंगलके भीतर पहुँच गया। जंगल में स्थान २ पर जलबिहीन छोटी छोटी नदी और छोटे बड़े पत्थर विद्यमान् थे। ऐसे निबिड़ बनके बीचमें पहुँच कर मैं यह सोचने लगा कि उन्नतर पर्वतके ऊपर चढ़ूं या नीचेकी ओर चलूं। अन्त में यह

सोचकर कि पर्वतके ऊपर चढ़ना विशेष विघ्नसंकुल है, तृणलता और गुल्मोंको दृढ़ रूपसे पकड़ कर मैं एक जल विहीन नदीके अपेक्षाकृत ऊंचे तट पर पहुँच गया। उसके पश्चात् एक शिला-खण्डके ऊंचे भागपर खड़ा होगया, तो मैंने चारोंओर केवल ऊंचे२ प्रस्तरखण्ड और अविश्रान्त अरण्य देखे। अस्तु। यद्यपि कांटोंके आघातसे मेरा सारा शरीर क्षत हो गया था और मेरे दोनों पैर चलनेकी शक्ति से विहीन हो गये थे, तो भी मैं उस वनभूमिसे निकलनेके लिये फिर आगे बढ़ा। कुछ देर पश्चात् एक पर्वतके नीचे पहुँच कर मार्गका सन्धान प्राप्त हुआ। निकट ही कई श्रेणी बद्ध पर्णकुटियें थी। मैंने उन पर्णकुटियों के रहने वालोंसे जिज्ञासा की; उन्होंने कहा कि यह मार्ग अखीमठ तक चला गया है। यद्यपि उस समय चारों ओर अन्धकार फैल गया था, तो भी मैं उस मार्ग का परित्याग न करने का यत्न करता हुआ धीरे २ चलने लगा और अन्तमें अखीमठ पहुंच कर वहां रात्रियापन किया। प्रातःकाल मैं फिर गुप्त काशीमें आया, और वहाँ से अखीमठ आकर वहां के महन्त के साथ बातचीत की। महन्त मुझको शिष्यत्व ग्रहण करनेके निमित्त अनुरोध करने लगा और इस प्रकार के प्रलोभनयुक्त प्रस्ताव करने लगा कि उसकी मृत्यु के पश्चात् महन्तपद पर अधिष्ठित होकर मैं लाखों रुपयोंका स्वामी हो जाऊंगा। उसके उत्तर में मैंने सरलभावसे कहा कि सम्पत्ति या सांसारिकतामें मेरा अनुराग नहीं है। यदि ऐसा होता, तो मैं कभी घर छोड़ कर न आता, क्योंकि मेरे पिता की सम्पत्ति आपके मठकी सम्पत्तिकी अपेक्षा किसी अंशमें भी न्यून न थी। मैंने सम्पत्ति-सुखभोगके लिये संसार त्याग नहीं किया है, किन्तु जिस गूढ़ ज्ञानके प्राप्त होनेसे मुक्तिरूप परम पदके लाभ में समर्थ होसकूं उसीके उपार्जन करनेके लिये मैंने संसार का त्याग किया है। तब महन्तने मेरे साधु सङ्कल्पकी

प्रशंसा करके वहां कुछ दिन ठहनेके निमित्त अनुरोध किया, किन्तु मैंने उसके उत्तरमें कुछ नहीं कहा और दूसरे दिन प्रातः-काल जोशीमठको चला गया। जोशीमठमें शास्त्री, संन्यासी और योगियोंके साथ योग और अन्याय विषयोंकी आलोजना करके मैं बद्रीनारायणके मन्दिरको चला गया। वहांके मन्दिरके प्रधान पुरोहित रावलजी थे। मैं रावलजीके साथ कई दिन तक रहा और वेद और दर्शनशास्त्रोंके विषयमें आलोचना की। बदरी-नारायणके समीपवर्त्ती प्रदेश में किसी योगी वा सिद्धपुरुषके दर्शन होना असम्भव सुनकर मैंने अन्याय स्थानोंमें पर्यटन करने का संकल्प किया। एक दिन प्रातःकाल चल कर मैं अलखनन्दा के तटपर पहुँचा। अलखनन्दाके दूसरी पार न जाकर उसकी उत्पत्तिस्थलके देखने के अभिप्रायसे मैं बड़े क्लेशसे हिमकीर्ण मार्गको अतिक्रमण करने लगा। जब मैं उस स्थानपर पहुँचा जो कि उसके उत्पत्तिस्थानके नामसे प्रसिद्ध है, तो मुझे और किसी दिशामें मार्ग दिखाई नहीं दिया।। इसलिये नदी के दूसरी पार जाना ही युक्तियुक्त समझा। मेरे शरीरपर बहुत ही अल्प वस्त्र था, इस कारण शीतकी अधिकतासे मेरा सारा शरीर कम्पायमान होने लगा। इसके अतिरिक्त क्षुधा और तृष्णासे भी शरीर अव-सन्न हो गया। एक वर्फके टूकड़ेको खाकर मैंने क्षुधा और तृष्णा के निवारणकी चेष्टा की, परन्तु उससे न तो क्षधा ही निवारित हुई और न पिपासा ही। उसके अनन्तर मैं अलखनन्दाके जलमें उतरा। वह किसी २ स्थानमें बहुत गहरा था, और उसकी तीर-भूमि में सूक्ष्मधार वाले बर्फखण्डोंके समूहसे समावृत थी। इस सूक्ष्मधार बर्फके आघातसे मेरे तलवे ऐसे आहत हुए कि उनमेंसे रक्तस्राव होने लगा। असह्य शीतसे मेरे दोनों पैर ठिठर गये और मेरा शरीर एक प्रकारसे चेतना रहित हो गया। अस्तु। ऐसे असीम क्लेशके पश्चात् जब मैं अलखनन्दाके दूसरी पार

पहुँचा तब शरीरके सारे वस्त्रोंको एकत्र करके उन क्षतस्थानोंको बाँधा, किन्तु एक पग भी आगे बढ़नेकी शक्ति नहीं रही। ऐसी अवस्थामें मैं दूसरों के सहाय्यका प्रार्थी होकर खड़ा था कि इतने में घटनावशसे पर्वतीय प्रदेश के रहने वाले दो जन मेरे निकट उपस्थित हुए। उन्होंने मुझे लिवाजानेके निमित्त बारम्बार अनुरोध किया; परन्तु मैंने उनकी कथा पर कर्णपात नहीं किया। कारण यह था कि उस समय मुझमें चलने की शक्ति कुछ भी नहीं थी। विशेपतः मृत्यु उस समय एकमात्र वाञ्छित विषय हो गया था। परन्तु मेरे भीतर ज्ञानकी स्पृहा ऐसी प्रबल थी कि मैंने मृत्युकामनाका परिहार किया और कुछ देर विश्राम करके धीरे २ चलकर बसुधारा नामक पवित्र स्थानमें पहुँचा। बसुधारासे बदरीनारायणके मन्दिर में प्रायः आठ घड़ी रात गये जा पहुँचा। मन्दिरके स्वामी रावलजीने मुझे देख कर कुछ विस्मय-प्रकाश-पूर्वक सारे दिन का संवाद पूछा। मैंने उनसे क्रमबद्ध वृत्तान्त वर्णन करके आहार किया, और मन्दिरमें ही सो गया। दूसरे दिन रावलजीसे विदा होकर रामपुरकी ओर चल पड़ा। रामपुरमें रामगिरि नामक साधुके घरमें पहुँचा। रामगिरि कभी सोते नहीं थे। सारी रात्रि जागृत रह कर कथा-वार्त्ता कहते रहते थे। कभी चिल्लाने लगते थे और कभी रोने लगते थे। अकेले रहते हुए और इस प्रकार व्यवहार करते हुए भी शान्त नहीं होते थे। मैंने शिष्योंसे सुना कि यह उनका स्वभाव ही है। वहांसे काशीपुरऔर वहाँ से द्रोणसागर जा कर शीत ऋतु व्यतीत की। द्रोणसागरसे मुरादाबाद होता हुआ सम्भलमें गया। गढ़मुक्तेश्वरको जाते हुए मुझे भागीरथीके दर्शन हुए।

"उस समय मेरे पास हठप्रदीपिका, योगबीज और शिव-सन्ध्या प्रभृति ग्रन्थ थे। मैं भ्रमण कालमें इन सब ग्रन्थोंका पाठ किया करता था। उनमेंसे एक ग्रन्थमें मैंने नाड़ीचक्र का विवरण

पढ़ा। वह मुझे सत्य प्रतीत नहीं हुआ, प्रत्युत उस विषयमें मेरे चित्त में संशय उत्पन्न हो गया। संशयजालको तोड़नेके अभिप्रायसे मैं एक दिन नदी के भीतरसे एक शव खींच लाया। एक छुरी द्वारा शवको उत्तमरूपसे चीर कर उस ग्रन्थ को सम्मुख रख लिया, और ग्रन्थोल्लिखित वर्णन के साथ चीरे हुए शवके अनेक अंगोंको मिला कर देखने लगा। परन्तु उसके किसी अंगमें भीग्रन्थवर्णित नाड़ीचक्र का निदर्शनमात्र भी न पाकर उस शव के साथ ही उस ग्रन्थको भी टुकड़े-टुकड़े करके नदीमें फेंक दिया। उस समयसे वेद, उपनिषद्, पातञ्जल और सांख्यके भिन्न और जिन २ ग्रन्थोंमें योगकी कथाका उल्लेख है उन सबकोहीं मैं मिथ्या समझने लगा। इस घटना के पश्चात् कुछ काल तक गङ्गा के तट पर रह कर मैं फ़र्रुखाबाद आया और वहाँसे संवत् १९१२ में कानपुर आया। उसके पश्चात् इलाहाबाद और मिरजापुर प्रभृति स्थानोंमें भ्रमण करके काशी में पहुँचा। वहाँ गङ्गा वरुणा के सङ्गमके स्थान पर एक कुटीके भीतर रहा और वहांके राजाराम शास्त्री और काकाराम शास्त्री प्रभृति पण्डितोंसे परिचित होगया। काशीसे चण्डालगढ़ आया। मैं उस समय योगानुशीलन में अधिक काल व्यय करता था और अन्नाहार परित्याग कर दिया था।केवल दूधपान करके ही देह धारण करता था। परन्तु दुःखका विषय है कि मुझे उस समय विजया पीने की बान पड़गई थी। चण्डालगढ़के निकटस्थ एक गांवके एक शिवालय में एक दिन रात्रियापनके लिये उपस्थित हुआ। भांगसे उत्पन्न हुई मादकताके वशसे मुझे वहां गहरी नींद आगई। मेरे विवाहके सम्बन्धमें पार्वतीके साथ महादेवकी बात-चीत हो रही है—ऐसा एक स्वप्न देखकर मैं जाग पड़ा। उस समय वर्षा हो रही थी। सुतराम मन्दिर के बरामदेमें गया। वहां नन्दी वृषदेवताकी एक विशाल मूर्ति थी। अपनी पुस्तकादिको नन्दीकी मूर्तिके ऊपर रख कर

मैं उसके पीछे बैठ गया। सहसा नन्दीमूर्तिके भीतर दृष्टिपात करने पर मुझे विदित हुआ कि उसमें एक मनुष्य बैठा हुआ है। मेरे उसकी ओर हाथ फैलाने पर ही वह कूद कर भाग गया। तब मैं उस ही शून्यगर्भ मूर्तिके भीतर बैठकर अवशिष्ट रात्रि भर सोता रहा। प्रातःकाल एक वृद्धा वृषदेवताकी पूजाके लिये आई। मैं उस समय वृषदेवताके भीतर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह वृद्धा दही और गुड़ लेकर आई और मुझे ही वृषदेवता समझ कर गुड़ और दही मेरे सामने रख दिये। मैं भी उस समय क्षुधार्त्त था; मैं उस सबको ही खा गया। विशेषतः अम्लरसविशिष्ट दहीके पीनेसे भाँगकी मादकता भी जाती रही। उसके पश्चात् जहाँसे नर्मदा निकली है उस स्थानके देखनेके अभिप्रायसे यात्रा की। मार्गमें अनेक वन-जङ्गल पड़ते थे। एक स्थान में एक जंगली सूवरने आकर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। उसके गुड़गुड़ाने पर समीपवर्त्ती लोग मेरी रक्षाके निमित्त आ पहुँचे; किन्तु उनके पहुँचनेसे पहिले ही मैंने वराहके आक्रमणसे अपनी रक्षा कर ली थी। इसके पीछे उन्होंने, यह कह कर कि मैं अरण्यमें व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओंका कवल हो जाऊँगा, मुझसे लौट जानेके लिये अनुरोध किया; परन्तु उनकी बातको न सुन कर मैं क्रमशः आगे चल दिया। स्थान २ में मैंने हस्तियोंके उखाड़े वृक्ष देखे। एक स्थानमें कण्टकाघातसे देह अनेक जगहोंसे विच्छिन्न होगया। क्रमशः चारों दिशायें संध्याके अन्धकारमें आवृत होने लगीं। उस समय मैंने थोड़ी दूर पर ही अग्निका प्रकाश देख कर मनुष्योंके निवासका निदर्शन पाया, और प्रकाश की ओर चलते २ कई एक पर्णकुटियोंके समीप पहुँचा। वहां एक छोटी नदी थी। मैंने उसके जलमें क्षतस्थानोंको धोया और एक विशाल वृक्षके नीचे बैठ गया। वहाँके लोग मेरे निकट आये और मेरे आहारके लिये दुग्ध लाये और सारी रात मेरी रक्षा करके

परम आतिथ्यका परिचय दिया। मैं उनके आतिथ्यसे परितुष्ट होकर गहरी नींदमें सो गया। प्रातःकाल उठ कर मैंने सन्ध्या-बन्दन किया और उसके पश्चात् भविष्यत्के लिये प्रस्तुत होने लगा *।"

---

* उपर्युलिखित अंश १८७९ और १८८० ई० के थ्यासो-फिस्ट पत्रमें प्रकाशित हुआ है। वस्तुतः थ्यासोफिस्ट पत्रमें प्रकाशित होने ही के कारण स्वामी दयानन्दने उसको लिखा और फिर अंग्रेजीमें अनुवाद होकर प्रकाशित हुआ। यह उनके लिखे हुए एक पत्रसे विदित होता है कि अपने आत्मचरितको थ्यासो-फिस्ट पत्रमें सम्पूर्ण रूपसे प्रकाशित करनेकी उनकी इच्छा थी। The Theosophist. 1880, April. P. 190. हमने यहाँ थ्यासोफिस्टसे अनुवाद करके ही प्रकाशित किया है। इस स्थलमें भाषाकी अपेक्षा भाव पर अधिकतर लक्ष्य रखकर ही अनुवाद किया गया है। भारतसुदशाप्रवर्तक नामक हिन्दी पत्रमें जो फर्रुखाबादसे प्रकाशित होता था दयानन्दके निज कथित आत्म-चरितका कुछ अंश मुद्रित हुआ है। वही मुद्रितांश "श्रीयुत स्वा० दयानन्द सरस्वती महाराजकी कुछ दिनचर्या" नामक पुस्तकरूपसे पुनर्वार मुद्रित हुआ है। हमने अनुवाद करनेके समय किसी २ विषयमें उस पुस्तिकाके साथ भी मिला करके देखा है। दयानन्द के प्रथमवार कथित आत्मचरितके साथ द्वितीयवार कथित आत्म-चरितका किसी २ अंशमें कुछ २ भेद है, विशेषतः किसी २ घटना के पूर्वापरत्ताके सम्बन्धमें कुछ २ पार्थक्य हो गया है। ऐसा होने पर भी ऐसे पार्थक्यसे मूल विषयकी कुछ भी हानि नहीं है।

ओ३म्

दयानन्दचरित

—❀(:)❀—

प्रथम परिच्छेद ।

—:❀:—

जन्म,-जन्मकाल,-मातापिता,-बाल्यशिक्षा,-मूर्त्तिपूजा में अविश्वास-मृत्युचिन्ता,-विषयवितृष्णा,-गृहनिष्क्रमण ।

दयानन्द सरस्वती संन्यासी थे। संन्यासी कभी अपने आश्रम की नीतिका अतिक्रमण करके नहीं चलता। इसलिये दयानन्द आत्मपरिचयके सम्बन्धमें अपना नामादि न बतला कर निर्वाक् रहते थे। सुतराम् उनके किंवा उनके माता-पिताके नामादिके विषयमें कुछ भी जाननेकी सम्भावना नहीं है। कई लोग कहते हैं कि दयानन्दका पहला नाम मूलशङ्कर था। ऐसी उक्तिके निर्मूल होनेका कोई कारण नहीं है। अधिकतर इस कारणसे कि दयानन्दके पिता जैसे शिवपरायण थे और उनकी शङ्करनिष्ठा और शङ्करप्रियता जैसी प्रवला थी, इसलिये यह कुछ भी असम्भव नही है कि वह अपने पुत्रका शङ्कर वा शङ्करसंसृष्ट कोई नाम रखते। जब कि इस विषयमें कोई स्पष्टतर प्रमाण नहीं हैं, तो हमने उनको दयानन्द सरस्वतीके नामसे ही परिचित वा प्रख्यात किया है।

दयानन्दकी जन्मभूमि मोरवी नगर था। यह मोरवी राज्य का प्रधान नगर है। मोरवी राज्य गुजरातके अन्तर्गत काठिया-

वाड़ प्रदेशमें स्थित है। दयानन्दने कहा है, "मैंने मोरवीमें जन्म ग्रहण किया ! मोरवी एक नगर है। वह दुर्गान्धरा राज्यके सीमान्तवर्ती है"। दूसरे स्थानमें उन्होंने कहा है, "काठियावाड़ प्रदेशमें मोरवी राज्यके अन्तर्गत एक नगर......में मैंने जन्मग्रहण किया।" इन दोनों प्रकारकी उक्तियोंमें कुछ आंशिक भेद होने पर भी मूल में कोई विरोध नहीं है। अस्तु। हम यह नहीं कह सकते कि मोरवी नगर दुर्गान्धरा राज्यके सीमान्तवर्ती है वा नहीं। इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं है कि दयानन्दने किसी ग्रामविशेष* में जन्म-

---

* आर्यसिद्धान्तके सम्पादक पं० भीमसेनशर्माने किसी गुजरातदेशी ब्राह्मणसे सुना है कि मोरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा नामक ग्राममें दयानन्दका जन्म हुआ था। यह बात विश्वासके योग्य प्रतीत नहीं होती, क्योंकि दयानन्दने अपने कथित आत्मचरितके प्रसंगमें एक से अधिकवार यह लिखा है कि उनका जन्मस्थान नगरविशेष है।

(नोट—बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय महाशयने आजसे ३० वर्ष पूर्व यह 'दयानन्द चरित' लिखा था, किन्तु इस विषयके सत्यता को निर्धारित करनेके लिये देवेन्द्र बाबू स्वयं मोरवी राज्यमें जाकर राजकीय कागज पत्रोंकी पड़ताल एवं निकटवर्तीय सम्बन्धियोंसे अनुसन्धान कर स्वामीजीका जन्मस्थान टङ्कारा ही निश्चय किया और स्वामीजी का जन्म नाम मूलजी तथा उनके पिताका नाम कर्षणजी बताया।

स्वामीजीके जन्म स्थानके निर्णयके लिये सार्वदेशिक सभा द्वारा नियुक्त कमिटिके मुख्य कार्यकर्त्ता एवं गुरुकुल कांगड़ीके आचार्य श्री रामदेवजी प्रभृति कई महानुभावोंने भी विशेषरूपसे खोजकर टङ्कारा ग्राम ही स्वामीजीका जन्म स्थान निश्चय किया तथा बम्बई प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाने सम्वत् १९८२ विक्रमी में टङ्कारामें ऋषि दयानन्दकी जन्मशताब्दि महोत्व मनाया था।)

ग्रहण नहीं किया, प्रत्युत नगरविशेषमें ही उनका जन्म हुआ और वह नगर मोरवी नगर ही है *।

दयानन्दने जिस समय जन्मग्रहण किया, उस समय भारत भूमि विशृङ्खलापूर्ण थी। उस समय भारतभूमिका आभ्यन्तर नाना प्रकारके युद्धविग्रहोंसे विप्लवित था। उस समय अंग्रेजोंकी विजयनी शक्तिके साथ महाराष्ट्रकी महाशक्ति संघर्षित होरही थी, सिन्धिया और पेशवाका अपरिमित पराक्रम पर्युदस्त होरहा था, और उससे कुछ पहिले राजपूत जातिकी विश्वविश्रुत वीरगरिमाने भूतकालकी अवसादमय अङ्कका आश्रय ले लिया था। क्या राजस्थानमें, क्या महाराष्ट्रमें और क्या पञ्जाबमें, प्रायः सर्वत्र ही उस समय अंग्रेजोंकी महिमा प्रसारित और प्रतिष्ठित होने लगी थी। उस समय लार्ड आम्हरस्ट भारतभूमिके सिंहासन पर आरूढ़ होकर भाग्यचक्रको घुमा रहे थे। उनके अमोघ आदेशसे विजयी बृटिश सेनागण ब्रह्मदेशको विध्वस्त कर रहे थे। और भरतपुरके इतिहासकीर्तित दुर्ग पर अधिकार पाकर अपने ही वीरमदमें आप ही उन्मत हो रहे थे। उस समय देशमें शान्ति सूचित हो गई थी; परन्तु स्थापित नहीं हुई थी। इसी कारण देशनिवासी बहुधा आतंकित चितसे कालयापन करते थे। विशे-

*मोरवी नगर मच्छू नामकी नदीके तीर पर स्थित है। मच्छू नदी मोरवीके उत्तरमें बहती हुई ११ कोसकी दूरी पर कच्छ उपसागर में मिल गई हैं। यह नगर राजकोटसे ३५ मील दूर है। मोरवी राज्य काठियावाड़के हालार नामी बिभागके अन्तर्गत है इस राज्यका क्षेत्रफल ८२१ वर्गमील है। मोरवीका राजा कच्छपति रावका वंशधर कहलाता है अंग्रेजी सरकारके अतिरिक्त बड़ौदाके गायकवाड़ और जूनागढ़के नव्वाबको भी मोरवीका राज्य कर देता है। Imperial Gazetteer Vol, IX P. 518—19

षतः ठग नामक नरघातकोंके अत्याचारसे सारा देश कांप उठा था। उस समयकी सामाजिक अवस्था भी शोचनीय थी। समाजभूमि विविध प्रकारकी आवर्जनाओंसे समावृत थी। अधिक क्या; भारतके चितासमूहमें सैकड़ों अवलाओंके जीवन्तदेह पड़ २ कर भस्मराशिमें परिणत हो रहे थे। उस समय लोकशिक्षा वास्तविकरूपसे प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। उस समय राजा प्रजाकी शिक्षा की आवश्यकता को विशेष रूपसे अनुभव करके उसके प्रकार और प्रणालीके विषयमें विद्वत्समाजके साथ परामर्श कर रहे थे। उस समय क्रिश्चियनधर्मकी दो एक प्रकाशरेखा भारतभूमिके ऊपर थोड़ी २ गिर रही थी। एक दल प्रख्यातनामा प्रचारक* आर्यावर्त पर अधिकार करनेके उद्देशसे बद्धपरिकर होकर आया था। वह भागीरथीके पवित्र तट पर अपने प्रचारालयको प्रतिष्ठित करके हिन्दुओंके समाज और धर्म पर निरन्तर ही अत्याक्षेप कर रहा था। इससे भी अधिक उस समय अधर्म और अज्ञानताका घोर अन्धकार भारतमें चारों ओर परिव्याप्त हो रहा था। देशवासीगण उस घोर अन्धकारके भीतर आत्मविस्मरण करके गहरी निद्रासे अभिभूत हो गये थे। केवल एक मनुष्य ब्राह्मणसन्तान बङ्गभूमिके एक प्रान्तमें जागृत होकर ब्रह्मवादकी विजय भेरीको वारंवार निनादित कर रहा था। उसके भेरीनादसे भारत जाग तो गया था; परन्तु जैसे निद्रा से उठा हुआ व्यक्ति सहसा अपनी अवस्थाका अवधारण नहीं कर सकता है, ऐसे ही भारतभूमि भी अपनी अवस्थाके अवधारण करनेमें समर्थ नहीं थी ऐसे समयमें महात्मा दयानन्द सरस्वती संवत् १८८१ अथवा सन् १८२४ ईस्वीमें एक उदीच्य ब्राह्मणकुल

*This band consisted of Messrs Ward, Carey, Marshman who settled in the city of Serampur near Calcutta on the banks of the Ganges.

में आविर्भूत हुए ❀। संवत्‌के भिन्न उनके जन्मकालके विषयमें इमें मास तारीख या तिथीके सम्बन्धमें कोई पता नहीं लगा।

दयानन्दके पिता एक विशिष्ट शिवोपासक थे। यहाँ तक कि वह शिवोपासनाको ही सार और सर्वोच्चधर्म्म समझते थे। फलतः विपुलसम्पत्ति और विस्तृत परिवारके स्वामी होने पर भी वह धर्म्मविषयमें जैसे निष्टासम्पन्न थे वैसे निष्टासम्पन्न लोग संसारमें बहुत न्यून देखनेमें आते हैं। इसी हेतु शङ्करके उद्देशसे वार-व्रत अर्चना-उपवास जो कुछ अनुष्ठितव्य था वह उस सबको ही सर्वाङ्गरूप से अनुष्ठित करके चलते थे। केवल आप ही नहीं चलते थे, उनके लिये दूसरोंको भी अनुरोध करते थे। जिस स्थानमें शिवपुराणका पाठ होता, जहाँ शिवोपाख्यान

❀ अध्यापक मैक्समूलरने अपने लिखे हुए जीवनीमाला विषयके ग्रन्थमें दयानन्दका जन्मकाल १८२७ ई० निरूपित किया है और यह कथा भी लिखी है कि उनकी सन् १८८३ ई० में ५६ वर्षकी आयुमें मृत्यु हुई। मृत्युकाल ५६ वर्षकी आयुमें रखनेसे जन्मकाल १८२७ नहीं होता, १८२४ ही होता है। सुतरां मैक्स-मूलर महोदयने परोक्षभाव से आपही :अपनी कथाका प्रतिवाद किया है। आश्चर्यका विषय है कि उन्होंने अपने निबन्धमें दयानन्दके निजलिखित आत्मचरितसे अनेक अंश उद्धृत किये हैं, परन्तु जिस अंशमें उनका जन्मकाल उल्लिखित है उसी अंश को अनुद्धृत रक्खा है।

Max Muller's Biogiraphical Essays, P. 167 & 180

मैक्समूलरने दयानन्द सरस्वतीकी मृत्युके पश्चात् १८८४ ई० में जनवरी या फरवरी मासमें विलायतके पालमालगजट नामक प्रसिद्ध समाचारपत्रमें उनके विषयमें एक निबन्ध प्रकाशित किया था। विदित होता है कि उपर्युल्लिखित ग्रन्थमें उसी निबन्धको पुनर्वार मुद्रित करके प्रकाशित किया है।

सुनाया जाता, किंबा जिस स्थानमें शिवसम्बन्धी किसी सदनुष्ठान की सूचना होती, वह उस स्थानमें श्रद्धान्वितचितसे जाकर उसका श्रवण और दर्शन करके अत्यन्त पुलकित होते। फिर इसमें क्या संशय है कि पितृप्रकृतिकी ऐसी प्रगाढ़ और अकृत्रिम धर्म्मनिष्ठा पुत्र दयानन्दमें भी निवेशित हो गई। केवल अकृतिम धर्म्मनिष्ठाके कारण ही वे प्रसिद्ध नहीं थे। वह एक अविचलितचित व्यक्ति भी थे। दयानन्दकी माता जब कभी पुत्रकी स्वास्थ्यहानिकी आशङ्का करके प्रतिदिनकी पूजाके विरुद्ध आपत्ति करती, पिता उसी क्षण उसके प्रतिवादके लिये अग्रसर होते। इस सम्बन्धमें सहधर्मिणीके वारंवार आपत्ति उठाने पर भी वह उसके प्रति कर्णपात नहीं करते थे। वह जिसको कर्त्तव्य समझते थे। विशेषतः धर्म्मविषयमें जिस अनुष्ठानको अनुष्ठेय अवधारित करते थे उसके सर्वांशमें प्रतिपालन करनेके निमित्त वह प्रियतम पुत्रको भी कठोरतम आदेश प्रदान करनेमें कुछ भी कुण्ठित नहीं होते थे। यह पितृचरित्रके पक्षमें सामान्यदृढ़चित्तताका परिचय नहीं है। अस्तु। हमारा विश्वास है कि पितृप्रकृतिकी ऐसी दृढ़चित्तता पुत्रकी प्रकृतिमें भी संक्रामित होगई थी।

मातृप्रकृतिके सम्बन्धमें दयानन्दने कोई बात नहीं लिखी है; इसलिये कार्यकारणसूत्रसे जो कुछ अनुमित होता है, उससे यही विश्वास होता है कि उनकी जननी अत्यन्त कोमलहृदया थी। शिवरात्रिके व्रतको भङ्ग करके दयानन्द जिस समय घरमें लौट कर आये, उस समय तिरस्कार तो दूर रहा, माताने नितान्त प्रीतिके साथ उनको भोजन कराया। और अधिक क्या, व्रतभङ्ग रूप अपराधके कारण कहीं प्राणप्रिय पुत्रको पिता पीछे तिरस्कृत वा दण्डित करे, इसलिये उसने पहिलेसे ही उनको किस प्रकार से सावधान कर दिया! उन्होंने दयानन्दके देहासुखकी आशङ्का

करके ही शिवाराधनाके सम्बन्धमें अपने पतिके साथ विरोध करनेमें भी संकोच नहीं किया। इस सबको करुणामयहृदयताका अनुपम दर्शन कहना चाहिये। जिस समय सिद्धपुरकी मेला-भूमिमें दयानन्दको पिताने पकड़ लिया, उस समय तिर-स्कारसूचक अन्यान्य कथाओंके बीचमें उनके पिताने उनको मातृ-हन्ता कहकर पुकारा। इससे विदित होता है कि उनके विरहमें जननी अत्यन्त व्यथिता, यहां तक कि मृतप्राया, होगई होगी। सुतराम् इसके बतानेके लिये कि उनकी माताकी प्रकृति कैसी करुणरसाभिषिक्त थी और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। दयानन्दके चरित्रमें भी उनकी माता प्रकृतिकी अनुकृति थी। दिग्विजयी पण्डित और तर्कशास्त्रविशारद तार्किक होने पर भी दयानन्द कर्कशप्रकृतिके मनुष्य नहीं थे, किन्तु उनकी प्रकृति ऐसी सुमधुर और आचरण ऐसा सरस था कि जो कोई उनके साथ एक वार भी परिचयसूत्रमें निवद्ध होजाता था, वह फिर कभी उनको नहीं भूल सकता था।

दयानन्दका शिक्षाकार्य कुलपरम्पराके अनुसार सम्पादित हुआ था। उन्होंने पांच वर्षसे भी कुछ न्यून आयुमें वर्णशिक्षा प्राप्त करके वेदोंके बहुतसे मन्त्र और वेदभाष्यके बहुतसे अंश कण्ठस्थ कर लिये थे। आठवें वर्षमें उनका उपनयन संस्कार हुआ। उसके पश्चात् रुद्राध्यायसे आरम्भ करके यजुर्वेदका अध्ययन करने लगे। उदीच्य ब्राह्मणगणके सामवेदान्तर्गत होने पर भी दयानन्दको यजुर्वेदका पाठ करना पड़ा। ऐसा क्यों हुआ इसके विषयमें हम कुछ नहीं कह सकते।

दयानन्दकी १४ वर्षकी भी अवस्था नहीं हुई थी कि उन्होंने व्याकरण, शब्दरूपावली, सम्पूर्ण यजुर्वेद और अन्य वेदोंके बहुतसे अंशोंकी शिक्षा प्राप्त करके एक रूपसे पाठकार्यको समाप्त कर दिया था। ऐसा हो सकता है कि उनके वंशीय

बालकगण साधारणतया यहाँ तक ही पढ़ कर पाठकार्यको समाप्त किया करते हों। अस्तु। दयानन्दका अध्ययन तब भी समाप्त नहीं हुआ; किन्तु उन्होंने अपने पाठविषयको अधिकतर प्रसारित कर लिया; और निरुक्त, निघण्टु और पूर्वमीमांसा प्रवृत्ति का अध्ययन करने लगे। कुछ दिन पश्चात् काशीमें जाकर पढ़नेकी इच्छा भी उनके मनमें उदित हुई। काशीधाम संस्कृति शिक्षाका केन्द्रस्थान कह कर प्रसिद्ध है। इस कारण बङ्ग, विहार, द्राविड़, पंजाब और गुजरात प्रभृति नाना देशनिवासी विद्यार्थिगण वहाँ आकर नानाशास्त्रोंको अध्ययन करते हैं। योरोपीय विद्याभिलाषियोंके कानोंमें जैसा कैम्ब्रिज या आक्सफोर्डका नाम चित्ताकर्षक है, संस्कृतविद्याभिलाषियोंके कानोंमें काशीधाम का नाम भी वैसाही चित्तापहारक है। काशी में जाकर व्याकरण-पाठको समाप्त करना और ज्योतिर्विद्याकी उत्तमरूपसे शिक्षा प्राप्त करना ही दयानन्दका अभिप्राय था। परन्तु माताकी प्रबल आपत्तिके वशसे ही उनका वह अभिप्राय पूर्ण नहीं हुआ। पाठव्यवस्थाके अभिलाषानुरूप न होने पर अनेक विद्यार्थी विद्योपार्जनमें वीतस्पृहा हो जाते हैं; किंतु दयानन्द वैसे नहीं हुए, प्रत्युत माता-पिताकी सम्मती लेकर एक निकटस्थ ग्रामके किसी पूर्व-परिचित प्रवीण अध्यापकके पास जाकर निविष्टचित्तसे अध्ययन करने लगे। परन्तु घटनाक्रमसे वह वहाँ अधिक दिन न पढ़ पाये। कारण यह हुआ कि कुछ दिन पीछे पिताकी आज्ञासे घर लौट आना पड़ा। उसके पीछे वह जितने दिन घर रहे, उतने दिन तक किसी अध्यापक व शास्त्रीके पास उनका अध्ययन न हो सका। फलतः पाठके सम्बन्धमें हम दयानन्दकी प्रखरा बुद्धि और प्रज्ज्वला स्मृतिशक्ति का परिचय पाते हैं। और यह बात भले प्रकारसे अवगत होती है कि वह इस विषयमें नितान्त निष्ठा परायण थे। पाठादि विषय में निष्ठा वा प्रगाढ़ अनुराग भी

कुछ न होता, तो प्रखरा बुद्धि और प्रोज्ज्वला स्मृति ही क्या कार्य सम्पादन करती; और प्रकृत पक्षमें यदि कोई ज्ञानपिपासु न हो तो अध्ययनादि विषयमें निष्ठा और अनुराग भी कुछ नहीं कर सकते। सुतराम् स्वीकार करना होगा कि दयानन्द एक ज्ञानपिपासु बालक थे; और ऐसा होनेसे ही वह २१ वर्षकी अवस्थाके भीतर ही व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु पूर्वमीमांसा और यजुर्वेदादि ग्रन्थोंके अधिकारी होगये थे।

एक घटनासे दयानन्दकी स्वाभाविक ज्ञानपिपासा और भी प्रबला होगई। वह घटना दयानन्दचरित्रकी अन्तिम विशिष्टघटना है, वह घटना दयानन्दके जीवन, दयानन्दकी कीर्त्ति, और दयानन्दके नामके साथ कालके अनन्त सूत्रमें सम्बद्ध रहेगी। उस घटनाने बुद्धके शबदर्शनकी न्याई, लूथरके बाइबिलपाठकी न्याई, और चैतन्यके साथ ईश्वरपुरीकी साक्षातकी न्याई दयानन्दके सामने नये प्रदेशको उद्घाटित कर दिया जिस समय घोर रजनी आधी बीत गई, जिस समय शिवसाधकगण मन्दिरके चारों ओर निद्रित होगये, उस समय शिवरात्रि के व्रतधारी दयानन्दने अकेले बैठे हुए चिन्ताकी कि "मेरे पुरोवर्त्ती वृषवाहन पुरुष, जिनके विषयमें शास्त्र कहता है कि विचरण करते हैं, भोजन करते है, सोते हैं, पीते है, हाथमें त्रिशूल धारण कर सकते हैं, डमरु बजाते हैं और मनुष्यको अभिशाप प्रदान करते हैं, क्या वह यही महादेव हैं? क्या यही वह पुराणकथित कैलासपति परमेश्वर हैं?" इस चिंतासे उन्होंने अत्यंत विचलित होकर अन्तमें पिता को जगाकर उनसे जिज्ञासा की। पिताने कहा, "तू यह जिज्ञासा क्यों करता है?" दयानन्दने कहा; "यदि यह मूर्ति ही सर्वशक्तिमान् जीवन्त परमेश्वर है, तो यह अपने गात्रके ऊपर चूहों को सञ्चरण करते देखती हुई और उनके स्पर्शसे अपवित्रदेह होती हुई उनका प्रतिवाद क्यों नहीं करती?" इसके उत्तर में पिताने

जो कुछ कहा उनसे उनका संशय दूर नहीं हुआ; किंतु और बढ़ गया। फलतः वह संशय-तिमिरावृत चित्तके साथ शिवमंदिरसे घर लौट आये। वह घटना पत्थरकी लकीरकी न्याई, दरिद्र मनुष्यकी धनप्राप्तिकी नाईं अथवा प्रियविच्छेदजनित मनस्तापकी उनके भीतर बहुकाल तक उपस्थित रही; प्रत्युत वह उनके हृदयमें दिन दिन नूतनतर प्रकाश विकीर्ण करने लगी। जैसे रुकावटके बिना नदीका वेग प्रबल नहीं होता, जैसे बाधित हुए बिना मनुष्यकी अन्तर्निहित शक्ति प्रसारित नहीं हो सकती, वैसे ही मानव चित्तमें सन्देहका रेखापात हुए बिना मनुष्यकी ज्ञानपिपासा वा अनुसंधित्सा सम्बर्धित नहीं होती। मूर्तिपूजाके प्रति संशयरूपी शलाकाने दयानन्दके चित्तको बींध कर उनके ज्ञानचक्षुको अधिकतर उन्मीलित कर दिया। इसी सम्बन्धमें हम उनके महत्वका एक और परिचय पाते हैं। वह उनकी अनुपम कर्त्तव्यनिष्ठता है। जिस अनुपम कर्त्तव्यनिष्ठताने पीछे आकर दयानन्दको एक असाधारण धर्मवीर प्रसिद्ध किया, हम उसका निदर्शन बाल्यचरितमें ही देखते हैं। जबतक दयानन्द उस पाषाणनिर्मित मूर्त्ति को ही महादेव विश्वास करते थे, तब तक उसके उद्देशसे व्रत उपवासादि जो कुछ भी अनुष्ठेय था उस सबको ही बड़ी निष्ठा के साथ करते थे। यहाँ तक कि शिवरात्रिके व्रतभङ्गके घोर अपराधमें अभियुक्त न हों इस विचारसे व्रतधारी दयानन्द वारंवार आँखोंमें जलसेचन करके जागते रहे, परन्तु जब उस मूर्त्तिके प्रति उनमें अविश्वास उत्पन्न हुआ, जब वे उसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर विश्वास न कर सके; तो उन्होंने उसकी उपासना वा उपासनाके उद्देशसे उपवास करना किसी अंशमें भी आवश्यक नहीं समझा। इस विषयमें उन्होंने कहा है, 'वह मुझे यह समझानेकी चेष्टा करने लगे कि मैंने व्रत-भङ्ग करके कैसा महापाप किया है। परन्तु उस प्रस्तरमय मूर्त्तिको परमेश्वर विश्वास न

कर सकनेके कारण मैंने सोचा कि मैं फिर उसकी उपासना क्यों करूँ और उसके उद्देशसे उपवास क्यों रक्खूं।" इस स्थलमें दयानन्दने अनुपम कर्त्तव्यनिष्ठताका परिचय तो अवश्य दिया, परन्तु हमने उनकी निर्भयताका परिचय नहीं पाया, क्योंकि वह पिताके सामने इस विषयमें अपने मनोभावको छिपाते ही चले गये।

दयानन्दका बाल्यजीवन जिस प्रकार ज्ञानपिपासा और कर्त्तव्यनिष्ठासे अलंकृत है. उसी प्रकार वह वैराग्यके अकृत्रिम भावसे परिपूरित है। जिस समय उनकी आयु नौ वर्षकी थी, उसी समय उनके प्रेमास्पद पितामह ने परलोक गमन किया। दयानन्द पितामहके बड़े स्नेहपात्र थे। इसी कारण पितामहके वियोगसे वे बहुत शोकार्त्त हुए, और यह चिन्ता कि उनको भी एक दिन सर्वसंहारक मृत्युके ग्रासमें ग्रसित होना होगा पितामहके वियोगके पश्चात्से उनके हृदयमें प्रबलतर होने लगी; और जिस उपायसे सर्वग्राही मृत्युसे निष्कृतिलाभ किया जा सके, बालक दयानन्द उसीके लिये चिन्तान्वित होगया। फलतः मृत्युकी चिंता और मृत्युसे निष्कृतिकी चिंताने उनको इतना अस्थिर किया कि व्याकुल हृदयसे अपने बान्धववर्गके पास जाकर अमरत्वप्राप्तिके उपाय जाननेके लिये परामर्श लेने लगे। अस्तु। इसी प्रकारकी एक और घटनासे दयानन्दका हृदयनिहित वैराग्यभाव अधिकतर जागृत हो गया। वह घटना भी बड़ी शोकावह थी। उनकी एक १४ वर्षकी भगिनी सांघातिक रोगसे पीड़ित होकर दो घण्टे के भीतर ही लोकान्तरित हो गई। उसको देख कर दयानन्दका कोमल हृदय बहुत ही कातर हुआ। विशेषतः उन्होंने इससे पहिले कभी किसी मनुष्यको मृत्युयन्त्रणासे पीड़ित होते हुए नहीं देखा था। बहिनके वियोगसे उत्पन्न हुई व्यथा उनके मर्मस्थलों में इतनी प्रविष्ट हुई कि वह अश्रुपात करनेको भी समर्थ

नहीं हुए। जिस समय चारों ओर उनके बन्धुवर्ग दुःसह शोकके आघातसे अभिभूत होकर रोने, चिल्लाते और छाती पीटते थे, दयानन्द उस समय अविचलित चित्तसे खड़े रहकर चिंता करने लगे कि इस लोकमें मनुष्यमात्रको ही मौतके मुँहमें जाना होगा। जैसे युद्धके अंतमें निपुण सेनापति समरभूमि पर खड़ा होकर चारों ओरके हाहाकार वा आर्त्तध्वनि पर दृष्टिपात न करके स्वदेश वा स्वजातिके भविष्यकी चिंतामें ही लग्न हो जाता है, वैसे ही दयानन्द भी चारों ओरके विलाप वा क्रन्दनकी ध्वनि पर कर्णपात न करके मृत्युनिष्कृतिके उपायोंके सोचनेमें ही निमग्न हो गये। ऐसी घटना महापुरुषोंके पक्षमें अस्वाभाविक नहीं है। क्योंकि संसारकी साधारण श्रेणीके मनुष्य उपस्थित व्यापारसे ही विचलित हो जाते हैं; परन्तु जो मनुष्यजातिके नायक वा परिचालक पद पर प्रतिष्ठित होते हैं, वे उपस्थित व्यापार पर इस प्रकारसे दृष्टिपात नहीं करते; प्रत्युत कार्यकारण के सूत्रका अवलम्बन करके वे उस घटनाके आदि वा परिणामकी चिंतामें ही प्रवृत्त होते हैं। अस्तु। दयानन्दने उस शोकार्द्रभूमि पर खड़ा होकर प्रतिज्ञा की कि, चाहे जिस प्रकारसे हो, मैं मुक्ति के उपायका उद्भावन करके अवर्णनीय मृत्युयन्त्रणासे अपनी रक्षा करूंगा। मृत्युकी करालतम मूर्त्तिका दर्शन करके उनके मनमें मुक्तिपिपासा प्रबल हो गई। जिस परम पवित्र आकांक्षा के उद्दीपन करनेके लिये चित्तको निर्मल करना होता है, इन्द्रियग्रामको शासित रखना होता है, तपश्चर्य्यामें प्रवृत्त होना होता है, और जिस आकांक्षाके उद्दीपित होनेसे मनुष्यचित्तकी जितनी आकांक्षायें होती हैं वे सब उन्मूलित हो जाती हैं, वही आकांक्षा दयानन्दके तरुणचित्तमें उद्दीपित हो गई। फलतः यौवन के प्रारम्भमें ही वह मुमुक्षू मुक्तिपिपासु हो गये। परन्तु हृदयकी उस गूढ़ वासनाको वह जी खोल कर किसीसे नहीं कह सके।

जब कभी किसी स्थलमें विवाहका प्रसङ्ग उठता, तो वह यह कह कर कि मैं कभी भी विवाह न करूँगा चुप हो जाते। अस्तु। कुछ दिन पीछे माता-पिता पुत्रके हृदयकी समस्त वासनाओं को जान गये।

मनुष्यजातिके आध्यात्मिक इतिहासमें देखा जाता है कि वैराग्यव्याधिके प्रतिकारके लिये प्रायः सर्वत्र ही विवाहरूप विषव्यवस्था व्यवस्थित होती है। परन्तु सन्निपातिक विकारमें विषव्यवस्था विहित होने पर भी वैराग्यविकारमें वह विहित नहीं हो सकती, क्योंकि बुद्ध और चैतन्य जिस समय वैराग्यके घोर विकारसे विकृत हुए थे, उस समय उनके पक्षमें विवाहरूप कालकूट सर्वतोभावेन निरर्थक हो गया था। वस्तुतः प्रकृत वैराग्यमें विवाहविषय कभी कार्यकर नहीं होता; परन्तु ऐसा न होने पर भी विभ्रान्तचित्त मनुष्य वैराग्यव्याधिमें पूर्वोल्लिखित औषधको ही व्यवस्थित करते रहते हैं। दयानन्दके वैराग्यकी वह्निको बुझानेके अभिप्रायसे पहिले उनके पिताने जमादारीके कार्यका भारार्पण करना चाहा; परन्तु वह इस विषयमें सम्मत नहीं हुए। तब उनको विवाहकी शृंखलामें बांधना ही युक्तियुक्त समझा। उसके लिये पिता बहुत शीघ्रतामें विवाहकार्यके सम्पादनका उद्योग करने लगे। दयानन्दने उसके रोकनेके निमित्त यथाशक्ति चेष्टा की परन्तु उनकी चेष्टा सार्थक नहीं हुई, क्योंकि उनके माता-पिता किसी प्रकारसे भी निरस्त नहीं हुए। इसलिये वह उस समय अनन्योपाय होकर सन् १८४६ ई० में एक दिन सायङ्कालको २१ वर्षकी आयुमें घरसे बाहर निकल गये।

द्वितीय परिच्छेद ।

—❀:❀—
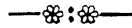
योगानुराग,—साधुसंग,—पिताके साथ साक्षात्,—
पुनः प्रस्थान,—नानास्थानपरिभ्रमण,-संन्यास-
ग्रहण,—योगशिक्षा,—शास्त्रालो-
चना,-नाड़ीचक्रपरीक्षा,
मथुरागमन

———

घरसे निकले हुए दयानन्द चारों ओर योगियोंका अनुसन्धान करने लगे। योगमें उनको गहरा अनुराग पहिलेसे ही था। विशेषतः घरमें रहनेके समय जब उनके हृदयमें वैराग्यकी वह्नि प्रदीप्त हुई, जब उन्होंने मृत्युयन्त्रणासे निष्कृति पानेके उद्देशसे बान्धवोंसे परामर्श लिया, तो किसी २ व्यक्तिने उनको योगानुशीलन करनेका परामर्श दिया था। इस कारण जब कभी उन्हें किसी व्यक्तिसे किसी योगीका पता लगता, तो वह तुरन्त ही उसके समीपको चल देते। लाला भक्त एक प्रसिद्ध योगी थे। वह शैला नगरमें रहते थे। दयानन्द लाला भक्तके पास गये और उनके साथ कुछ दिन तक योगचर्य्यामें प्रवृत्त हुए। परन्तु अनाश्रम व्यक्तिका धर्मसाधन वा योगानुशीलन शृंखलाबद्ध नहीं है और शृंखलाबद्ध न होनेसे संसारका कोई कार्य भी उत्तमरूपसे सम्पादित नहीं हो सकता, इस कारण आश्रमनिविष्ट होना दयानन्दके पक्षमें आवश्यक हो गया। उन्होंने वहां के किसी ब्रह्म-

चारीसे दीक्षा ग्रहण की। ब्रह्मचारी दयानन्द शुद्धचेतन्य *नामसे अभिहित हो गये। नामके परिवर्तनके साथ उनका वेषादि भी परिवर्तित हो गया। वह इससे पहिले ही अपने शरीरके भूषणादि मार्गमें वैरागियोंके एक दलको दान कर चुके थे। इसलिये उनके पास उन वस्त्रोंके अतिरिक्त जो वह घरसे पहन कर आये थे और कुछ नहीं था। उस समय उनको भी परित्याग करके गेरुये वस्त्र पहन लिये। उस समय सम्भवतः कार्त्तिक मास था। कार्त्तिक मासमें सिद्धपुर नामक स्थानमें एक विस्तृत मेला होता है। मेलेमें अनेक साधु संन्यासी आते हैं। साधु वा सिद्ध महापुरुषोंके संसर्ग से चित्तकी पवित्रता सम्पादित होती है। विशेषतः उनके उपदेशसे धर्मपिपासु व्यक्तियोंका विशिष्ट रूपसे कल्याण साधित होता है। इस कारण दयानन्द आग्रहान्वित हृदयसे सिद्धपुर की उसी मेला-भूमिमें पहुँचे। मेला-भूमि सहस्रों मनुष्यों से परिपूरित थी; वे सब ही अपनी २ आकांक्षित वस्तुओंके अनुसन्धानमें लगे हुए थे। कोई निर्वाक् होकर लोकारण्यके दर्शन करता था, कोई लोकप्रवाहमें पड़ कर निष्पेपित हुआ जाता था, कोई किसी स्थानमें प्रणयास्पद व्यक्तिके साथ जी खोल कर बातें करता था, और कोई विचित्र सामग्रीसे सज्जित पाण्यशालाके भीतर प्रविष्ट होकर अपनी अभिलाषित वस्तुसमूहको क्रय करता था; परन्तु उस मेलाभूमिके किस स्थानमें कौनसा साधु है, कौन महापुरुष किस जगह ठहरा हुआ है, अथवा कौन योगिवर किस जगह योगासन पर उपविष्ट है, इस अनुसन्धानके अभिप्रायसे

*शङ्कराचार्यद्वारा प्रतिष्ठित चार मठोंमें चार प्रकारके ब्रह्मचारी हैं। मठके अनुसार ब्रह्मचारियोंकी भिन्न २ उपाधियें होती हैं। उत्तरमठकी आनन्द, दक्षिण मठकी चैतन्य, पूर्वमठकी प्रकाश, और पश्चिम मठकी स्वरूप उपाधि है। इससे विदित होता है कि दयानन्द दक्षिण मठके ब्रह्मचारी हुए थे।

ही दयानन्द उस लोकसमुद्रको चीरकर इतस्ततः विचरण करने लगे। इसके पश्चात् कहीं किसी साधु महात्माके दर्शन पाते ही तत्क्षणात् उनके पास श्रद्धान्वित हृदयसे बैठकर परमार्थ विषयक आलोचनामें संलग्न होने लगे। इस प्रकार साधुसङ्ग और परमार्थप्रसङ्गमें दयानन्दके कई दिन बीत गये; परन्तु वह इस पवित्र सुखका अधिक दिन तक उपभोग न कर पाये। क्योंकि एक दिन प्रातःकाल साधु-सज्जनमें घिरे हुए वह नीलकण्ठके मन्दिरमें बैठे थे कि उस समय उनके पिता सहसा आ पहुँचे। उनके पिताके साथ कई सिपाही भी थे। उन्हें यह सहजमें ही पता लग गया कि उनके पकड़नके विचार से ही पिता सिपाहियोंको साथ लेकर आये हैं और दयानन्दको इस बातके जाननेमें भी चिन्ता नहीं करनी पड़ी कि सिद्धपुर आनेके समय जिस पूर्वपरिचित वैरागी के साथ उनका साक्षात् हुआ था उस वैरागीने ही पितासे उनके पलायनका संवाद कहा है।

खोये हुए सन्तानका पता लगनेसे मातापिताका हृदय आनन्दरसमें अभिषिक्त हो जाता है। परन्तु वह आनन्द निरवच्छिन्न वा निर्मल नहीं होता; क्योंकि उसमें क्रोधका भी मिलाव होता है। परन्तु वह क्रोधका मिलाव अतिमात्र आनन्दके आवेग का रूपान्तरमात्र है। दयानन्दको देखकर उनके पिता आनन्दित नहीं हुए, प्रत्युत अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो गये। किन्तु उनका वह क्रोध अतिमात्र आनन्दके आवेगका रूपान्तर नहीं था। वह अति प्रचण्ड था, किसी २ अंशमें अभिमानयुक्त था। किन्तु वह सर्वत्र ही कर्त्तव्यच्युतिके निबन्धनकी उग्रतामें ही प्रतप्त था। दयानन्द पिताकी आज्ञाके अनुकूल होकर नहीं चले; दयानन्दने पुत्रोचित कर्त्तव्यका सम्पादन नहीं किया; दयानन्द अपने विवाहके निमित्त मातापिताको कृतसङ्कल्प, प्रत्युत उसके प्रबन्धमें तत्पर देखकर घरसे निकल भागे; विशेषतः एक ऐश्वर्यशाली मनुष्यके पुत्र हो

उत्सुक थे, वे भी अपने सङ्कल्पमें पहिलेके समान वैसे ही अविचलित बने रहे। पिताके समीप तिरस्कारसे दयानन्दकी कर्त्तव्यनिष्ठा अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। पिताकी एकमात्र इच्छा यह थी कि पुत्रको घर ले जाकर सर्वप्रकारसे सांसारिक सुखभोग करें; पुत्रकी एकमात्र इच्छा यह थी कि योगावलम्बन करके योगिगणवांछित शाश्वतसुखके अधिकारी होवें। पिता-पुत्र दोनों ही सुखान्वेषी थे; परन्तु दोनों के सुख प्रकार और प्रकृतिभेद सर्वथा पृथक् रहे थे। अस्तु। दयानन्द ने घर लौट चलनेका अभिप्राय प्रकाशित कर दिया था: परन्तु उनके पिता उनकी बातमें निश्चिन्त वा निरुद्वेग नहीं हो सके। इसलिये उनको दिनरात पहरेमें रक्खा। परन्तु दयानन्द एक क्षणके लिये भी अपने उद्देश्यकी सिद्धिसे उदासीन नहीं रहे। पिताके हाथसे छुटकारा पानेके लिये वह सर्वदा ही सु-अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। घटनाक्रमसे एक दिन रात्रिके समय जब सबके सब सो गये, यहाँ तक कि उनके रक्षक सिपाही तक निद्रासे अभिभूत हो गये, दयानन्दने उस समय शय्यात्याग करके चुपचाप प्रस्थान कर दिया। प्रस्थान करनेके समय दयानन्दके हाथमें एक जलपूर्ण लोटा था; जिसका अभिप्राय यह था कि यदि सहसा किसी के साथ साक्षात् हो जाय या कोई जिज्ञासा कर बैठे, तो वह यह कह कर कि हम प्रातःकृत्य करनेके लिये जाते हैं छुटकारा पा सके।

दयानन्द जब पितासे सदाके लिये अलग हुए, उस समय रात्रिकी समाप्तिमें केवल एक प्रहर शेष था। वह मेलाभूमिसे आधे कोससे भी कुछ अधिक दूर तक अत्यन्त शीघ्रताके साथ चले गये। परन्तु उन्होंने सोचा कि उसके आगे मार्गमें चलना निरापद् नहीं है, इसलिये एक घने पत्तों वाले वृक्षके ऊपर चढ़-कर छिप गये। वृक्षकी जो शाखा शिव मन्दिर के ऊपर थी उसी

शाखामें छिपना अधिकतर सुविधाजनक समझ कर उसके ऊपर बैठ गये। रात्रिके शेष भागसे लेकर दिनभर निःशब्द और निस्तब्धभावसे वृक्षके ऊपर बीता। प्रभातका प्रकाश होने पर उन्होंने देखा कि सिपाही लोग उनके अनुसन्धानमें चारों ओर दौड़ते फिरते हैं। इसको देखकर दयानन्दने अपनेको अधिकतर छिपानेकी चेष्टा की। फलतः उन्हें सारा दिन वृक्षके ऊपर ही बिना भोजन किये काटना पड़ा। अन्तमें जब चारों ओर संध्या का अन्धकार फैलने लगा, तब उन्होंने वृक्षसे उतरकर चलना आरम्भ किया। दूसरी ओर उनके पिता मेलाभूमि और आस-पासके सब स्थानोंको एक एक करके देखने लगे; परन्तु किसी स्थानमें भी पुत्रका पता नहीं पाया।

खोया हुआ रत्न यदि प्राप्त होनेके पश्चात् फिर खोया जाय, तो जिस प्रकार रत्नस्वामी दुःसह दुःखके दंशनसे कातर हो जाता है, दयानन्दका कोई पता न पाकर सम्भवतः उनके पिता भी उसी प्रकार शोकसे सन्तापित हो गये होंगे। अस्तु। दयानन्द निर्भय होकर सारी रात चलते २ अन्तमें अहमदाबाद पहुँचे। अहमदाबादसे बड़ौदा जाकर वहाँके चैतन्यमठमें कुछ दिन तक रहने लगे। चैतन्यमठ में कतिपय ब्रह्मचारियोंके साथ जीव-ब्रह्म की एकता के विषय में दयानन्द का वार्त्तालाप हुआ। वार्त्तालाप का फल यह हुआ कि जीव-ब्रह्मकी अभिन्नतामें उनका विश्वास दृढ़तर हो गया। इसके पश्चात् बड़ौदासे वाराणसी, चानोद-कल्यानी, व्यासाश्रम और आबूपर्वत प्रभृति स्थानोंमें भ्रमण करते हुए सन् १८५४ ईस्वीमें हरिद्वार आये। हरिद्वारमें उस समय कुम्भका मेला था। मेलेके उपलक्षमें अनेक दिशा और देशोंसे आये हुए साधुओंके समावेशको देखकर दयानन्द बहुत विस्मित हुए। हरिद्वारसे हृषीकेश, टिहरी, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, शिवपुरी, तुङ्गनाथ, अखीमठ, जोशीमठ, बदरीनारा-

यण और पश्चिमप्रदेशान्तर्गत * रामपुर, मुरादाबाद, फर्रुखा-बाद प्रभृति बहुतसे स्थानोंमें घूमते हुए सन् १८५५ ईस्वीमें कान-पुर पहुँचे। कानपुरसे काशी, इलाहाबाद, चण्डालगढ़ प्रभृति स्थानोंका दर्शन करते हुए नर्मदा नदीके उत्पत्तिस्थानके देखनेके निमत्त यात्राकी। उसके पश्चात् अनेक नये नये स्थानोंमें भ्रमण करते हुए मथुरामें पहुँचे।

दयानन्दकी यह सुविस्तृत भ्रमणकी कहानी बहुतसी घटनाओं मे परिपूर्ण है। जिस समय वह नर्मदाप्रदेशवर्ती चानोदकल्यानी नामक स्थान में ठहरे हुए परमानन्द परमहंससे वेदान्तसार प्रभृति पढ़ते थे, उस समय उन्होंने संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होनेकी आवश्यकता अनुभव की। कारण यह था कि उससमय उन्हें स्वयं भोजन बनाकर खाना पड़ता था। इसलिये उनका बहुतसा समय वृथा जाता था। इसके अतिरिक्त सन्यासाश्रम ज्ञानोपार्जनमें अधिकतर सुविधाजनक है। इन सब कारणोंसे उन्होंने सोचा कि संन्यासाश्राम ग्रहण करना युक्तियुक्त है। घटनाक्रमसे उसी समय पूर्णानन्द सरस्वती नामक एक संन्यासी शृङ्गगिरि मठसे आये हुए चानोदके निकट एक एकान्त स्थानमें ठहरे हुए थे। पूर्णानन्द द्वारिकाको जाने वाले थे। दयानन्द संन्यासाश्रम में दीक्षित होनेके अभिप्रायसे पूर्णानन्दके पास गये और अनु-रोध करनेके लिये एक महाराष्ट्रीय पण्डितको भी साथ ले गये। उनकी अनुरोधसहकृत प्रार्थनाको सुनकर पहिले तो पूर्णानन्दने अनेक आपत्ति उठाई। आपत्तिका कारण यह था कि दीक्षाप्रार्थी नितान्त अल्प वयस्क थे। विशेषतः गुजरातप्रदेशवासी व्यक्तिका गुजरातप्रदेशवासी संन्यासी से दीक्षाग्रहण करना विधेय था।

* ग्रन्थकर्त्ता वंगदेशवासी हैं, इसी कारण उन्होंने रामपुरादि को पश्चिमप्रदेशान्तर्गत लिखा है—(अनुवादक)

परन्तु पूर्णानन्दकी इस प्रकारकी आपत्ति वा असम्मति कुछ भी कार्यकर नहीं हुई; क्योंकि दृढ़सङ्कल्पके सामने संसारकी कोई आपत्ति भी आपत्तिमें परिगणित नहीं हो सकती सुतरां अन्तमें पूर्णानन्दने उनको संन्यासाश्रममें दीक्षितकर लिया दीक्षाके पश्चात् उनका नाम 'दयानन्द सरस्वती' हुआ। उस समय उनकी आयु २३ वा २४ वर्षसे अधिक नहीं थी। इससे प्रतीत होता है कि घर से निकलनेके दो या तीन वर्ष पीछे ही दयानन्दने संन्यासि-सम्प्रदायमें प्रवेश किया था।

दयानन्द अनेक स्थानोंमें भ्रमण करते २ अनेक साधु संन्यासियोंसे परिचित हो गये थे। उनमें पूर्वोल्लिखित परमानन्द परमहंसके अतिरिक्त व्यासाश्रमके योगानन्द, वाराणसीके सच्चिदानन्द, केदारघाट के गङ्गागिर और ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि प्रभृतियोंके नाम उल्लेख करने योग्य हैं। अन्तके दो संन्यासियोंसे दयानन्दने योगविद्याके गूढ़तत्वसमूहकी शिक्षा प्राप्त की, प्रत्युत यों कहना चाहिये कि योगशिक्षाके सम्वन्धमें वह इन पुरी और गिरिके ऋणसूत्रमें निबद्ध थे इनके अतिरिक्त कृष्णशास्त्री और काशीस्थ काकाराम और राजाराम शास्त्री प्रभृति सुपण्डितोंके साथ भी उनका वार्त्तालाप और परिचय हो गया था, और उन्होंने कृष्णशास्त्रीसे तो कुछ दिन तक विद्यार्थी-रूपसे व्याकरणकी शिक्षा पाई थी।*

* पण्डितवर ज्वालादत्त शर्म्माने हमसे कहा कि दयानन्दने काशीके रामनिरञ्जन शास्त्रीसे कुछ काल तक कौमुदी और न्यायशास्त्र पढ़ा था। परन्तु किस समय पढ़ा था यह निरूपण करना कठिन है। उपर्युक्त समयमें अर्थात् जिस समय वह नाना स्थानोंमें भ्रमण करते थे उस समयमें वह काशीमें बारह दिनसे अधिक नहीं रहे थे। विशेषतः उस समयमें काशीमें अध्य-

व्याकरण पढ़नेके भिन्न वह उस समय अन्याअन्य ग्रन्थोंकी आलोचनामें भी रत रहते थे। परमानन्द परमहंससे वेदान्त पढ़नेका विषय पहिले ही कहा जा चुका है। इसके अतिरिक्त जब वह टिहरी में ठहरे हुए थे, तो वहांके राजपण्डितविशेषसे तन्त्रग्रन्थोंको लेकर पाठ करते थे। किन्तु उस पाठसे तन्त्रों में उनकी उलटी अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी; क्योंकि थोड़े ही पाठ करनेसे उन्होंने उनके भीतर भाषागत, भाष्यगत और अर्थगत अनेकानेक अशुद्धि देखली थी। विशेषतः उनका अधिकांश असंगति-दोषसे दूषित था और उनके बीचमें नितान्त निन्दनीय पापाचारों की परम पवित्र धर्म्ममें गणना देखकर उन्होंने असीम घृणाके साथ तन्त्रपाठका परित्याग कर दिया। यह बात विलक्षणरूपसे विदित होती है कि दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र और अन्यान्य विषयों के ग्रन्थ सर्वदा ही उनके साथ रहते थे और उनका अवकाश-काल ग्रन्थपाठ और योगाभ्यासमें अतिवाहित होता था। दयानन्द कैसे ज्ञानाभिलाषी और सत्यानुरागी थे—यह उस समयकी एक घटनासे विशेषरूपसे जाना जाता है। वह जिस समय मुरा-

---

यन करनेका कोई उल्लेख भी नहीं है। उससे पहिले अर्थात् जब वह बड़ोदाके चैतन्यमठमें रहते थे, उस समय वहांसे एक वार काशीयात्राकी कथाका उल्लेख है। अस्तु। उस समय अथवा चण्डालगढ़से नर्मदाप्रदेशको जानेसे पीछे और मथुरा आने से पहिले किसी न किसी समयमें काशीमें आकर रामनिरञ्जनसे अध्ययन करना सम्भव हो सकता है। रामनिरञ्जन गौड़स्वामी की गद्दीपर अधिष्ठित थे। अब उस गद्दी पर विशुद्धानन्द * हैं।

---

* जिस समय यह ग्रन्थ बङ्गलामें छपा था, उस समय स्वामी विशुद्धानन्द जीवित थे। परन्तु अब उक्त स्वामीजीका देहपात होगया है—(अनुवादक)

दाबादसे गढ़मुक्तेश्वर होते हुए गङ्गाके तटवर्ती प्रदेशमें भ्रमण करते थे, उस समय उनके पास हठप्रदीपिका, योगबीज और शिवसन्ध्या प्रभृति कई ग्रन्थ थे। उन्होंने उनमें से एक योग-विषयक पुस्तकमें नाड़ीचक्रका वृत्तान्त पड़ा। प्रकृतपक्ष में मनुष्य के देहमें नाड़ीचक्र होते हैं वा नहीं इसके जाननेके लिये दयानन्द उत्कण्ठित हुए। फलतः इस विषयने उनके मनमें घोर संशय उत्पन्न किया। ऐसे समयमें एक मनुष्यके मृत देहको बहते हुए देखकर वह गङ्गामें कूदकर जलमेंसे उसे तटपर खींच लाये। उसके पश्चात् छुरीसे उस शवको उत्तमरूप से चीरा; जिस ग्रन्थमें नाड़ीचक्रके विषय का वर्णन था उस ग्रन्थको खोलकर सामने रक्खा; और वर्णनके अनुसार चिरे हुए शवके अङ्ग अवयवादि को एक २ करके मिलाने लगे। परन्तु उसके किसी अंशमें ग्रन्थोल्लिखित नाड़ीचक्रका कुछ भी चिन्ह न पाकर शवको फेंकने के साथ ही उस ग्रन्थको भी फाड़कर गङ्गामें बहा दिया।

बहुतसे स्थानोंमें पर्यटन करने और बहुतसे साधु संन्यासियों के सत्सङ्गसे उन्होंने जैसे योगविषयक नूतनतर तत्त्वोंको जान लिया था, वैसे ही उन्होंने यह भी समझ लिया था कि उन तत्वोंको कार्यमें परिणत करने के निमित्त योगाभ्यासमें अधिक समय लगाना आवश्यक है; क्योंकि कोई ज्ञान भी श्रुत हो वा पठित, अभ्यास वा अनुशीलनके विना कार्यकर नहीं हो सकता। सुतरां दयानन्दकी योगचर्य्याका समय दिन प्रतिदिन दीर्घतर होने लगा। इसी हेतु उनका आहारादि कार्य भी समय पर नहीं होने पाता था। विशेषतः योगाभ्यासमें अपेक्षया हलका भोजन ही सुविधाजनक होता है, इसलिये दयानन्द केवल दुग्धपान करके ही देहको रक्षा करने लगे। उस समय उन्हें भाङ्गसेवनका अभ्यास भी हो गया था। यह अभ्यास संन्या-

सिसम्प्रदायमें विशेष रूपसे प्रचलित है। उन्हें साधु संन्यासियों के साथ प्रायः सर्वदा ही रहना होता था। इसलिये यह सहजमें ही समझमें आ जाता है कि उनका यह अभ्यास संसर्गजनित था। फलतः वह इस दोषावह अभ्यास के कारण दुखित थे और सम्भवतः उन्होंने शीघ्र ही उसका परित्याग कर दिया था, क्योंकि उनके भविष्य जीवनके किसी स्थलमें भी ऐसे अभ्यासका तनिक भी चिन्ह देखने में नहीं आता। भाङ्ग कैसी मादकता उत्पन्न करने वाली है—इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। दयानन्दने एकवार भाङ्गसे उत्पन्न हुई मादकताको एक अद्भुत उपाय से दूर किया था। वह उपाय सर्वप्रकारसे ही कौतुकपूर्ण है। इसलिये हम तत्सम्बन्धी कथाको यहाँ उद्धृत करते हैं। उन्होंने कहा है, "चण्डालगढ़के पास किसी ग्रामके एक शिवालयमें एक दिन रात्रियापनाके लिये गया। भाङ्गसे उत्पन्न हुई मादकताके वशसे मैं वहां गहरी नींदसे सो गया। मेरे विवाहके सम्बन्धमें पार्वतीके साथ महादेव की बातचीत होती है इस प्रकारका एक स्वप्न देख कर मैं जाग पड़ा। उस समय वृष्टि हो रही थी, इसलिये मन्दिरके बरामदेमें बैठ गया। वहां बृषदेवता नन्दीकी एक प्रकाण्ड मूर्त्ति थी। अपनी पुस्तकादि को नन्दीकी पीठ पर रख कर मैं उसके पीछे बैठ गया। सहसा नन्दीकी मूर्त्ति के भीतर दृष्टिपात करनेसे मैंने जाना कि उसमें एक मनुष्य बैठा हुआ है। उसकी ओर मेरे हाथ फैलानेसे ही वह व्यक्ति कूद कर भाग गया, मैं तब उस शून्यगर्भ मूर्तिके भीतर बैठ कर शेषरात्रि तक सोता रहा। प्रातःकाल एक वृद्धा बृषदेवताकी पूजाके लिये आई। मैं उस समय बृषदेवताके भीतर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह वृद्धा स्त्री दही और गुड़ लेकर आई और मुझको ही वृषदेवता समझ कर लाया हुआ गुड़ और दही मेरे सामने रख दिया। मैं भी उस समय क्षुधार्त्त

हो गया था। इसलिये मैं सबको ही खागया। विशेषतः अम्ल-रसविशिष्ट दहीके पीनेसे भाङ्ग की मादकता भी दूर होगई।"

दयानन्दने इस प्रकार प्रायः सारी भारतभूमिमें भ्रमण किया किसी २ स्थानमें वह एकसे अधिक बार भी गये। किसी स्थानमें कुछ दिन ठहरे भी। अभिप्राय यह है कि अपनी वाञ्छित वस्तु के उद्देश में सैकड़ों बाधा और सहस्रों प्रतिकूलताओंसे भी वह अणुमात्र भी विचलित नहीं हुए। उसके निमित्त वह हिमाचल के बर्फसे ढके हुए दुर्गम मार्गों में पर्यटन करनेमें भी कुण्ठित नहीं हुए, नर्मदाप्रदेशके निविड़ वनभूमिको अतिक्रमण करनेसे भी संकुचित नहीं हुए, अरण्यवराहके आक्रमण करनेको उन्नत होने पर भी भग्नोद्यम नहीं हुए, अलखनन्दाकी तुषाराकीर्ण तीर-भूमिमें मृतकल्प होने पर भी प्राणत्याग नहीं किया, और अन्त में अखीमठकी महन्तपदवीरूप प्रबल प्रलोभनके देखने पर भी एक क्षणके लिये भी मार्गसे परिच्युत नहीं हुए। दयानन्द अपनी अनुसंधित्सामें अटल और ज्ञानपिपासामें अविचलित रहते हुए इस प्रकारसे प्रायः १२ वर्ष कालक्षेपण करके १८५८ किंवा १८५९ ईस्वीमें मथुरामें आकर पहुँचे। इसीलिये हमने इस अंशको 'दयानन्दके जीवनका अनुसंधित्सायुग' के नामसे निर्देश किया है।

तृतीय परिच्छेद ।

विरजानन्दका पूर्वपरिचय,—ऋषिप्रणीत और मनुष्यप्रणीत ग्रन्थ,—सार्वभौमिक सभा स्थापन करनेका प्रस्ताव दयानन्दका अध्ययन,—अमरलाल,—आगरामें निवास;—ग्वालियर प्रभृतिमें भ्रमण और मतमतान्तरका खण्डन,—संशयनिराकरण,—हरिद्वारगमन,—पताका-उत्तालन,—मौनव्रतधारण, स्थिर सङ्कल्प वा शेष सिद्धान्त ।

पिछले पृष्ठोंमें जिन महापुरुषका वर्णन दिया गया है उनका नाम स्वामी विरजानन्द था। विरजानन्दने पञ्जाबके अन्तर्गत कर्तारपुरके पास किसी ग्राममें जन्म ग्रहण किया था। ऐसा प्रसिद्ध है कि उनका जन्मग्राम बोई नदीके तीरपर है। वह सारस्वत ब्राह्मण थे; विशेषतः सारस्वतः ब्राह्मणोंकी शारद-शाखाके अन्तर्गत थे। विरजानन्द भारद्वाजगोत्री थे। उनके पिता नारायणदत्त नामसे परिचित थे ! विरजानन्द चक्षुहीन थे—वह एक प्रकारसे जन्मान्ध ही थे। जब उनकी आयु पाँच वर्षकी थी, तब सांघातिक शीतलारोगसे उनकी दोनों आँखें नष्ट हो गई थीं चक्षुहीन होनेके पश्चात् दश ग्यारह वर्ष तक घर रहे। उसके उपरान्त उनका घरमें रहना सम्भव नहीं हुआ, क्योंकि माता पिताके वियोगके पश्चात् वह अपने बन्धुवर्गके हाथोंसे ऐसे पीड़ित हुए

कि उनको शीघ्रही घर छोड़ना पड़ा। विरजानन्दने घर छोड़ने पर हिमाचलके अन्तर्गत हृषीकेशको गमन किया। सम्भवतः वह उसी समय परमहंस प्रतावलम्बी हो गये। वहाँ अधिकतर समय गङ्गाके जलमें निमज्जित होकर गायत्री मन्त्रके जपनेमें लगाते थे। ऐसी अवस्थामें उनका एक वर्ष अतिवाहित हो गया। इस बीचमें स्वप्नावस्थामें किसीने उनसे कहा कि "तुम्हारा जो कुछ होना था वह हो गया, अब तुम यहाँसे चले जाओ।" विरजानन्द उसको देववाणी समझ कर हृषीकेशसे कनखल चले आये। कनखल में पूर्णाश्रम स्वामी नाम एक ज्ञानापन्न संन्यासी रहते थे। विरजानन्दने पूर्णाश्रमसे षड्लिङ्गादि पढ़ा। किम्बहुना, गृह-स्थितिके समय उन्होंने लघुकौमुदी आदि पढ़ली थी। पूर्णाश्रमसे पाठ समाप्त करके वह गया, काशी, प्रयाग प्रभृति तीर्थोंमें भ्रमण करने के लिये बाहर निकले। तत्पश्चात् एटा जिलाके अन्तर्गत सोरों वा शूकरक्षेत्र * नामक स्थानमें आये।

विरजानन्द एक दिन सोरोंमें गङ्गास्नान करके विष्णुस्तोत्रकी आवृत्ति कर रहे थे कि इतनेमें वहां अलवराधिपति महाराज विनयसिंह उपस्थित हुए। उनके विष्णुस्तोत्रके पाठको सुनकर ही अथवा उनकी तेजःप्रतिभाप्रकाशक मूर्तिको देखकर ही विनयसिंह विरजानन्द की ओर आकृष्ट हो गये और उनको अलवर ले जाने के निमत्त अनुरोध किया। विरजानन्द अलवराधिपतिके अनुरोध पर बोले कि यदि हमसे पढ़नेकी इच्छा रखते हो तो तुम्हारे साथ चल सकते हैं। विनयसिंह इस बातसे सहमत और संतुष्ट होकर

* यह स्थान शूकरक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है। कारण यह कि ऐसी किंवदन्ती है कि इस स्थानमें परमेश्वरने बराहावतार धारण किया था, इसीलिये यहां वराह मन्दिर बना हुआ है। यह बात सहजमें ही समझमें आजाती है कि सोरों शुकरक्षेत्रका अपभ्रंश है।

विरजानन्दको अलवर लिवा ले गये। अलवरमें उनके भोजन और निवासका प्रबन्ध हो गया आहार्य्य सामग्रीके अतिरिक्त उनके अन्यान्यव्ययके लिये राजभण्डार से प्रतिदिन दो रुपये आने लगे। महाराज विनयसिंह स्वामीजीसे प्रतिदिन ३ घण्टा अध्ययन करते थे। इसके अतिरिक्त राज्यसम्बन्धी किसी गुरुतर विषयके उपस्थित होने पर महाराज विरजानन्दसे सम्मति भी लिया करते थे।। अलवरनरेशका अध्ययनकार्य राजप्रसाद में ही होता था। इस कारण विरजानन्द प्रतिदिन नियत समय पर राजप्रसादमें ही चले जाते थे। एक दिन नियत समय पर जाकर उन्हें विदित हुआ कि महाराजा उपस्थित नहीं हैं। सम्भवतः वह उस समय किसी राज्यकार्य में लगे हुए थे, * परन्तु विरजानन्द उससे बहुत विरक्त हुए और विरक्त होकर अपनी ग्रन्थादि सम्पति को वहीं छोड़ कर अन्तमें अलवर से फिर सोरों चले आये। वहां कुछ दिन रह कर मथुरा के पास मुरसान के राजाके यहाँ चले गये और वहाँसे राजा बलवन्तसिंहके अनुरोधसे भरतपुर चले गये। विरजानन्द वहां छः सात मास रह कर फिर सोरों चले आये, और फिर सोरों से मथुरा चले गये। मथुरामें उनकी अवस्थितिका समय प्रायः ३२ वर्ष होगा। वे इस लोकमें प्रायः ९१ वर्ष तक विद्यमान रहे। उनका मृत्यु दिवस सन् १८६८ ईस्वीमें आश्विन वदि १३।सोमवार है। ऐसा प्रसिद्ध है कि विरजानन्दने अपने मृत्यु दिवस का संवाद एक पक्ष पहिले ही अपने शिष्योंसे कह दिया था।

विरजानन्दकी प्रतिभा और उद्भाविनी शक्ति असाधारण थी और इसका तो कहना ही क्या है कि स्मृतिशक्ति के विषयमें वह

* कोई २ यह कहते हैं कि महाराजा उस समय वेश्याओंके साथ कालयापन कर रहे थे; इसी कारण विराजानन्द अत्यन्त कुपित होकर अलवर छोड़कर चले आये।

श्रुतिधर थे। किसी अपरिज्ञात श्लोक वा सूत्रको एक वार वा अधिकसे अधिक दो वार बोलने पर ही विरजानन्द उसको कण्ठस्थ कर लेते थे। इसलिये चक्षुहीन होने पर भी अथवा अध्यापकके पास अध्ययन करनेका सुविधा न होने पर भी वह सब शास्त्रोंके विषयमें एक असाधारण पण्डित कह कर परिगणित होते थे। उनकी सुशाणित बुद्धि शास्त्रके भीतर ऐसी प्रविष्ट थी, उनकी समुज्ज्वला स्मृति शास्त्रके अर्थोंको ऐसी स्वायत्त कर लेती थी और उनकी अनुपम उद्भाविनी शक्ति शास्त्रके भीतरसे ऐसे गूढ़ अर्थका आविष्कार कर सकती थी कि जब कभी कोई किसी शास्त्रके प्रसंगको उत्थापित करता, तो विरजानन्द तत्क्षण उसकी सुन्दर और समीचीन मीमांसा कर देते। फलतः विरजानन्द एक असाधारण ज्ञानी और निष्कपट साधु कह कर भारतके पश्चिमाञ्चलके प्रायः सब ही स्थानोंमें प्रसिद्ध थे।

रेलवे स्टेशनसे यमुनाके विश्रामघाट तक जो राजपथ जाता है विरजानन्द उसी प्रशस्त राजपथके एक ओर एक छोटी अट्टालिकामें रहते थे। उनके आहारादिके व्ययके लिये अलवर नरेश विनयसिंह और जयपुराधीश रामसिंह बीच २ में सहायता भेजते रहते थे। इसके अतिरिक्त उनके पाण्डित्य और परमार्थपरायणताके कारण अन्यान्य लोग भी अपनी इच्छासे कभी २ कुछ दान कर दिया करते थे। विरजानन्द अधिकांशमें फलाहार वा दुग्धपान करके ही शरीररक्षा किया करते थे। किसी २ दिन अन्नाहारके इच्छुक होते थे। योगिगण प्रायः ही अल्पनिद्र होते हैं। इसी कारण विरजानन्द किसी दिन दो घण्टेसे अधिक निद्रित नहीं रहते थे। रातमें एक घड़ी वा दो घड़ी सोकर ब्राह्ममुहूर्तमें शय्यात्याग करके प्रातःकृत्यसे निमट जाते थे। उसके पश्चात् स्नान करके सूर्योदय तक प्राणायाम और ध्यानमें नियुक्त रहते थे। प्रातःकालसे दोपहर तक अध्यापनकार्यमें प्रवृत्त रहते

तदनन्तर कुछ देर तक विश्राम करके दो घड़ी पीछे अपराह्ण तक फिर विद्यार्थियोंको शिक्षाप्रदान करते थे। किसी २ दिन सन्ध्या के पश्चात् भी कुछ समय तक समान उत्साह और समान अनुरागके साथ अध्यापनमें नियुक्त होते थे। परन्तु प्रतिदिन सायंकालके स्नानके पश्चात् फिर ध्यान धारणामें निमग्न हो जाते थे। इसी प्रकारसे मथुरामें विरजानन्दके दिन अतिवाहित होते थे। वह परमोत्साह और अकृत्रिम अनुरागके साथ अध्यापनकार्य को सम्पादित करते थे। फलतः ज्ञानके प्रति उनकी गाढ़ ममता थी और ज्ञानालोचना वा ज्ञानप्रसङ्गमें उनकी यथार्थ प्रीतिका उदय होता था—यह अध्यापनके अतिरिक्त उनके अन्यान्य कार्य्योंसे भी विदित होता है। एकवार सिद्धान्तकौमुदीके सूत्र विशेषको लेकर रङ्गाचारी * के साथ उनका विलक्षण विचार हुआ। रङ्गाचारी उस सूत्रकी व्याख्या सप्तमीतत्पुरुषके पक्षमें करते थे, परन्तु विरजानन्द पाणिनिके "कर्तृकर्मणोः कृति" सूत्र का अवलम्बन करके उसकी व्याख्या सष्ठीतत्पुरुष समास

* रङ्गाचारी श्रीसम्प्रदायके वैष्णव थे। श्रीसम्प्रदाय रामानुज का चलाया हुआ है। वृन्दावनके पास गोवर्धनमें श्रीवैष्णवोंका एक मन्दिर था। उस मन्दिरके अध्यक्ष श्रीनिवासाचारी नामक एक वैष्णव साधु थे। श्रीनिवासाचारीके प्रयत्नसे वृन्दावनके अंजलमें रामानुजका मत बहुत कुछ प्रचारित हुआ रङ्गाचारी श्रीनिवासाचारीके रसोइया थे और उनसे अध्ययन भी करते थे। रङ्गाचारी क्रमशः श्रीनिवासाचारीके प्रियपात्र हो गये। मरते समय श्रीनिवासाचारी गोवर्धनके मन्दिरकी अध्यक्षता रंगाचारी को दे गये। यह बात स्यात् सब ही जानते हैं कि मथुराका प्रसिद्ध सेठवंश पहिले जैनमतावलम्बी था। Hon'ble लक्ष्मणदास सेठ के पिता राधाकृष्णदास धम्मानुरागी व्यक्ति थे जैनमतसे सन्तुष्ट

कह कर करने लगे। इस विचारव्यापारको लेकर मथुरा और वृन्दावनमें आन्दोलन उपस्थित होगया। इसकी मीमांसाके लिये रङ्गाचारीके अध्यापक तक बुलाये गये। परन्तु उनकी अनुपस्थिति के कारण अन्तमें मीमांसाका भार काशीस्थ पण्डितमण्डलीके

न हो सकने पर उन्होंने नाना मतकी आलोचना की और अन्तमें रङ्गाचारीसे दीक्षा ग्रहण करली। राधाकृष्णके कनिष्ठ भ्राता रंगाचारीके शिष्य हो गये; परन्तु उनके ज्येष्ठ भ्राता पहिलेके समान जैनमतावलम्बी ही रहे। राधाकृष्ण और उनके कनिष्ठ भ्राताने पहिले पहल सन् १८४३ ई० में तीन ल[illegible] व्यय करके रजानन्द तत्त्व[illegible] वृन्दावनमें एक मन्दिर बनवा कर उसव[illegible] फलतः विरजानन्द [illegible] एक को प्रतिष्ठित किया किन्तु वह मन्दिर [illegible] कर भारतके [illegible]मत नहीं हुआ। तब ४५ लाख रुपया व्यय क[illegible] दूसरा मन्दिर बनवाया—वही मन्दिर अब वृन्दावनके सेठजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। इस मन्दिरके बननेमें दस वर्ष लगे। इस मन्दिरको मद्रास के शिल्पिगण ने बनाया। मन्दिर के निर्माण और मूर्ति के अलङ्कारादि में प्रायः १ करोड़ रुपया व्यय हुआ है। मन्दिर के निर्मित होने पर देवसेवादि के व्ययके लिये साठ सहस्र रुपये वार्षिक आय की सम्पत्तिका दानपत्र लिख दिया। इस मन्दिर और मन्दिर की यावतीय सम्पत्ति और उपसत्वके विषयमें एक और दानपत्र लिखकर सन् १८५६ ई० में रंगाचारीके अर्पण कर दिया। रङ्गाचारीके पुत्र श्रीनिवासाचारीके चरित्रके दूषित हो जानेके कारण मन्दिर और तत्सम्बन्धी समस्त सम्पत्ति ट्रस्टियोंके हाथोंमें सौंप दी गई है। नारायणदास इस मन्दिरके एक कार्यनिर्वाहक ट्रस्टी थे। उनकी कथा पीछे लिखी जायगी। पूर्वोक्तगोवर्धनका मन्दिर अब वृन्दावनके सेठजी के मन्दिरकी शाखा ही परिगणित होता है।

ऊपर समर्पित किया गया। रंगाचारीके पास धनाभाव नहीं था, क्योंकि मथुरा के अतुल ऐश्वर्यपति सेठ उनके शिष्य और सेवक थे। सुतरां काशीस्थ पण्डितोंकी सम्मतिक्रय करने के लिये भी यथोचित चेष्टा होने लगी और चेष्टा सफल भी होगई। काशीके पण्डितों ने रंगाचारीके अनुकूल ही सम्मति प्रकाशित करदी। किन्तु विरजानन्दकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और उनकी अपूर्व तेजस्विता की कथा भी काशीस्थ पण्डितोंको अवगत थी, इसलिये यह सोच कर कि किसीके प्रतिकूल सम्मतिप्रकाश करना आपत्तिशून्य नहीं है उन्होंने विरजानन्दको लिखकर भेज दिया कि उपस्थित विषय में आपकी मीमांसा ही यथार्थ है; किन्तु हम अनन्योपाय हैं। इस हेतु इससे पहिले ही हमने रङ्गाचारीके पक्षका समर्थन किया है।

इस घटनाके पश्चात् ही बिरजानन्द शेखर, कौमुदी, मनोरमा प्रभृति आधुनिक व्याकरणोंके प्रति अधिकतर वीतश्रद्ध हो गये। पक्षान्तरमें पाणिनीकी प्रामाणिकताको ही सर्वोपरि स्वीकार करने लगे। फलतः पाणिनीकी अष्टाध्यायी ही व्याकरणविषयक सर्वोच्च ग्रन्थ है—यह विश्वास विरजानन्दके हृदयमें पहिलेसे ही बद्धमूल था; उपस्थित घटनासे यह विश्वास केवल गाढ़तर हो गया। वह जैसे शेखर आदि आधुनिक व्याकरणोंके प्रति आस्थावान् नहीं थे, वैसे ही पुराण-भागवतादि आधुनिक शास्त्रोंकी प्रामाणिकता को भी स्वीकार नहीं करते थे वह भागवतको एक सर्वथा कल्पना-कल्पित पुस्तक कह कर निर्भयतासे प्रचार करते थे। विरजानन्द वेद और वेदानुकूल ग्रन्थके अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ के प्रति पहिलेसे ही आस्थापरायण नहीं थे। उनके निकट मनुष्यप्रणीत कोई ग्रन्थ भी प्रामाणिक कहकर परिगृहीत नहीं होता था। उनकी प्रतिभा ऐसी मर्मस्पर्शिनी थी कि किसी पुस्तककी दो एक कथा वा श्लोकके उच्चारण करनेसे ही वह तत्क्षण ही यह कह देते थे

कि वह पुस्तक मनुष्यप्रणीत है वा ऋषिप्रणीत। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति विद्यार्थी रूपसे उनके पास आता, तो सबसे पहिले मनुष्यप्रणीत ग्रन्थोंकी कथाको विस्मरण करनेके निमित्त ही उसको अनुरोध करते। इसलिये यह नूतन शास्त्रोंके प्रचारके घोर प्रतिपक्षी थे। उनका विश्वास था कि इस लोकमें आर्षग्रन्थों के अधीत और आलोचित होनेसे ही मनुष्योंका यथार्थ मङ्गल साधित होगा। विशेषतः उनका विचार था कि मनुष्यप्रणीत ग्रन्थोंके प्रचार वा आलोचना होनेसे अल्पबुद्धि लोग आर्षग्रन्थों के अध्ययनमें प्रवृत्त नहीं होंगे। इसी कारण एक ओर आर्षग्रन्थों की प्रतिष्ठा और दूसरी ओर अनार्षग्रन्थोंकी अप्रतिष्ठासाधन विरजानन्दके जीवनका एक विशेष व्रत था। विरजानन्द ने स्वयं शेखरादिका खण्डन करके 'वाक्यमीमांसा' नामक एक पुस्तककी रचना की थी। इसके अतिरिक्त पाणिनिके प्रायः अर्द्धभागका एक भाष्यभी प्रस्तुत किया था। परन्तु मनुष्यसमाजमें पीछे उन का ग्रन्थ प्रचारित हो जाय और उनके रचितभाष्यके विद्यमान रहनेसे पीछे मूलग्रन्थके पाठमें मनुष्योंकी प्रवृत्तिका उद्रेक न हो—इस विचारसे उन्होंने स्वरचित पाणिनिभाष्यको यमुनाजलमें फेंक देनेके लिये एक विद्यार्थी विशेषको आज्ञा दी परन्तु उस विद्यार्थीने बहुमूल्यवान् विचार उसे फेंका नहीं; किन्तु अपने पास रख लिया और यह कहकर कि मैं फेंक आया आचार्य्यको सन्तुष्ट कर दिया। पूर्वोल्लिखित 'वाक्यमीमांसा' की भी ऐसी ही अवस्था हुई थी।

वह भी पाणिनिभाष्यके समान ही एक शिष्यविशेषके घरमें सुरक्षित है। इससे सहजमें ही पता लगता है कि विरजानन्द अनार्षग्रन्थोंके प्रचारके अत्यन्त विरुद्ध थे।

विरजानन्द श्रुतिप्रतिपादितधर्मके पक्षपाती थे। जो धर्म श्रुति प्रतिपादित नहीं होता था, प्रत्युत श्रुतिप्रतिकूल होता था, विरजा-

नन्द उसको सनातनधर्म स्वीकार नहीं करते थे। श्रुतिप्रतिपादित-धर्म्मके प्रतिष्ठित होनेसे एकताका सञ्चार होगा, साम्प्रदायिक कोलाहल दूर होगा, और मानवीय शास्त्रके प्रचारके निमित्त जो भ्रान्त विश्वास है वह सर्व प्रकारसे अपसारित हो जायगा— यही विवेचना करके विरजानन्द उसकी प्रतिष्ठाके लिये उत्सुक हुए थे। किन्तु वह चक्षुहीन थे; विशेषतः वार्द्धक्यके कारण किसी प्रकारके श्रमसापेक्ष कार्यके सम्पादनमें एक प्रकारसे असमर्थ थे। इसी हेतुसे जब एक बार जयपुराधिपति महाराजा रामसिंह आगरेमें उपस्थित हुए, तो विरजानन्दने उनके पास जाकर एक सार्वभौमिक सभाके स्थापन करनेका प्रस्ताव प्रस्तुत किया। किम्बहुना, रामसिंहकी प्रकृति बहुत कुछ राजन्योचित थी; उनके चरित्र और आचरणमें पूर्वतन हिन्दुराजाओंका कुछ आभास झलकता था; इस लिये उनसे पूर्वोल्लिखित प्रस्ताव करना किसी अंशमें असङ्गत वा अविहित नहीं था। सार्वभौमिक सभा का उद्देश्य अतिमहान् और सर्वतोभावेन देशहितकर था। इसके अतिरिक्त वह जातीयप्रकृतिके अनुरूप था। विरजानन्दने तेजस्विताके साथ महाराजा रामसिंहसे कहा, "आप सार्वभौमिक सभाके क्षेत्रमें भारतवर्षकी पण्डित मण्डली को आहूत कीजिये, देशके नाना सम्प्रदायस्थ धर्म्माचार्यों को और उसीके साथ दर्शकरूपसे सभास्थलको अलंकृत करनेके लिये भारतवर्षीय भूपतिवृन्दको निमन्त्रण दीजिये। मैं उस महती सभामें सब मनुष्योंके सामने शेषर, कौमुदी प्रभृतिका खण्डन करूंगा, भागवतादिपुराणकी असारता और अशास्त्रीयता प्रतिपादित करूंगा, वैदिक धर्म्म को ही सत्य और सनातन धर्म्म सिद्ध करूंगा, और अन्तमें धर्म्मके रक्षक-रूपसे विजयपत्र प्रदान करके आपके राजनाम और राजमानको सार्थक करूँगा।" फलतः भारतवर्षमें वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा ही सार्वभौमिक सभाके स्थापनका उद्देश्य था। रामसिंहने सार्व-

भौमिक सभाकी आवश्यकताको विलक्षणरूपसे समझ लिया और उस वृद्ध पुरुषके परामर्शके अनुसार उक्त प्रस्तावको कार्य्यमें परिणित करनेके निमित्त भी सङ्कल्प कर लिया। उस महती सभा के सब प्रकारके व्ययके लिये अनुमानसे तीन लाख रुपयेकी आवश्यकता थी। महामति रामसिंह उस महान् उद्देश्य पर तीन लाख रुपये व्यय करनेमें तनिक भी कुण्ठित नहीं थे; किन्तु जब उन्होंने जयपुर लौट कर मन्त्रिवर्गसे यह सभा सम्बन्धी सङ्कल्प प्रकाशित किया, तो उस कार्य्यसे प्रतिनिवृत्त होने के निमित मन्त्री लोग उनसे अनुरोध करने लगे। विशेषतः वहांके पण्डितोंने इस सभासम्बन्धी विषयकी अभिधेयता इस प्रकारसे समझाई कि अन्तमें उन्होंने उसको परित्याग करना ही युक्तियुक्त समझा। इस प्रकारके क्षत्रियोंके अनुचित आचरणसे विरजानन्द रामसिंहसे भी विरक्त होगये और उसके पश्चात् अन्यान्य कतिपय राजाओंसे भी पूर्वोल्लिखित प्रस्ताव किया। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने महाराणी विक्टोरियाके पास भी यह सार्वभौमिक-सभाका प्रस्ताव भेजा था। फलतः विरजानन्द स्वामीका यह परम हितकर प्रस्ताव प्रस्तावमात्र ही रहा, कार्य्यरूपसे उसका कुछ भी न बना या न बन सका।

दयानन्दके साथ स्वामी विरजानन्दका अति निकट सम्बन्ध है। शोणितसम्बन्धके न होने पर भी वह शोणितसम्बन्धकी अपेक्षा अधिक निकटतर है। पुत्रकी प्रकृतिके भीतर जैसे पिता प्रच्छिन्नभावसे विद्यमान रहता है, शिष्यकी प्रकृतिके भीतर वैसे ही आचार्य्य भी गूढ़भावसे अधिष्ठित रहता है। सुतरां आचार्य्य-शिष्यका सम्बन्ध पिता-पुत्रके सम्बन्धकी न्याई सर्व प्रकारसे ही अविच्छिन्न होता है। उपस्थित उदाहरणमें आचार्य्यकी शक्ति शिष्यके चरित्रमें इतनी व्याप्त होगई थी कि आचार्य्य के चित्तको सम्यक् रूपसे चित्रित किये बिना शिष्यके चरित्रको पहिचानना

और समझना एक प्रकारसे असम्भव है । इसी लिये हमने पाठकोंको स्वामी विरजानन्दका विशेष परिचय दिलाया है* । फलतः दयानन्द रूप जिस प्रदीप्त वह्निने इस देशकी कुसंस्कार-राशिको भस्मीभूत किया है, दयानन्द रूप जो महाप्रवाह भारत के यावनीय अपधर्मको अपसारित करनेको प्रधावित हुआ है, अथवा दयानन्द रूप जिस महीयसी प्रतिभाने सायणमहीधरादि भारतीय वेदविख्याताओं को विखण्डित करके वैदिक ऋषियोंके माहात्म्य को सर्वोपरि संस्थापित किया है, विरजानन्दकी शिक्षा और संसर्ग ही उस प्रदीप्त वह्निका स्फुलिंग स्वरूप था, उस महा-प्रवाहका निर्भर वारिस्वरूप था, उस महीयसी प्रतिभाका प्राणस्व-रूप था,—इसके और विस्तारसे कहने की आवश्यकता नहीं है। सारांश यह है कि विरजानन्दके समान श्रुतिधर, विरजानन्दके श्रुतिधर पण्डित, विरजानन्दके समान ब्राह्मण, विरजानन्दके समान वेदप्राण ब्राह्मण, विरजानन्दके समान संन्यासी, विरजानन्दके समान सत्यसङ्कल्प संन्यासी भारतभूमिमें बहुत ही न्यून अभ्यु-दित हुए हैं—यह कहनेमें हमें अणुमात्रभी सङ्कोच नहीं होता। जो लोग यह समझते हैं कि आर्य्यजातिकी गरीयसी प्रतिभा निर्वापित होगई है, अथवा जो लोग यह विचार रखते हैं कि व्यास-वशिष्ठके वंशधर विद्या और बुद्धिशालिताके विषयमें सर्वदा अधःपतित हो गये हैं, हम उनको स्वामी विरजानन्दके विषयमें आलोचना करनेका आग्रहके साथ अनुरोध करते हैं।

*विरजानन्द स्वामीकी जीवनीके विषयमें यहां जो कुछ लिखा गया है वह प्रायः सब हई मथुरावासी पं० युगुलकिशोर शास्त्रीसे संगृहीत किया है। पं० युगुलकिशोरने विरजानन्दके पास बहुत दिन तक अध्ययन किया था। इसके भिन्न वह दया-नन्दके भी सहाध्यायी थे। हमारे विचारमें विरजानन्द स्वामीका

जब दयानन्द मथुरामें आये, तब उनकी आयु ३४ वा ३५ वर्षकी थी। विरजाननजी की आयु भी उस समय ८१ वर्षकी होगी। दयानन्द सम्भवतः वैशाख वा ज्येष्ठ मासमें मथुरा आये थे। उस समय सारा पश्चिमाञ्चल ही दारुण निदाघके तापसे तप्त हो रहा था; विशेषतः सिपाही विद्रोहसे उत्पन्न अशान्ति और अराजकता भी स्थान २ में राज्य कर रही थी, और उसी समय दारुण दुर्भिक्षसे उस प्रदेशके अनेक लोग अन्नकष्टसे भी क्लेश पा रहे थे। अस्तु। मथुरागत दयानन्द कई दिन रङ्गेश्वरके मन्दिर में ठहर कर एक दिन विरजानन्दके पास गये। दयानन्द उस समय संन्यासीके वेषसे सज्जित थे। उनके ललाट पर भस्मरेखा, कण्ठमें रुद्राक्षकी माला, शरीर पर गेरुवे वस्त्र और हाथमें कमण्डलु था। विरजानन्द अन्यान्य विद्यार्थियोंसे जिस प्रकार बोलते थे, समागत दयानन्दसे भी वैसे ही बोले। उन्होंने कहा "तुमने अब तक जो कुछ पढ़ा है, उसके भीतर अधिक अंश मनुष्यरचित ग्रन्थोंका है। मनुष्यरचित ग्रन्थोंका प्रभाव विद्यमान रहते हुए तुम्हारे हृदयमें आर्षग्रन्थोंकी महिमा और मर्म प्रविष्ट और प्रतिष्ठित नहीं हो सकते इसलिये तुम सम्पूर्ण अधीत विषय को विस्मरण करके और मनुष्यरचित ग्रन्थोंको फेंक कर हमारे पास फिरसे पाठ आरम्भ करो, और एक बात यह है कि तुम भोजन और स्थानका प्रबन्ध करके आओ, क्योंकि ऐसा न करनेसे निश्चिन्त चित्तसे पाठ कार्य्य में प्रवृत्त नहीं हो सकोगे।"

दयानन्दने उसके अनुसार भोजन और स्थानकी व्यवस्था कर

क्रमबद्ध जीवनचरित प्रकाशित करनेकी चेष्टा करना नितान्त आवश्यक है। इस विषयमें आर्य्यसमाजको सचेष्ट होना उचित है, क्योंकि दयानन्दको समझनेके लिये विरजानन्दको भी समझना आवश्यक है।

ली। लक्ष्मीनारायणके मन्दिरके नीचेकी कोठरी उनके रहनेके लिये निर्दिष्ट होगई। यह मन्दिर यमुनाके विश्रामघाट ※ के ऊपरले भागमें स्थित है। यह कोठरी मन्दिरके द्वारके पार्श्वमें है छोटे होने पर भी वह एक व्यक्तिके रहनेके लिये अत्युपयोगी थी

घरके सामनेही प्राकृतिक सौन्दर्यकी राशि प्रसारित थी, क्योंकि उसकी पूर्वदिशाके गवाक्षके पास खड़ा होनेसे ही यमुनाकी तरङ्गभङ्गिमय श्यामल सलिलराशि दृष्टिगत होती थी। विशेषतः दूसरे पार कहीं शुभ्र उज्ज्वल सैकतभूमि, कहीं लतापादपपरिवृत क्षुद्र २ कुञ्जवन के दर्शन करके पुलकित चित्त होना होता है। इस प्रकार वासस्थान के निरूपित हो जाने पर अमरलाल के घर में उनके भोजन का प्रबन्ध हो गया। अमरलाल मथुरामें ज्योतिषि-बाबा † के नामसे प्रसिद्ध थे।

※ यह कथा प्रचारित है कि श्रीकृष्ण कंसासुरका प्राणवध करके अत्यन्त परिश्रान्त हो गये थे, इसलिये कुछ देर तक विश्राम लेना उनको आवश्यक हुआ। वह विश्राम लेनेके लिये यमुनाके तटके इसी स्थान पर उपविष्ट हुए थे।। अतः यह स्थान विश्रामघाटके नामसे प्रख्यात हो गया।

† ज्योतिर्विद्यामें प्रसिद्ध होनेके कारण अमरलालको ज्योतिषी बाबाकी उपाधि प्राप्त हुई था। उनको यह उपाधि महाराज सिंध्याने दी थी। महाराजा सिंध्या ज्योतिश्शास्त्रके विषयमें पारदर्शिताके कारण अमरलालसे ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हें दस बारह ग्राम दान कर दिये। अमरलाल उन ग्रामोंकी आयसे प्रतिदिन ब्राह्मण भोजनादि जैसे सत्कार्य का अनुष्ठान किया करते थे उनके घर प्रतिदिन प्रायः एक सौ ब्राह्मण भोजन करते थे। यहां एक यह बात भी कह देना उचित है कि अमरलालके घर भोजनकी व्यवस्था होनेसे पहिले दयानन्द दुर्गाप्रसाद नामक एक सदाशय खत्री के घर थोडे दिन तक भोजन पाते थे।

वह एक दयार्द्र-चित्त व्यक्ति थे। यद्यपि अमरलाल गुजरातप्रदेश-वासी थे; परन्तु मथुरामें ही बहुत दिनोंसे रहते थे। वह भी उदीच्य श्रेणीके ब्राह्मण थे। अपने देश और श्रेणीका देखकर और इसके अतिरिक्त विरजानन्दके पास अतीव बलवती पाठवासना-को देखकर अमरलालने अपने घर दयानन्दके भोजन की व्यवस्था करदी। केवल भोजनकी ही व्यवस्था करके वह निश्चिंत नहीं हुए, किन्तु समय २ पर आवश्यकतानुसार पुस्तकादिकी भी सहायता करने लगे। इस विषयमें दयानन्दने कहा है, "भोजन और ग्रन्थादिके सम्बन्धमें मुक्तहस्तसे सहायता करनेके कारण मैं अमरलालका अत्यन्त बाधित हूँ। भोजन के विषयमें वह इतने प्रयत्नवान् थे कि मेरे भोजनका प्रबन्ध किये बिना आप भोजन नही करते थे कि वास्तवमें वह महान अन्तःकरण वाले व्यक्ति थे—इसमें कुछ संशय नहीं है।" अस्तु। इस प्रकार स्थान और भोजन की व्यवस्था करके दयानन्द विरजानन्दके पास आकर अध्ययनकार्यमें व्यापृत होगये।

उच्चारणकी शुद्धि पर विरजानन्दकी तीव्रदृष्टि थी। उनके सामने कोई विद्यार्थी किसी शब्द वा श्लोकको अशुद्ध उच्चारण करके कभी छुटकारा नहीं पाता था। वास्तवमें विरजानन्दके समान शुद्ध यथार्थ उच्चारण वाले व्यक्ति अध्यापक सम्प्रदाय के भीतर बहुधा दृष्टि गत नहीं होते। यद्यपि दयानन्दने इससे पहिले अनेक अध्यापकोंके पास अध्ययन किया था, परन्तु तो भी उनका उच्चारणगत दोष सर्वथा दूर नहीं हुआ था। इसी कारण विरजा-नन्दके पास उनके पठनके बीच २ में अशुद्धि होने लगी। विरजा-नन्द उनके प्रतिकारके लिये उनको शिक्षा देने लगे। दयानन्द उनके पास पाणिनी और पाणिनीकी अनुपम व्याख्या स्वरूप महाभाष्य के पाठमें प्रवृत्त होगये। उसके पश्चात उपनिषद, मनुस्मृति, ब्रह्म सूत्र और पतञ्जलिके योगसूत्र प्रभृति दर्शनशास्त्रोंको अध्यनकरने

लगे। क्रमशः वेद और वेदाङ्गोंके भी पाठमें प्रवृत्त हुए।

दयानन्द अपने आचार्य्य अदृष्टिपूर्व प्रभावको देखकर विमोहित होने लगे। उनके अपरिमित पाण्डित्य और अत्यन्त आश्चर्य्यमय धीशक्तिका परिचय पाकर वह विस्मित होगये। उन्होंने अनेकानेक आचार्य्योंके पास अध्ययन किया था; परन्तु इससे पूर्व विरजानन्दके समान आचार्य्य और कहीं नहीं देखा था। सूर्य्यमण्डलसे जैसे अविश्रान्त तेजकी राशि निःसृत होती है, अथवा निर्भर से जैसे अनवरत जलधारा निर्भरित होती है, वैसे ही दयानन्द ने देखा कि विरजानन्दके वागिन्द्रियसे नाना शास्त्रों के नाना प्रसङ्ग अविरत रूपसे विनिर्गत होकर शिष्यमण्डलीको विमोहित करते हैं; और यह भी देखा कि वह चक्षुहीन होनेपर भी अपनी प्रज्ञाचक्षु * के द्वारा सब शास्त्रोंके सब स्थानोंको देखकर जिज्ञासित विषयको उत्तम रूपसे सिद्ध कर देते हैं, और विशेषतः यह देखा कि उनका देहयष्टि अस्थियोंका पिञ्जर रह जाने पर भी वह युवकजनके समान उत्साह और तेजस्विताके साथ शास्त्रकी व्याख्यामें व्यापृत रहते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य्यका यह विषय था कि किसी ग्रन्थ वा किसी ग्रन्थके पत्रको जन्म-कालसे न देखने पर भी अपनी सर्वविषयग्राहिणी स्मृतिशक्तिके प्रभावसे क्या व्याकरणशास्त्र, क्या साहित्यसंहिता, क्या वेदवेदान्त, सब विद्याओंके सब प्रकारके तत्त्वोंकी एक २ बातको समझा देते थे। विरजानन्दके समान आचार्य्य जैसे दयानन्दने कभी नहीं देखा था, वैसे ही दयानन्दके समान भी कोई शिष्य विरजानन्दके पास कभी नहीं आया था। सुतरां दयानन्द जिस प्रकार विरजानन्दको एक अनन्य असाधारण

* दयानन्द विरजानन्दको प्रज्ञाचक्षुके नामसे अभिहित किया करते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थोंके अनेक स्थलोंमें उन्हें प्रज्ञाचक्षु नामसे वर्णन किया है।

आचार्य समझने लगे, उसी प्रकार विरजानन्दभी दयानन्दको एक असाधारण शिष्य समझने लगे। फलतः यह आचार्य्य शिष्यका सम्मिलन दोनोंके ही पक्षमें उत्साह और आनन्दका कारण होगया था। विरजानन्द दयानन्दको 'कालजिह्व' कहा करते थे—कालजिह्व वह कि जिसकी जिह्वा कालके समान हो अर्थात् असत्य और भ्रान्तिजालके खण्डनमें दयानन्दकी जिह्वा कालके समान होगी यह उनके हृदयङ्गम होगया। इसके अतिरिक्त वह उन्हें 'कुलङ्कर' नामसे भी पुकारा करते थे। दयानन्द विचारक्षेत्रमें कुलङ्कर या खूंटेके समान अविचलित रहकर विरुद्ध पक्षको पराभूत करेंगे—यह भी वह जान गये थे। पूर्वोल्लिखित वेदादि ग्रन्थानुशीलनके भिन्न दयानन्दने विरजानन्दसे भागवतादि पुराणकी खण्डनविषयक शिक्षा भी प्राप्त की थी। आर्षग्रन्थकी क्या पहिचान है और अनार्ष वा मनुष्यरचितग्रन्थोंका क्या लक्षण है उन्होंने यह विषय भी उनको विशेषरूपसे समझा दिया था। मनुष्यरचित ग्रन्थोंके प्रभाव और प्रतिष्ठाके विद्यमान रहने से आर्षग्रन्थका अध्ययन और आदर आशानुरूप नहीं होगा—इस विषयकी भी उन्होंने यथोचित शिक्षा प्रदान करदी थी; और आर्षग्रन्थोंके अनध्ययन और अनादरके हेतु ही भारतभूमि सैकड़ों प्रकारके साम्प्रदायिक धर्म्ममें विभक्त हो गई है और भारतसमाज सब प्रकारकी आवर्जनाओंका अधिकरण होगया है—इसको भी उन्होंने अपने प्यारे शिष्यके प्रसारित हृदयमें विलक्षण रूपसे अङ्कित कर दिया था। इसके अतिरिक्त विरजानन्दकी चारित्रशक्ति दयानन्दके भीतर संक्रामित हो गई थी। महापुरुषोंकी इच्छा-शक्ति अति प्रबला होती है और वह इस प्रबलास्शक्ति द्वारा अपने प्रभावको दूसरोंके भीतर प्रविष्ट कर सकते हैं यह स्यात् सभी जानते हैं। परन्तु सभी आधारोंमें उनकी शक्ति संक्रामित हो जाती है ऐसा नहीं है। अस्तु। जिस प्रकार महाद्वीप समीपस्थ छोटी-छोटी

दीपावलीको अधिकतर उत्भासित कर देता है उसी प्रकार विरजानन्दने भी अपनी शक्ति और दीप्ति द्वारा दयानन्दकी शक्ति और दीप्तिको द्विगुणित कर दिया था।

विरजानन्द शिष्योंसे प्रायः सर्वदा ही कहा करते थे कि मैं अब जिस अग्निको धूमाकारसे तुम्हारे भीतर निविष्ट करता हूँ समय पाकर वह महान् अग्निमें परिणित होकर भारतभूमिके भ्रान्तमत और भ्रान्तविश्वास रूप जञ्जालराशिको भस्मीभूत कर देगी। अधिक क्या, उसके द्वारा भारतक्षेत्रमें वैदिक धर्म्मकी विलुप्तप्रायः दीपशिखा पुनर्वार प्रदीप्त हो जायगी। विरजानन्दसे निकला हुआ धूमजाल और किसी शिष्यके चरित्रमें अग्नि उत्पादन कर सका - यह नहीं देखनेमें आता। तब उनके द्वारा दयानन्दकी अन्तर्हित अग्नि अधिकतर प्रधूमित और घनीभूत हो गई, यहाँ तक कि उसने प्रलयाग्निकी पूर्व मूर्त्तिका शरीर धारण कर लिया था। इस विषयमें हमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। फलतः दयानन्दने स्वामी विरजानन्दके पास इस प्रकार अध्ययन-कार्य समाप्त किया। उनके अध्ययनके समाप्त होनेमें न्यूनसे न्यून छः और अधिकसे अधिक सात वर्षका समय लगा। विरजानन्दके पास अध्ययन आरम्भ करनेसे पहिले दयानन्द जैसे थे, अध्ययनके अन्तमें वैसे नहीं रहे। अस्तु। इस देशमें गुरुदक्षिणाकी एक पद्धति चली आती है। अध्ययनके समाप्त होनेपर विद्यार्थिगण अपने २ सामर्थ्यानुकूल गुरुको दक्षिणा प्रदान किया करते हैं। संन्यासी दयानन्दके पक्षमें गुरुदक्षिणा रूप अर्थसंग्रहकी सम्भावना नहीं थी; विशेषतः विरजानन्द भी उस श्रेणीके गुरु नहीं थे। अध्यापनके समाप्त होने पर दक्षिणा-ग्रहण वा अन्य किसी उपायसे अर्थसंग्रह करना सर्वतोभावेन उनके सङ्कल्पके विरुद्ध था। फलतः विदा लेनेके समय उस प्रशान्त-प्रकृति वृद्ध पुरुष ने दयानन्द को अन्तःकरणसे आशीर्वाद दिया और कुछ

तेजस्विताके साथ यह कहा कि, 'तुम आर्यावर्त्तमें आर्षग्रन्थोंकी महिमा प्रतिष्ठित करना, अनार्षग्रन्थसमूहका खण्डन करना, और भारतमें वैदिक धर्म्मके स्थापनमें प्राण तक अर्पण कर देना।'

विरजानन्दके पास अध्यन समाप्त करके सम्भवतः १८६५ ईस्वीमें दयानन्द मथुरासे आगरा गये। वहाँ यमुना तटके पास एक उद्यानमें रहने लगे। वह आगरा नगरमें प्रायः दो वर्ष रहे। उस समयमें पण्डित सुन्दरलाल प्रभृति कई एक व्यक्ति उनके साथ आलाप और आत्मीयताके सूत्रमें बद्ध हुए। यहाँ तक कि सुन्दरलालके साथ स्वामीजीका प्रीति-सम्बन्ध संस्थापित होगया। वह प्रीति-सम्बन्ध दोनोंके भीतर जीवनपर्यन्त अविच्छिन्न रहा। आगरा रहनेके समय दयानन्द प्रगटभावसे शास्त्रार्थ वा वक्तृता आदि कुछ नहीं करते थे। जो लोग उनके पास आते थे, उनके साथ विचार और वार्त्तालापके भिन्न अधिक समय ध्यानधारणा में निमग्न रहते थे। ऐसा सुननेमें आता है कि वह कभी कभी अट्टारह घण्टे तक निरन्तर समाधिस्थ रहते थे, और कभी शास्त्रा-लोचनाके सम्बन्धमें भागवतादि पुराण आधुनिक ग्रन्थोंकी असारता प्रतिपादन करते थे, और कभी वेदादि आर्षग्रन्थोंकी अनिर्वचनीय महिमाके वर्णन करनेमें व्यापृत होते थे। उस समय वह अपने मन्तव्यामन्तव्यके विषयमें कभी कोई कथा परिस्फुट भावसे नहीं कहते थे; तो भी यह प्रतीत होता है कि वह उस समय आदिमें वैष्णव मतके आस्थावान् नहीं थे। यह नहीं कह सकते कि शैवमतके सम्बन्धमें आस्थापरायण थे वा नहीं, परन्तु इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि शैवमतका समर्थन करते थे। ऐसा कहा जाता है कि उस समय दयानन्द ने पूर्वोल्लिखित पण्डित सुन्दरलालको शिवोपासना करनेकी अनुमति दी थी; यहाँ तक कि उन्होंने अपने कण्ठकी रुद्राक्षमाला

अकृत्रिम प्रीति दर्शानेके लिये सुन्दरलाल को अर्पण कर दी थी*। फलतः दयानन्द उस समय अपनेको मतविशेषके ऊपर अविचलितभावसे प्रतिष्ठित नहीं कर सके थे। अधिकतर उनका चित्त उस समय संशयान्दोलित था। इसी कारण वह, कभी पत्रद्वारा वा कभी स्वयं जाकर, आचार्यके पास संशयनिवारणकी चेष्टा करते थे। इस प्रकार प्रायः दो वर्ष आगरेमें अतिवाहित करके दयानन्द ग्वालियर चले गये।

यह कुछ नहीं विदित होता कि ग्वालियरमें वह किस जगह और कितने दिन रहे। उनके स्वयं लिखे हुए आत्मचरित के विचारनेसे यह प्रतीत होता है कि वे वहाँ वैष्णवमतके खण्डनमें प्रवृत्त हुए थे। वहाँ सबके सामने वैष्णवमतके प्रतिकूल वक्तृता देने लगे, और उपस्थित मनुष्योंके साथ उसकी असारताको लेकर विचारमें प्रवृत होने लगे। दयानन्दने एक दिन वक्तृताके समय में वैष्णवोंके तिलकरेखाके सम्बन्धमें कहा, "यदि मस्तक पर कृष्णवर्ण की रेखा धारण करनेसे मोक्षलाभ होता है, तो सारे मुखमण्डलको कृष्णवर्ण की रेखासे अङ्कित करने से मोक्ष से भी अधिक पद प्राप्त हो सकता है।" धर्म्मविषयक बाह्य चिन्होंमें

* ऐसा सुना जाता है कि पण्डित सुन्दरलाल पीछे आकर आर्यसमाजके साथ अधिकतर विषयोंमें सहमत हो गये थे और दयानन्द के सारे कार्य्योंके साथ आन्तरिक अनुराग प्रकाशित करते थे, परन्तु वह शिवोपासनाको सर्वथा परित्याग नहीं कर सके। उन्होंने स्वामीजी की दी हुई रुद्राक्षमालाको बड़े यत्नके साथ घरमें रख छोड़ा था और प्रतिदिन पूजा के समय श्रद्धाके साथ उस मालाको लेकर जाप किया करते थे। सुन्दरलाल पश्चिमोत्तरप्रदेशकी गवर्नमेन्टके आधीन डाकविभागके उच्चतर पद पर नियुक्त थे।

दयानन्दकी वाल्यसमयसे ही श्रद्धा नहीं थी। उपरोक्त उक्तिसे उनकी उस वीतश्रद्धताका स्पष्टतर निदर्शन दृष्टिगोचर होता है। फलतः धर्म्मविषयक बाह्य अनुष्ठान और बाह्य चिन्होंकी जिस तीव्रभाषामें वह आलोचना करते थे उसका प्रभूतपरिचय हम उनके भविष्यजीवन में देखेंगे। अस्तु। यह प्रतीत होता है दयानन्द उस समय तक शास्त्राधिकार में सुप्रतिष्ठित नहीं हो सके थे, और अधीतविद्यामें परिपक्वता प्राप्त नहीं कर सके थे, क्योंकि वहां शास्त्रकी आलोचना करते समय उनके मुखसे बीच-बीच में अशुद्ध शब्द निकल जाया करते थे—यह उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है। इस विषयमें दयानन्दने कहा है, "वहां अनुमताचार्य्य * नामक एक व्यक्ति हमारी शास्त्रलोचना सुनने के लिये सदा ही आया करते थे और अपनेको किरानी कह कर परिचित करते थे। विचारप्रसङ्गमें मेरे मुखसे कभी कोई अशुद्ध शब्द निकल जाता था, तो वह तत्क्षण ही उसे शुद्ध कर दिया करते थे।"

दयानन्द ग्वालियरसे करौली आये। करौलीमें कोई लिखने योग्य शास्त्र विचारका होना प्रतीत नहीं होता। यह विदित होता है कि वहां एक कबीरपन्थीके साथ शास्त्रार्थमें कुछ २ वार्तालाप हुआ था। यह उन्हें करौलीमें उसी कबीरपन्थीसे विदित हुआ था कि कबीरोपनिषत् नामकी भी उपनिषद् है। इसके पश्चात् वे यहांसे जयपुर आये। जयपुर जाकर ठाकुर रणजीत-सिंहके घर ठहरे। वहां हरिश्चन्द्र नामक एक पण्डित थे। हरि-श्चन्द्र सम्भवतः वैष्णवमतावलम्बी थे। दयानन्दने हरिश्चन्द्रके

* भ्रान्तिवशतः इन व्यक्तिका नाम अवतरणिकामें अनु-त्तमाचार्य्य लिखा गया है। इनका वास्तविक नाम हनुमन्ता-चार्य्य था।

साथ वैष्णवमतके सम्बन्धमें विचार उपस्थित किया। उनके विचारफलको जाननेके निमित्त जयपुर निवासी बहुत उत्सुक हुए। अन्तमें दयानन्दने हरिश्चन्द्रको परास्त करके शैवमत प्रतिष्ठित कर दिया। हरिश्चन्द्रके पराजयसे दयानन्द जयपुरवासियोंमें एक असाधारण पण्डित प्रख्यात हो गये और इसके साथही जयपुरके महाराजा भी शैवमतके पोषक बन गये* और अधिक क्या, उन्होंने स्वयं शैवमत ग्रहण कर लिया। प्रजावर्ग प्रायः सर्वत्र ही राजपथानुसारी होते हैं, इसलिए वहां के अधिकतर व्यक्ति महाराजके पन्थका अनुसरण करने लगे। फलतः उपस्थित घटनामें जयपुर निवासिवृन्द ऐसे उत्तेजित हो गये थे, प्रत्युत स्वयं महाराज भी नवावलम्बित मतके इतने पृष्ठपोषक हो गये थे कि शिवके नाम और शिवमहात्म्यके कीर्त्तनसे जयपुर नगर गूंज उठा था। प्रायः सबने ही अपने २ कण्ठमें रुद्राक्ष की माला धारण करली थी; यहां तक कि राजकीय पशुशालामें जितने अश्व और हस्ती थे वे सब ही रुद्राक्षकी

* जयपुरमें शैवमतके साथ वैष्णवमतके संघर्षणसम्बन्धमें अति प्रबल आन्दोलन उपस्थित हुआ था। यह बात बहुतोंसे सुनी जाती है। इस विषय में किसी २ अभिज्ञ व्यक्तिसे अनुसन्धान करके मथुराके सेठोंके प्रसिद्ध कार्य्यध्यक्ष श्रीयुत शीतलचन्द्र मुख्योपाध्याय महाशयने ग्रन्थकारको लिखकर भेजा कि १९२० से १९२४ वि० के भीतर किसी न किसी समयमें जयपुराधीश महाराजा रामसिंहने वैष्णवोंको नाना प्रकारसे निगृहीत किया था। इस कारण अनेक वैष्णव जयपुर छोड़कर बीकानेर प्रभृति स्थानोंको चले गये थे, परन्तु उपर्युलिखित घटनाके साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता, क्योंकि महाराजा रामसिंहने लक्ष्मणगिरि नामक एक सन्यासीके परामर्शसे परिचालित होकर ऐसा किया था।

मालासे विभूषित होकर एक नये और अदृष्टपूर्व वेषमें नगरमें विचरण करने लगे। इस घटनासे स्वयं दयानन्द इतने उत्साहित हुए कि वह अपने हाथमे सहस्रों रुद्राक्षमाला स्वेच्छानुसार वितरण करने लगे। उसके पश्चात् वह जयपुरसे पुष्कर चले। पुष्करसे अजमेर जाकर शैवमतका भी प्रतिवाद करने लगे। उस समय जयपुराधीश गवर्नर-जनरलके निमन्त्रण पर उनसे मिलनके लिये आगरे जाते थे। आगरा जाते हुए मार्गमें उनका सङ्कल्प बृन्दावनके दर्शन करनेका भी था। यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि पूर्वोल्लिखित रङ्गाचारी बृन्दावनमें रहते थे। यदि रङ्गाचारी वैष्णवपक्ष के समर्थनके लिये उद्यत होंगे, तो दयानन्द उनको पराजित करके शैवपक्षको समर्थितकरेंगे—इस उद्देशसे जयपुराधीशने दयानन्दको साथ लेजानेका अभिप्राय प्रकाशित किया। महाराजाके इस अभिप्रायको जानने पर दयानन्दने उनसे असंकुचित चित्तसे कह दिया कि मैं शैवमत को भी सत्य वा युक्तिसंगत नहीं समझता। इसमें आश्चर्य्य क्या है कि जयपुराधीश उनसे ऐसी आशाके प्रतिकूल कथा सुन कर बहुत विस्मयान्वित हुए। अस्तु। इसके कुछ दिन पीछे अपने हृदयोत्थित सन्देहान्धकारको दूर करने के अभिप्रायसे वह मथुरा आये *।

---

* कोई २ कहते हैं कि देशीय राजाओंको अपने मतमें दीक्षित कर सकने से भारतमें ही वैदिक धर्म्म प्रतिष्ठित हो जायगा—यह विचार करके दयानन्द सबसे पहिले ग्वालियर प्रभृति देशीय राजाओं की राजधानियोंमें गये थे, और कोई २ यह कहते हैं कि गुरुदक्षिणाके लिये अर्थसंग्रह करनेके उद्देशसे वह देशीय राजाओंके पास गये थे। किम्बहुना, शास्त्रीय विचारोंमें जयलाभ कर सकने पर राजाओ से धनप्राप्ति हो सकेगी यह दयानन्द जानते ही थे और यह जान कर ही वह जयपुर और करौली

ऐसा हो सकता है कि दयानन्द वैष्णवके समान शैवमतके भी सर्वथा विरूद्ध हों, और तुलनाप्रसङ्ग में वैष्णवपक्षकी अपेक्षा शैवपक्षको अधिकतर उन्नत वा विशुद्ध समझा हो। नहीं तो एक बार उसका समर्थन करके पुनर्वार खण्डन करना उनके पक्ष में किस प्रकारसे सम्भव हो सकता है? परन्तु इस विषयमें हमारा निश्चय और है। दयानन्दने जयपुरके प्रसिद्ध पण्डित हरिश्चन्द्रके साथ तुलनाप्रसङ्गसे शैवमतका उत्कर्ष प्रतिपादित किया था या दोनों मतोंके गुणदोषका विश्लेपण करके शैवमतको ही अधिकतर निर्दोष वा निष्कलङ्क प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया था—हम ऐसा नहीं मानते। पक्षान्तरमें हमें कुछ भी संशय नहीं है कि वह उस समय शैवमतमें स्वभावसे ही आस्थावान् थे: किन्तु उनकी वह आस्था परिपक्व वा सुदृढ़ भित्तिके ऊपर स्थापित नहीं थी, क्योंकि हमें ऐसा बोध नहीं होता कि वह उस समय तक अपनेको किसी प्रकार सिद्धान्तभूमिके ऊपर प्रतिष्ठित करसके थे। किंतु उनका चित्त उस समय घोर सन्देहतरङ्गसे आन्दोलित होरहा था। वह सन्देह सामयिक वा तात्कालिक नहीं था। उस सन्देह का रेखापात उनके बाल्यचरित्रमें ही देखा जा चुका है। फलतः यह कहना आवश्यक नहीं है कि वही सन्देह दयानन्दके तरुणकालोत्थित सन्देह की परिणति वा प्रसारतामात्र था। इससे पहिले पाषाणादिपदार्थनिर्मित मूर्तिके प्रति उनका जो संशय सञ्चारित हुआ था वह उसी समय निराकृत नही हुआ।

प्रभृति स्थानोंमें गये थे। हम इन दोनों ही उक्तियोंको अमूलक समझते हैं, क्योंकि अपने मतमें दीक्षित करनेके अभिप्रायसे दयानन्द किसी राजाके पास नहीं गये। वह केवल किसी २ राजधानी में गये थे, परन्तु किसीसे उन्होंने अर्थयाचना नहीं की और उनके गुरु भी दक्षिणाग्रहण करने की प्रथाके नितान्त विरोधी थे।

जड़पूजा वा जड़देवताके प्रति उनका घोर अविश्वास अवश्य उत्पादित हो गया था; परन्तु उसके स्थानमें जड़ातीत जीवन्त पुरुषके प्रति उनका जीवन्तविश्वास उस समय तक भी बद्धमूल नहीं हो सका था। अभिप्राय यह है कि वह इतने दिन तक अविश्वास रूप गाढावसादमें जिस प्रकार अवसन्न हो गये थे, उस प्रकार विश्वासकी ज्वलन्त अग्निमें सञ्जीवित होनेको समर्थ नहीं हुए थे। वह अब तक अभाव पक्षमें जितने अग्रसर हुए थे। भावपक्ष मे उतने अग्रसर नहीं हो सके थे। तो इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि ऐसी दशा में उनका जीवन संशयप्रवाह से अधिकतर प्रचालित हो। एक बात और भी थी कि विरजानन्दकी शिक्षा और संसर्गसे दयानन्दका सन्देहान्धकार पूर्वापेक्षा गाढ़तर हो गया था। इसी कारण उन्होंने उनके सामने चिन्ता के अनेक नये २ राज्यको उद्घाटित किया था, अनेक अचिन्तितपूर्व विषयोंने उनकी दृष्टिको आकृष्ट करलिया था। इस कारण दयानन्दके अन्तः-करणमें जिस प्रकार नूतनतर जिज्ञासाओंका संचार हुआ था, उसी प्रकार उसके साथ ही उनकी संशयतमिस्राने भी घनतर भाव धारण कर लिया था। अतएव जब वह आगरामें यमुना तटवर्ती उद्यानमें वास करते थे, जब वह ग्वालियर में वैष्णव-मतके खण्डनमें प्रवृत हुए थे जब करौली में कबीरपन्थी के साथ शास्त्रालाप कर रहे थे, जब वह जयपुरमें सब लोगोंको शैवपक्षमें उत्तेजित कर रहे थे, अथवा जब उन्होंने अजमेर नगर में शैव पक्षके प्रतिकूल अस्त्रधारण किया था, तब उनका चित्त संशयतमिस्रामें समावृत था। इसमें विचित्रता ही क्या है? संश-यत् मिस्राके भीतर मनुष्य जैसे किसी वस्तु को सत्य वा अभ्रान्त कह कर धारण नहीं कर सकता, वैसे ही विषय विशेषके ऊपर भी अपनेको प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ नहीं होता। प्रातःकाल के कोहरे

में जैसे पथिक दिशानिर्णयमें असमर्थ होकर एक पथसे दूसरे पथ में और दूसरे से तीसरे पथमें परिचालित हो जाता है, वैसे ही सन्दिग्धचित्त व्यक्ति भी किसी प्रकार सिद्धान्तभूमिका सन्धान न कर सकने पर एक विषयसे दूसरे विषयमें भ्राम्यमाण हो जाताहै किम्बहुना, दयानन्द की यही अवस्था होगई थी इसी लिये उन्होंने जयपुरमें जिसका समर्थन किया। अजमेर जाकर उसीका खण्डन करने लगे। अस्तु। वह संशयान्दोलित होनेपर भी अत्यन्त सरल थे। इसीलिये जब उन्होंने जिसको सत्य समझा, तब तत्क्षणात् उसीको बिना संकोचके ग्रहण कर लिया इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि उनके मतपरिवर्तनके सम्बन्धमें कोई व्यक्ति क्या कहेगा औरसम्प्रदायविशेषमें वह यशोभाजन होंगे वा नहीं। जनसाधारण की निन्दाके निग्रहपर उन्होंने भ्रूक्षेप भी नहीं किया। जयपुराधिपति जब रङ्गाचारीके साथ विचार करने के लिये वृन्दावन ले जाना चाहते थे, तब उन्होंने यह बातको कि वह शैवपक्षके पोषक नहीं हैं कहकर अपनी अकृत्रिम सरलताके साथ निर्भयताका भी परिचय दिया था। ऐसा सारल्यमिश्रित संशय निन्दाकी वस्तु नहीं है; प्रत्युत सर्वतोभावेन प्रशंसाके योग्य ही है, क्योंकि मनुष्यके ज्ञानार्जन वा आध्यात्मिक उत्कर्षके पक्षमें इस प्रकारके संशयसे प्रकृत बान्धवता का परिचय मिलता है। अस्तु। यहां एक और भी कथा पर विचार करना आवश्यक है। वह कथा बड़ी प्रयोजनीय है। जन्मदाता पिता यदि पुत्र की प्रकृतिमें सर्वप्रकारसे संक्रामित होते हैं, और इसलिये दयानन्द यदि पितृचरित्रकी अनुपम धर्म्मनिष्ठा और दृढ़चित्तताको प्राप्त करते हैं, तो वह अपने पिता की प्रगाढ़ शिवभक्ति को भी क्यों न प्राप्त करते। बैजिकशक्तिकी सदूरगामिता साधारण नहीं होती, यहाँ तक कि बैजिक वा कौलिक प्रभाव एक रूपसे अतिक्रमणीय होता है। इसलिये दयानन्दका शैवपक्षसमर्थन जैसा एक ओर

सन्देहजनित था, दूसरी ओर वह वैसा ही कौलिक प्रभावसम्भूत था—यह स्वीकार करना पड़ेगा।

दयानन्द मथुरामें आकर आचार्यके पैरोंमें प्रणत हुए। विरजानन्दने भी प्रिय शिष्यके आनेसे आनन्दको अनुभव किया। तदनन्तर वह अपने सन्देहोंकी कथा स्पष्ट करके कहने लगे। एकदिन में वा एक समयमें सारी कथा व्यक्त करना सम्भव नहीं था, इस लिये दयानन्द अपने वक्तव्य विषयको धीरताके साथ विवृत करने लगे। व्याधिग्रस्त व्यक्ति निपुण चिकित्सकके पास अपनी व्याधि का वृत्तान्तवर्णन करके जिस प्रकार आशान्वित हो जाता है, दयानन्द भी आचार्यके पास अपनी संशय व्याधिका वृतान्त विज्ञापित करके वैसे ही आशान्वित हुए। विरजानन्द अपनी प्रोज्ज्वल प्रज्ञा-दृष्टिके प्रभावसे शिष्यके चित्तकी सम्यक अवस्था को उत्तम रूपसे समझ गये और समझनेके पश्चात् उसके प्रतिकारमें प्रवृत्त हुए। गुरुकी शिक्षा और सुचिकित्सासे दयानन्दकी संशयव्याधि थोड़े ही कालमें दूर होगई—इसको विस्तार से कहनेकी आवश्यकता नहीं है। व्याधित व्यक्ति व्याधिके अवसानमें जिस प्रकार आनन्दित होता है, अथवा प्रातःकालके सूर्यके किरणसञ्चारसे विहङ्गकुल जिस प्रकार पुलकातिशय्यसे प्रफुल्लित होजाता है, दयानन्द भी उसीप्रकार व्याधिविमुक्त वा विगतसंशय होकर अपार हर्षके रस से अभिषिक्त होगये। उसके पश्चात् विरजानन्दने उनको स्वावलम्बित व्रतकी कथा अर्थात् भारतवर्षमें वैदिकधर्मके संस्थापनाकी कथा फिरसे समझा दी। अधिकन्तु, उस व्रतोद्यापनके निमिति शिष्यके हृदयमें अधिकतर उत्साहकी अग्नि सञ्चारित करदी आचार्य्यके पाससे इस प्रकार विमुक्तसंशय और उत्साहित होकर दयानन्द मथुरासे हरिद्वार चले गये। इसके पश्चात् उनके साथ विरजानन्दका फिर साक्षात् नहीं हुआ।

हरिद्वारमें उस समय कुम्भका मेला था। वहाँ सहस्रों मनुष्य धर्मार्थी होकर आये थे। नाना श्रेणी और नाना सम्प्रदायके साधु, संन्यासी, दण्डी, परमहंस, बैरागी, ब्रह्मचारियोंने नाना स्थानोंसे आकर उस पुण्यभूमिको अधिकतर पवित्र कर दिया था। उनके विचित्र परिच्छेद, विविधभाव और भजन-साधनाकी भिन्न २ प्रकारकी प्रणालीमें वह लोकारण्य एक अपूर्व शोभासे परिशोभित हो गया था। क्या साधु-संन्यासी, क्या गृहस्थ-उदासीन, सभी उस शुभ मुहूर्त्तके लिये सतृष्ण हो रहे थे और उस शुभ मुहूर्त्तमें हिमाचलतलवाहिनी जाह्नवीके पवित्र जलमें स्नान और निमज्जन करके अक्षय फलकी प्राप्तिके उद्देशसे प्रतीक्षा करते थे। भारतक्षेत्रमें जितने मेले होते हैं, उनमें कुम्भके समान कोई मेला विशाल वा व्यापक नहीं है। कुम्भ यथार्थमें ही महामेला है। कुम्भके भिन्न और किसी घटनाके उपलक्षमें इतने गृहस्थ वा संन्यासियोंका समावेश कभी संघटित नहीं होता। दयानन्द जानते थे कि शास्त्रालोचनाके पक्षमें ऐसा उपयुक्त क्षेत्र सहजमें प्राप्त नहीं होता। दयानन्द यह भी जानते थे कि भारतवर्षीय सब प्रकारके साम्प्रदायिक धर्मोंके ऊपर वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठा स्थापन करनेका ऐसा समय और सुविधा सहजमें संघटित नहीं होगा। यह सब जानबूझ कर ही वह हरिद्वार गये थे। उस मेलाभूमिमें दयानन्द एक पर्णकुटीमें रहने लगे। उस कुटीके ऊपर एक पताका उत्तोलित की। पताकाका नाम 'पाखण्ड-मर्दन' रक्खा। पाखण्डमर्दन पताका उनकी कुटीपर उड्डीयमान होकर कुछ काल पश्चात् वैदिकधर्मकी जयघोषणा करने लगी। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यभागमें हरिद्वारकी पवित्रभूमि और कुम्भके पवित्र समयमें पताका-उत्तोलन करके महात्मा दयानन्द सरस्वतीने वेद-प्रतिपादित धर्मका पुनरुद्बोधन किया।

दयानन्दकी पताकापरिचिन्हित कुटी पर मेलाक्षेत्रके नाना लोग नाना भावसे दृष्टिपात करने लगे। उसको देखकर कोई किञ्चित विस्मित होता था, कोई विरक्त होता था, और कोई कौतूहलाक्रान्त होकर पताकाके पास आता था। उसको देखकर साधु-संन्यासियोंके हृदयोंमें नाना प्रश्न उठने लगे। उनमेंसे अनेकोंके भीतर कौतूहलकी शिखा जल उठी। यहाँ तक कि उस पताकाके उत्तोलन करने वालेको देखनेके अभिप्रायसे उनमेंसे अनेक दयानन्दकी कुटी के पास इकट्ठे होने लगे। आये हुए लोगों ने कुटीके भीतर दृष्टिपात करके देखा कि एक तेजःप्रभावसमन्वित संन्यासी गर्जनोन्मुख सिंहके समान बैठा हुआ है। सन्यासीके साथ संन्यासियोंका वार्त्तालाप होने लगा। वार्त्तालापकी अग्नि उद्गिरित हुई और उस उद्गिरित्त अग्निराशिने दोनों ही पक्ष को उत्तेजित करके तीव्र विचारमें व्यापृत कर दिया। दयानन्दने उस विचार-अग्निसे भारतवर्षके मिथ्याशास्त्रसमूहको दग्ध कर डाला, मनुष्यप्रचारित मतसमूहको भस्मीभूत करनेके लिये प्रयास किया, और अन्तमें श्रुतिप्रतिपादित धर्म्मको सिद्ध करनेकी चेष्टा की। परन्तु उस विचारप्रसंगमें उन्होंने उत्तम रूपसे समझ लिया कि क्या संन्यासी, क्या संसारी, प्रायः सब ही उनके अवलम्बित पथके विरोधी हैं। जिस किसी साधुके साथ उनका परिचय हुआ, जिस किसी संन्यासीके साथ उनका वार्त्तालाप हुआ, और जिस किसी धर्म्म-जिज्ञासु गृहस्थीके साथ उन्होंने धर्म्मालोचना की, सब ही को प्रचलित मतोंका अनुरागी और अनार्ष-ग्रन्थों का पक्षपाती पाया। जैसे दिगन्तविस्तृत अन्धकारसे चारों दिशायें आच्छादित हो जाती हैं, जैसे महाप्लावनमें घर, आंगन, अन्तःस्थल, पतङ्ग, पशु, कीट, कीटाणु प्रभृति सब ही प्लावित हो जाते हैं, दयानन्दने देखा वैसे ही अज्ञानताके महाप्लावनमें भारतभूमिकी प्रायः सब ही श्रेणी और सब ही सम्प्रदाय विकृत

और विपर्य्यस्तबुद्धि हो गये हैं; सत्य निष्ठा और सरलताके अभावसे इस देशका आद्योपान्त ही जड़प्राय हो गया है। इसी कारण उन्होंने स्थिर किया कि इस श्मशानभूमिमें प्राण-प्रतिष्ठा की चेष्टा करना अथवा इस प्रतिष्ठित और सर्वत्रप्रसारित जड़ताके भीतर जीवनका उद्बोधन करना एक प्रकारसे अनर्थक प्रयास है; अधिकन्तु इस प्रकारका व्रतावलम्वन करना जीवनके लिये वड़ा ही अशान्तिप्रद है। इस प्रकारकी चिन्ताके पश्चात् उन्होंने स्थिर किया कि किसी प्रकार वादप्रतिवादमें प्रवृत्त न होकर और विचारविद्रोहसे परिपूरित संसारक्षेत्रमें अवतरण न करके शान्त और समाहित चित्तसे जीवनयापना करना ही उनके लिये विहित और युक्तिसङ्गत है। इसके अनुसार दयानन्दने अपनी ग्रन्थराशि और अन्यान्य सामग्रीको वितरण कर दिया और देहमें भस्म लगा कर उसी कुटीमें मौनी होकर योगचर्य्यामें प्रवृत्तहोगये। परन्तु जो शक्ति संसारके हितसाधनके उद्देशसे अवतारित हुई है वह रुद्धगति होकर कैसे रह सकती है? जो ज्योतिः जगत्की अज्ञान-तमिस्राके हरण करनेके निमित्त सृजित हुई है वह प्रछन्न होकर कैसे रह सकती है ?शक्तिका विकाश हो और फिर हो। जो ज्योतिः है उसका प्रकाश हो और फिर हो। कठिन शैलावरण से जैसे नदी की तेजस्विनी जलधारा नहीं रुक सकती, किंवा चन्द्रमाकी उद्भिन्न किरणमाला जैसे मेघच्छायासे चिरकालतक समाच्छन्न नहीं रह सकती, दयानन्दकी अन्तर्निहित शक्ति भी वैसे हीअधिक समय तक संरुद्ध नहीं रह सकी। एक बार कोई व्यक्ति उनकी कुटी में बैठा हुआ 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' इत्यादि पढ़ कर भागवतके सर्वोपरि प्राधान्य स्थापनकी चेष्टा करने लगा। तुरन्त ही उनका हृदयनिहित शक्तिनिचय वन्हिस्पृष्ट वारुदके समान भभक उठा। अधिकन्तु वह आया हुआ मनुष्य जब कहने लगा कि भागवतकी अपेक्षा वेद निकृष्ट और निम्नपदवीस्थ हैं,

चतुर्थ परिच्छेद ।

प्रचारयात्रा,-कम्पिलनगर प्रभृति गङ्गातीरवर्ती स्थानोंमें भ्रमण,
फर्रुखाबाद-आगमन-वहां-मूर्त्तिपूजाका खण्डन-उत्पीडन
और आक्रमण-चेष्टा-वैदिकपाठशालाका स्थापन-
रायगढ़में आगमन और शत्रुओंके हाथोंसे
प्राणविनाशकी सम्भावना-प्रयागमें
आगमन और व्यक्तिविशेषको क्रि-
श्चियन धर्म्मग्रहण करनेसे
रोकना-प्राणविनाशकी
पुनर्वार चेष्टा ।

व्रतनिर्धारणके पश्चात् दयानन्द एकान्तभावसे चिन्तानिविष्ट हो गये । व्रतोद्यापनमें क्या २ विघ्न हैं और किस प्रणाली वा पद्धतिका अवलम्बन करनेसे व्रत उद्यापित हो सकता है—इस विषयमें उनके मनमें नाना प्रकारकी चिन्ताओंका उदय होने लगा। भारतवर्षमें वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठामें भिन्न २ श्रेणी वा भिन्न २ सम्प्रदायकी की हुई जितने प्रकारकी आपत्ति उठ सकती हैं उन्हें वह स्वयं ही उठाकर स्वयंही खण्डित करने लगे ❀ । समरनीतिनिपुण

❀ ऐसा सुननेमें आता है कि स्वामीजीने प्रचारयात्राके लिये बाहर निकलनेसे पूर्व अपनी कुटीके सम्मुखवर्ती वृक्षविशेषको पूर्वपक्ष और अपनेको उत्तरपक्ष कल्पित करके वैदिकधर्म्मके प्रतिपादनमें जितनी आपत्ति वा संशय हो सकते हैं उनका निराकरण किया था अर्थात् वह वृक्ष पूर्ववृक्ष रूपसे एक २ आपत्ति वा प्रश्न उत्था-

सेनापति जैसे युद्धसंक्रान्त सारे विषयोंकी एक २ करके आलोचना करके अवधारण करता है, दयानन्दने भी वैसे ही अवलम्बित व्रतके विघ्न, वाधा, प्रकृति, परिणाम प्रभृति सारे विषयोंको विशेषरूप से विचार कर अवधारण किया। उन्होंने सम्भवतः कुम्भके समाप्त होने पर हरिद्वारसे यात्रा की। उस समय सन् १८६७ अथवा ६८ ईस्वी होगा, क्योंकि संवत् १९२४ में पूर्व कथित कुम्भका मेला हुआ था। ऐसा होनेसे दयानन्दकी आयु उस समय ४३ व ४४ वर्षकी रखनी पड़ती है।

हरिद्वार जैसे पुण्यसलिला भागीरथीकी उत्पत्तिका स्थान कह कर प्रसिद्ध है, उसी प्रकार वह उन्नीसवीं शताब्दिमें वैदिकधर्मकी उदयभूमि कह कर भारतीय इतिहासमें स्थान पाने योग्य है। हरिद्वारसे भागीरथीकी उद्दाम तरङ्गमाला जैसे भारतभूमिके शतविध कल्याणके निमित्त प्रवाहित होती है, वैसे ही आर्य्यावर्त्तके अशेष प्रकारके मङ्गलके निमित्त वैदिकधर्मकी पवित्रजलधारा भी वहाँसे ही प्रवाहित हुई वैदिकधर्मका गंगा धर्मस्रोतके साथ समभाव न होनेपर भी वह समभूमिमें सञ्चारित होने लगा, क्योंकि दयानन्द भागीरथीसिञ्चित प्रदेशके भीतर ही वैदिकधर्मकी ज्योतिःप्रसारण पूर्वक आगे बढ़े। इस प्रकार नाना स्थानोंमें भ्रमण करके वह कम्पिल नगरमें आये। कम्पिलनगर

पित करता था और वह उत्तरपक्ष रूपसे उसका खण्डन करते थे। इस प्रकारसे तत्सम्बन्धी सब आपत्तियोंकी मीमांसा करके और अपनी भित्तिभूमिको सर्वांशमें दृढ़ करनेके पश्चात् वह प्रचारक्षेत्रमें उतरे थे हमने यह कथा आदि ब्रह्मसमाजके अन्यतम उपाचार्य्य श्रीयुत हेमचन्द चक्रवर्ती महाशयसे सुनी है। जब वह कानपुरमें गङ्गा तट पर स्वामीजीके साथ वास करते थे, तब स्वामीजीने एक दिन प्रातःकाल मुखप्रक्षालनके समय बातों २ में उनसे यह कथा कही थी।

महाभारतवर्णित द्रुपद राजाकी राजधानी करके प्रसिद्ध है और वह फर्रुखाबाद नगरसे प्रायः १५ कोस पश्चिमकी ओर भागीरथी के तटपर बसता है। वहाँ कमलापति नामक एक व्यक्तिके गङ्गा-तीरस्थित उद्यानमें वह रहने लगे। पण्डिप ज्वालादत्त❀ ने पहिले ही पहल कम्पिल नगरमें ही स्वामीजीके दर्शन किये थे। ज्वाला-दत्त कहते थे कि 'स्वामीजीके परिधानमें उस समय एक लङ्गोटके भिन्न और कुछ भी नहीं था। विशेषतः उनके देहसे उस समय एक प्रकारकी अपूर्व दीप्ति निकलती थी। वह कम्पिलनगरमें ब्राह्मणके हाथका भोजन करते थे और शीत ऋतु होनेपर भी रात्रि-कालमें खुले मैदानमें कण्ठसे मस्तक पर्यन्त केवल मुखभाग बाहर निकाल कर अपने ऊपर पुराल डाल कर सोते थे।' ज्वालादत्त वहां स्वामीजीसे सन्ध्या तर्पण सीखते थे। वहांके अनेक ब्राह्मण पण्डितोंने उनके प्रभाव वा उपदेशके अनुसार प्रतिदिन सहस्रवार गायत्री जाप करनेकी प्रतिज्ञाकी थी। उनमेंसे अनेक उस प्रतिज्ञा का पालन भी करते थे; किन्तु उनके उपदेशको सुनकर वहांके किसीब्राह्मण वा किसी पण्डितने मूर्तिपूजाका परित्याग किया था वा उसमें श्रद्धाहीन हो गये थे, इस विषयमें कुछ सुननेमें नहीं आया। अस्तु। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत करके वह कम्पिल नगरसे फर्रुखाबादके समीपस्थ क़ायमगंज नामक स्थानमें आये।

❀ इनकी कथा इससे पहिले एक वार लिखी जा चुकी है। (यह अजमेरनगरमें दयानन्द स्थापित वैदिकयंत्रालयके ग्रन्थ-संशोधक के कार्य्यमें नियुक्त था।) फर्रुखाबादमें दयानन्दकी वैदिकपाठशालाके स्थापित होने पर यह और दो विद्यार्थियोंके साथ उस पाठशालामें सबसे पहिले प्रविष्ट हुए थे। विशेषतः उन्होंने स्वामीजीके संस्कृत-हिंदीपत्रलेखन और वेदभाष्यके अनु-वादकार्य्यमें नियोजित रहकर अनेक स्थानमें भ्रमण किया था। (उक्त पण्डितजीका अब स्वर्गवास हो गया है—अनुवादक।)

'दयानन्ददिग्विजय' के प्रणेता पं० गोपालरावहरिके साथ कायमगञ्जमें स्वामीजी का साक्षात् हुआ। इस विषय में गोपालरावने कहा है कि "मैंने वहां एकदिन शीतऋतुमें सन्ध्या समय गङ्गातीरस्थ एक उद्यानमें जाकर देखा कि एक संन्यासी कुछ लकड़ी जलाकर बैठे हुए हैं।" उन्होंने संन्यासीके साथ अनेक विषयमें वार्त्तालाप किया। विशेषतः मूर्तिपूजाके सम्बन्धमें आलोचना करने से उन्हें विदित हुआ कि यह वही आत्मानन्दकथित दिग्विजयी संन्यासी हैं *। अस्तु! दयानन्द उसके पश्चात् क़ायमगञ्ज से फर्रुखाबाद आये।

फर्रुखाबादमें आकर दयानन्द एक स्थानमें ठहरे जो गङ्गातटके समीप था। उनके आनेका संवाद नगरमें प्रायः सब ही जगह फैल गया। इसी हेतु उनके दर्शन करने और उनसे बातचीत करनेके अभिप्रायसे प्रतिदिन सैंकड़ों मनुष्य आने लगे। लाला-पन्नालाल नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति उनके पास प्रतिदिन आते थे। पन्नालाल फर्रुखाबादके प्रसिद्ध रईस लाला दुर्गाप्रसादके चचा थे। दयानन्दको दिनमें बहुतसे लोग घेरे रहते थे, इसलिये मनके नाना संशय वा हृदयकी गूढकथाओं का उन से प्रकाशित करना पन्नालालके पक्षमें सुविधाजनक नहीं होता था। इस कारण पन्नालाल प्रतिदिन रात्रिको दो पहर तक स्वामीजीके पास जाकर

---

* पं० गोपालराव हरिने ग्रन्थकारसे कहा था कि कायमगंजमें दयानन्द के साथ साक्षात् होने से पहिले आत्मानन्द स्वामी नामक हरिद्वारसे लौटकर आये हुए एकसंन्यासीके साथ इमरतपुर में उनकी भेट और मूर्तिपूजा विषयमें बातचीत हुई थी। वहां आत्मानन्दने गोपालरावसे कहा कि "हमारे पीछे एक ऐसे दिग्विजयी संन्यासी आते हैं जिनका जगत्में प्रधान कार्य्य मूर्तिपूजा-खण्डन ही है।"

मुक्तहृदयसे बातचीत किया करते थे। दयानन्द उस समय संस्कृत बोलते थे यद्यपि उनकी संस्कृत अतिशय सरल और सुबोध होती थी, तथापि उससे मुक्तभावसे जी खोलकर बातचीत करनेमें पन्नालालको बाधा पड़ती थी पन्नालाल स्वाभवसे धर्म्मान्वेपी और उनके साथ वार्तालाप करनेके नितान्त प्रार्थी हैं—यह जानकर दयानन्द उन के साथ हिन्दी भाषामें बातचीत करनेकी चेष्टा करने लगे। फलतः दयानन्दके साथ वार्त्तालाप करके और उनसे उपदिष्ट होकर पन्नालाल की तृप्ति होगई और कुछ दिन पीछे वह उनके अनुरक्त व्यक्तियोंमें परिगणित होने लगे।

इस ओर मूर्तिपूजा पर तीव्र आक्रमण करने के कारण फर्रुखाबादके बहुतसे मनुष्य दयानन्दके घोर विरोधी होगये। यहां तक कि उनको मारकर निकाल देने के लिये जगह २ मंत्रणा होने लगी एक दुष्ट स्वभाव वैरागी गङ्गापुत्रों ❀ को घोषणा की कि दयानन्द गङ्गाके महातम्यको नष्ट करते हैं और हिन्दुओंमें प्रचार करने लगा कि दयानन्द देवमूर्तिसमूहके देवत्व और महिमाको विलुप्त करते हैं। इस कारण अपनी आजीविकाकी आशङ्कासे एक ओर गङ्गापुत्र और दूसरी ओर हिन्दूसम्प्रदायके अशिक्षित व्यक्तिगण उत्तेजित और उष्णशोणित होकर दयानन्दका अपमान करनेके निमित्त अग्रसर हुए किंतु अपमान वा प्रहार करना तो दूर रहा, वे लोग उनका देहस्पर्श भी न कर सके और भग्नोद्यम होकर लौट गये। यह कहा जाता है कि फर्रुखाबाद नगरमें दयानन्दने मूर्त्तिपूजाके प्रतिकूल ऐसा प्रबल आन्दोलन उत्थापित किया था और वह उत्थापित आन्दोलन ऐसा शीघ्र फलप्रद हुआ था कि कितने ही सरलकृति और सत्यानुरागी ब्राह्मण उनके

❀ ये लोग गङ्गातीर पर रह कर गङ्गास्नानार्थी व्यक्तियोंका श्राद्ध तर्पणादिकार्यमें साहाय्य करते हैं और उसके द्वारा अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। इसी कारण उनका नाम गङ्गापुत्र है।

उपदेशके श्रवणमात्रसे ही अपने मन्दिरोंसे मूर्त्तिसमूहको फेंककर निश्चिन्त हो गये थे ❀। इस प्रकारकी घटनाको हम सर्वथा अमूलक नहीं कह सकते, क्योंकि स्वामीजीकी विचारशक्ति ऐसी ही हृदयस्पर्शिनी थी और उनकी व्याख्या और वक्तृता समय २ पर श्रोतृवृन्दको ऐसी हृदयोन्मोदिनी होती थी कि अनेक लोग उनकी वक्तृताको सुनकर ही उनके प्रदर्शित पथका अनुसरण करने लगते थे अथवा करनेके लिये उत्सुक हो जाते थे। तब ऐसी घटना यदि प्रथम वार ही न हुई हो, तो उसका वारान्तरमें होना सम्भव है, क्योंकि वह फर्रुखाबाद एकसे अधिक वार आये और समय २ पर एक माससे भी अधिककाल तक वहाँ रहे। फल कथा, फर्रुखाबादके निवासियोंने दयानन्दपर बारंबार अत्याचार करनेका प्रयास किया था—यह विलक्षण रूपसे विदित होता है। एक वार वहाँके एक समृद्धिसम्पन्न वैश्य मूर्तिपूजाकी विधेयता प्रतिपादित करनेके अभिप्रायसे बहुत धन व्यय करके काशीस्थ पण्डितोंसे एक व्यवस्थापत्र लाये थे, और इसका तो कहना ही क्या है कि वह व्यवस्थापत्र प्रतिमापूजाका प्रतिपादक था। इसके पश्चात् गाजे बाजेके साथ और तीन चार सहस्र

❀ The Christian Intelligencer of March 1870, qouted in The Triumph of Truth, page 31.

आर्यसिद्धान्तके सम्पादक पं० भीमसेन शर्माने कहा था कि फर्रुखाबादमें जिस समय स्वामीजीको उत्पीड़ित करनेके लिये लोग नाना प्रकारकी चेष्टा कर रहे थे, तब कई एक दुष्टप्रकृति व्यक्तियोंने एक शिव मूर्तिको स्वयं ही उखाड़कर और गङ्गाजलमें फेंक कर सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध कर दिया कि यह कार्य दयानन्दने ही किया है। इस पर उत्पीडन करने वालोंका आक्रोश और भी बढ़ गया।

मनुष्योंको लेकर बड़े समारोहसे वही वैश्य दयानन्द रूप दुर्दान्त अरिके दलन करनेके लिये उनके पास उपस्थित हुए थे, और एक बार डाकविभागका एक कर्मचारी सुरापानसे उन्मत्त होकर गाड़ी पर चढ़कर बहुतसे लठैतोंके साथ दयानन्दके लिये आया था; परन्तु आश्चर्यका विषय है कि विपक्षी लोगोंकी किसी वारकी कोई चेष्टा भी सार्थक नहीं हो सकी। अस्तु। फर्रुखाबादके अधिकतर लोगोंके दयानन्दसे ऐसे विरक्त और विरुद्धाचरणमें प्रवृत्त हो जाने पर भी पूर्वोल्लिखित पन्नालाल प्रभृति कतिपय व्यक्तियोंकी श्रद्धा और भक्ति तनिक भी तिरोहित नहीं हुई; प्रत्युत दिन प्रतिदिन वर्धित होने लगी।

दयानन्दने फर्रुखाबादमें एक वैदिकपाठशाला स्थापन करनेका प्रस्ताव किया। उन्होंने वैदिक पाठशाला स्थापन करनेकी आवश्यकता इससे पहिले ही उत्तम रूपसे समझ ली थी। उन्होंने यह अवगत कर लिया था कि आर्यजातिके शास्त्रभण्डारमें जो महामूल्य रत्न विद्यमान हैं उनका निर्वाचन होना आवश्यक है, क्योंकि उन संचित रत्नोंके साथ रत्नोंके नामसे अनेक कांचके टुकड़े भी मिश्रित हो गये हैं। इसलिये काँचके टुकड़ोंके साथ रत्नोंकी स्वतन्त्रताका साधन-आर्षग्रन्थोंसे अनार्षग्रन्थोंके पार्थक्यका प्रतिपादन उन्होंने परमकर्त्तव्य निश्चय कर लिया था। इस शास्त्रनिर्वाचनके कार्यमें सच्चे शास्त्रियोंका होना आवश्यक था। भारतभूमिके नाना स्थानोंमें शास्त्रोंके अध्ययन-अध्यापनके होने पर भी और समावेत्र वा सामाजिक अनुष्ठानविशेषमें अनेक देशीयशास्त्रि-समूह के समावेश होने पर भी यह देश यथार्थमें शास्त्रिशून्य हो गया था। वस्तुतः भारतवर्षमें शास्त्रनिर्वाचक शास्त्रियोंका नितान्त ही अभाव है। इस अभावके निवारण करने के लिये ही दयानन्दका वैदिकपाठशाला विषयक सङ्कल्प था। और भी एक बात थी कि इदानीन्तन पण्डितगण केवल शास्त्र-

निर्वाचनमें ही अपटु नहीं हैं, किन्तु सत्यनिष्ठा सम्बन्धमें भी वे इस समय बहुत दूर चले गये हैं, क्योंकि पंडितगण शास्त्रीय प्रसंगमें पराजित होने पर भी सत्य के अनुरोधसे अपने पराजयको स्वीकार नहीं करते। इन सब कारणोंसे इस विषयमें एक सत्यनिष्ठ शास्त्रि-दलकी सृष्टिके अभिप्रायसे दयानन्द वेदविद्यालयकी प्रतिष्ठाके लिये उत्सुक हुए थे। प्रस्तावित विद्यालयके उद्देश्य और आवश्यकताके विषयमें दयानन्दने पन्नालाल प्रभृति व्यक्तियोंको उत्तम रूपसे समझा दिया था। उन सबने ही एक वाक्य होकर इस हितकर प्रस्तावका अनुमोदन किया। इसलिये बिना विलम्बके ही स्वामीजीने प्रस्ताव और पन्नालाल प्रभृतियोंके उद्योग और उत्साहसे फर्रुखाबादमें एक वैदिकपाठशाला स्थापित हो गई। पहिले पहल पन्नालालकी वाटिकामें वैदिकपाठशालाका कार्यारम्भ हुआ। पूर्वोल्लिखित पण्डित ज्वालादत्त और दो मनुष्य पाठशालामें विद्यार्थी रूपसे सबसे पहिले प्रविष्ट हुए। उसने पाणिनि ही प्रथम पाठ्यपुस्तक रूपसे अवलम्बित और आध्यापित होने लगी। इसके पश्चात् दयानन्द ने कासगंज, जलेसर और मिरज़ापुर प्रभृति स्थानोंमें भी एक २ वैदिकपाठशाला स्थापितकी। अस्तु। फर्रुखाबादमें वैदिकपाठशाला स्थापित करनेके पश्चात् वह थोड़े दिनोंके लिये और स्थानोंको चले गये।

दयानन्द फर्रुखाबादसे सम्भवतः रामगढ़ आये। उनके लिखे हुए आत्मचरितके पढ़नेसे विदित होता है कि इससे पहिले भी वह रामगढ़ आये थे। रामगढ़ में मूर्त्तिपूजाका प्रतिवाद किया और उसके साथ वैदिकधर्म्मकी युक्तियुक्तताके प्रतिपादनमें भी प्रवृत्त हुए। यह देखकर वहांके कई पण्डित विचारार्थी होकर उनके पास आये। आये हुए पण्डितोंके साथ दयानन्द विचारमें प्रवृत्त हुए। पण्डितगण विचारपद्धतिसे अनभिज्ञ होनेके कारण अथवा असदिच्छासे परिचालित होकर सब ही एक साथ और

एक ही समयमें अपनी २ इच्छाके अनुसार प्रश्न पूछने लगे। इसलिये उनका विचारकार्य क्रमशः विशृङ्खलामय होगया। दयानन्दन ऐसे अनियमित वा अयथा परिचालित विचारव्यापारका कोलाहल नाम रक्खा। वस्तुतः ऐसा विचार कोलाहल शब्दसे अभिहित होनेके सर्वथा उपयुक्त था। किन्तु आश्चर्य है कि वे कोलाहलप्रवृत्त पण्डितगण अपने असङ्गत वा अपण्डितोचित आचरणसे तनिक भी दुःखित न होकर उलटा स्वामीजीको ही 'कोलाहलस्वामी' नामसे पुकार कर उपहास करने लगे। इसमे भी अधिक रामगढ़में दयानन्दके प्राणवधका भी उद्योग हुआ। चित्रणगढ़से दश दानवप्रकृति मनुष्य आकर उनके प्राणहननकी चेष्टा करने लगे। उन दानवोंके साथ कोलाहलप्रिय पण्डितवर्गका किसी प्रकारका सम्बन्ध वा षडयन्त्र था वा नहीं—यह नहीं कहा जा सकता। यदि हो तो असम्भव भी नहीं है। परन्तु उन दुर्वृत्तियोंका दुष्टाभिप्राय कार्यमें परिणत नहीं हो सका, क्योंकि दयानन्दने उनके दुष्टाभिसन्धिके विषयको पहिलेसे ही जान लिया था, और उसे जानकर विशेषरूपसे कौशलका अवलम्बन करके उनके आक्रमणसे प्राणरक्षा करके फर्रुखाबाद चले आये।

इस यात्रामें उन्होंने व्याख्यान या विचारादि विषयमें कोई कार्य नहीं किया। जितने दिन फ़र्रुखाबाद रहे उतने ही दिन वैदिक पाठशालाके निरीक्षण और प्रबन्धकार्यमें लगे रहे। इस स्थलमें यह कह देना आवश्यक है कि उनकी अविद्यमानतामें वैदिकपाठशालामें विशृङ्खला उपस्थित हो गई थी। विशृङ्खलाका मूल क्या था—यह विदित नहीं हुआ। पाठशालाके एक छात्रके साथ एक उद्यानरक्षकके विवादके कारण ही यह विशृङ्खला उपस्थित हुई थी—ऐसा अनेकोंसे सुननेमें आया है। ऐसी विशृङ्खला के संघठित होनेसे और विशेषतः उद्यानके स्वामी पन्नालालके उस विवादजनित विशृङ्खलाके निवारणमें किसी प्रकारका प्रति-विधान

करनेकी इच्छा न करने पर दयानन्दने पाठशालाको दूसरे स्थान में ले जाना ही युक्तियुक्त विचारा। अन्तमें जिसमें जिस गङ्गा-तीरवर्ती स्थानमें वह स्वयं रहते थे पाठशालाको स्थानपरिवर्तनके साथ-साथ उसके पोषण और रक्षणकी व्यवस्था भी कुछ अंशमें परिवर्तित हो गई। निर्भयराम नामक एक सदाशय वैश्यने विद्यार्थियोंके भोजनका भार ग्रहण कर लिया और लाला जगन्नाथप्रसाद नामक एक उदारचित्त व्यक्तिने अध्यापकोंके वेतनका व्यय अपने ऊपर ले लिया ❋ इस प्रकार वैदिकपाठशालाको सुप्रतिष्ठित और सुचारु रूपसे व्यवस्थित करके दयानन्द फर्रुखाबादसे कानपुर चले गये। तदन्तर कानपुरसे प्रयागमें उपस्थित हुए।

प्रयागमें महादेवप्रसाद नामक एक सरल चित्त व्यक्तिने आर्यधर्मके श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करनेके लिये एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। विज्ञापनमें प्रतिपादनका समय केवल तीन मास नियत किया था। इसके अतिरिक्त उसमें यह बात भी लिखी थी कि प्रतिपादन न कर सकने पर वह क्रिश्चियन धर्म ग्रहण कर लेंगे। प्रयागवासी पण्डितगण निर्दिष्ट समयके भीतर निर्दिष्ट विषयका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हुए थे—ऐसा बोध नहीं होता। पण्डितगणने उस विषयमें यथोचित प्रयत्न किया था—

❋ पहिले पं० ब्रजकिशोर फिर मथुरावासी पूर्वोक्त पं० युगलकिशोर प्रभृति इस पाठशालाके अध्यापकपद पर नियुक्त हुए। किम्बहुना, स्वयं दयानन्द भी कुछ दिन इस पाठशालामें अध्यापनके कार्य्यमें प्रवृत्त हुए थे। पण्डित ज्वालादत्तके समान पण्डितवर भीमसेन भी कुछ दिनके पश्चात् इस पाठशालामें प्रवृष्ट हुए थे। फलतः विद्यार्थिसंख्यामें फर्रुखाबादकी पाठशाला एक समय उन्नत हो गई थी।

यह कहना बाहुल्यमात्र है। परन्तु उनके ऐसा करने पर भी उनकी चेष्टा वा मीमांसासे महादेवप्रसाद सन्तुष्ट नहीं हो सके। ऐसे समयमें आर्यधर्मके अद्वितीय प्रवक्ता दयानन्द सरस्वतीके साथ प्रयागमें महादेवप्रसादका साक्षात् हुआ। दयानन्दने उनको अनुसन्धित्सु देखकर और उनके मनोभावको जानकर उनके समक्ष अनायाससे ही प्रतिपादित कर दिया कि आर्यधर्मही प्रकृत और सर्वतोभावेन युक्तिसङ्गत धर्म है। सुतरां तब महादेवप्रसाद-को क्रिश्चियनधर्मावलम्बन विषयसे प्रतिनिवृत्त होना पड़ा। महा-देवप्रसादको विधर्मके अवलम्बनसे हटानेसे दयानन्दका नाम और महिमा प्रयागमें सर्वत्र ही फैल गये। किन्तु प्रयागमें भी उनके प्राणहरणके लिये कतिपय दुर्वृत्त व्यक्ति प्रेरित हुए थे। इस वार महादेवप्रसादकी चेष्टासे ही उनके प्राणोंकी रक्षा हुई। अस्तु। हमें अनुमान होता है कि उनके प्राणविनाशके लिये इस प्रकारके वारंवार उद्योगके पीछे कोई निर्दिष्ट परिचालना थी। इसीसे ऐसा होना सम्भव है कि कई दुर्बुद्धिपरिचालित नीचमना लोग दयानन्दके निहत करनेके अभिप्रायमें मन्त्रणाबद्ध हुए थे। सम्भवतः अतिगुप्त रूपसे उन्होंने घातकोंके एक दलको भी नियुक्त किया था। घातक लोग अत्यन्त अलक्षितभावसे दयानन्द का अनुसरण करते थे और उनके प्राणवधके लिये सर्वदा ही सुयोगकी प्रतीक्षा करते रहते थे। यदि ऐसा नहीं था, तो फिर उनके प्राणहननके लिये एकसे अधिक बार उद्योग क्यों देखनेमें आता है।

———

पञ्चम परिच्छेद ।

काशी-आगमन,—आगमनजनित आन्दोलन,—कर्त्तव्यनिरूपण
विषय में काशीनरेश के साथ पण्डितोंका परामर्श,-
काशीका महाविचार-प्रतिमा और पुराण शब्द
का अर्थनिर्णय,—विशुद्धानन्द स्वामी
और पण्डित बालशास्त्री प्रभृतिका प्रश्न
विचार विशृंखला-विचार विषय
पर भिन्न २ सम्मतियां - काशी
में वेदविद्यालय स्थापन
करने का प्रस्ताव ।

दयानन्द प्रयागसे काशी आये। भारतीयधर्मके इतिहासमें काशीका नाम चिरकीर्त्तित हो गया है। भारतीय धर्मप्रवक्ताओंके पदार्पणसे काशीभूमि पवित्रभूमि नामसे प्रसिद्ध हो गई है, और भारतवर्षीय भिन्न २ सम्प्रदायोंके आविर्भाव और आन्दोलनसे काशीक्षेत्रने एक प्रकारसे धर्म्मक्षेत्रकी ख्याति लाभकी है। आर्य-जातिके सनातन ब्रह्मवादके साथ काशीका सम्बन्ध भी अति-सामान्य नहीं है इससे भी अधिक उसके विकाश और विस्तृतिके पक्षमें ब्रह्मावर्त्तके पश्चात् वाराणसीका नाम उल्लिखित होना उप-युक्त है। वेदव्यासने जिस स्थानमें ब्रह्मसूत्रोंकी व्याख्या की, शङ्कर स्वामी जिस स्थानमें शारीरिकभाष्यके प्रणयनमें प्रवृत्त हुए, और जिस स्थानमें इस उन्नीसवीं शताब्दिमें एक दिगम्बर संन्यासी वैदिक धर्मकी विजयपताका कन्धे पर लेकर आये, वह

स्थान पवित्र ब्रह्मवादके पवित्र इतिहासमें प्रसिद्धि लाभ क्यों नहीं करेगा। सारांश यह कि जो स्थान शास्त्र-वैभव और शास्त्र गौरव में भारतभूमिके भीतर अद्वितीय कह कर प्रसिद्ध है, दयानन्द उसी स्थानमें सत्य शास्त्रके विचारके निमित्त उपस्थित हुए। जिस स्थानमें सैकड़ों देव-मन्दिर मस्तिकोत्तोलन करके मूर्तिपूजाकी महिमा विघोषित करते हैं, जिस स्थानमें बहुतसे देवताओंकी उपासनाके बहुत प्रकारके आडम्बर और आयोजनके निमित्त लोग अस्थिर हुए २ फिरते हैं, और जिस स्थानमें, पथमें, घाटमें, मठमें और क्षेत्रमें सैकड़ों देवमूर्त्ति पड़ी हुई सर्वतोभावेन मूर्त्ति-माहात्म्यको ही प्रचारित करती हैं, दयानन्द उसी स्थान में मूर्त्ति-पूजाका मिथ्यात्व प्रतिपादन करनेके अभिप्रायसे निर्भयताके साथ प्रविष्ट हुए। जो दुर्ग अब तक अभेद्य वा अनधिकृत था, दयानन्द उस पर अधिकार करने के उद्देश से अदीनसत्ववीरके समान अवतीर्ण हुए। काशीमें दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग नामक एक उद्यान है। काशी में उपस्थित होकर दयानन्द उसी उद्यान में रहने लगे।

दयानन्दके आगमन पर काशीमें आन्दोलन मच गया। एक कोपीनधारी संन्यासी ऋग्वेदादि ग्रन्थोंकी आलोचना करके मूर्त्तिपूजा का मिथ्यात्व प्रतिपादित करते हैं, शाक्तशैवादि सम्प्रदायोंकी असारता प्रतिपादन करते हैं, मालाग्रहण और त्रिपुण्डधारणादि बाह्य अनुष्ठानसमूहको वेदविरुद्ध प्रतिपादन करनेके निमित्त बद्ध-परिकर हुए हैं, और इसी प्रकार और इसी भावसे अपने मतका प्रचार करते २ गङ्गातीरवर्त्ती स्थानोंमें भ्रमण करते हुए अब वाराणसी नगरमें आकर वैदिकधर्म्मकी विजयपताका उत्तोलित की है—यह बात काशीमें सर्वत्र ही शीघ्रताके साथ फैल गई। यह संवाद सुन कर काशीके निवासियोंमें किन्हींने विस्मय प्रकाश किया, कोई विचलित होगये, शास्त्रिगण चिन्ता करने

लगे, धर्मव्यवसायी पण्डे-पुरोहितगण नाना प्रकारसे अशान्ति और आशङ्काकी कथायें उत्थापित करने लगे, और कोई २ व्यक्ति उपेक्षाके साथ उपहास करके बातोंमें उड़ानेकी चेष्टा करने लगे। फलतः इस बातसे काशीके मठों मन्दिरोंमें, सत्रों और साधुओंके निवासोंमें आन्दोलन मच गया। पदस्थ लोगोंकी बैठकों और विश्रामक्षेत्रोंमें इस सम्बन्धमें नाना प्रकारकी आलोचना होने लगी। सारांश यह कि उपस्थित विषयपर वहांके प्राय सब ही लोगोंके हृदयमें एक कौतूहल की शिखा उद्दीपित हो गई। मूर्त्ति-उपासना सचमुच वेदानुमोदित है वा नहीं—यह जाननेके लिये अनेक लोग इच्छुक हुए। यहाँ तक कि कोई २ अनुसन्धित्सु पण्डित वेदग्रन्थ लेकर विचार करने बैठ गए। अन्तमें यह संवाद काशीनरेशके भी कर्णगोचर हुआ।

दयानन्दने वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठाके लिये विज्ञापन प्रचारित किया; मूर्त्तिपूजाके खण्डनके विषयमें काशीस्थ पण्डितमण्डलीके साथ विचारार्थी हुए; अधिक क्या, उन्होंने स्वयं ही पण्डितोंको विचारके लिये आहूत किया। ऐसी दशासे कुछ न बोल कर चुप हो रहना काशीवासियोंके लिये किसी अंश में भी विधेय नहीं था। विशेषतः काशी धाम एक पवित्रधाम करके प्रसिद्ध है। काशी की पवित्रता अथवा काशी की मानमहिमा सब ही विश्वनाथादि देवमूर्त्तियों के ऊपर निर्भर है। यदि दयानन्द सरस्वती वाराणसी की छाती पर बैठ कर देवमूर्त्ति-समूहको मिथ्या प्रमाणित करें, तो एक ओर जैसे देवगण असम्मानित होंगे, वैसे ही दूसरी ओर काशी भी महात्म्यहीन हो जायगी। ऐसी अवस्थामें कुछ न करके निश्चेष्टताका अवलम्बन करना किसी प्रकार भी कर्त्तव्य नहीं था। और भी एक बात थी। काशीके सम्मानसे काशीनरेश सम्मानित हैं। काशीके असम्मानसे काशीनरेश असम्मानित हैं। इसलिये काशीकी

सम्मानरक्षा काशीनरेशको भी आवश्यक हुई। इस सब विषयको धीरभावसे चिन्तन करके काशीराजने पण्डितमण्डलीसे परामर्श की प्रार्थना की; और उसके अनुसार काशीस्थ पण्डितवर्गको निमन्त्रित करके उपस्थित विषयमें कर्त्तव्यनिर्धारणके निमित्त उनके साथ आलोचना करने लगे। अन्तमें दयानन्द सरस्वतीके साथ शास्त्र-विचार करना ही सबकी सम्मतिमें विहित है यह स्थिर हुआ। और यह समाचार अतिशीघ्र ही कर्णगोचर होने लगा कि काशीके पण्डित-पुङ्गवगण दयानन्दके साथ शास्त्रसंग्राम में प्रवृत्त होंगे, उनकी पराभूतिका साधन करके हिन्दुओंके प्रचलित मतविश्वासोंकी प्रतिष्ठा रक्खेंगे और उसके साथ सुधी-शास्त्रिजन-परिषेवित वाराणसीके गौरवकी रक्षाके लिये भी यत्न-पर होंगे। इससे सब आनन्दित हो गये और बड़े कौतूहलक्रान्त चित्तसे शास्त्रार्थके दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

अन्तमें शास्त्रार्थका दिन निर्धारित हो गया। सन् १८६९ ईस्वी की १७ वीं नवम्बरकी तारीख़ तदनुसार संवत् १९२६ कार्तिक शुद्धि १२ मङ्गलवारको दोपहरके तीन बजे इतिहास-कीर्त्तित वाराणसी नगरमें, भागीरथीके पुण्यसलिलसे प्रक्षालित पवित्र क्षेत्रमें, हिन्दुओंके सर्वप्रधान तीर्थस्थानमें पुराणकल्पित ३३ करोड़ देवताओंकी सम्मिलन-भूमिमें और महादेवके त्रिशूल-संरक्षित काशीधाममें, मूर्त्तिपूजा समर्थनके निमित्त महासभाका अधिवेशन हुआ। महासभामें महाराज काशीनरेश ने सभापति का पद ग्रहण किया। वह अपने सभापण्डित ताराचरण तर्करत्न और पण्डितवर विशुद्धानन्द स्वामी और बालशास्त्री प्रभृति अति-रथ-महारथोंके साथ बड़े समारोहसे नियत समयपर आनन्दबाग नामक उद्यानमें उपस्थित हुए। काशीकी नाना श्रेणियोंके सैकड़ों लोगोंने उनका अनुगमन किया। आनन्दबागकी ओर जनस्रोत प्रवाहित होने लगा। देखते २ आनन्दबाग जनकल्लोसे कल्लोलित

हो गया। उस महती सभाके भीतर दयानन्दका पक्षसमर्थक दूसरा व्यक्ति कोई भी नहीं था। सुतरां वह सभामण्डलके बीचमें करियूथपरिवेष्टित केशरी के समान अकेले ही आ डटे। शास्त्रार्थ का समय आनेपर दयानन्दने काशीनरेशसे जिज्ञासा की, "क्या पण्डितगण वेदग्रन्थ लाये हैं ?" काशीननेशने कहा, "वेदग्रन्थ लानेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समस्त वेद पण्डितोंके कण्ठस्थ हैं।" यह सुनकर दयानन्द बोले, 'ग्रन्थ न होनेसे पूर्वापर का मिलान रख कर विचार नहीं हो सकेगा। अस्तु। अब विचारका विषय क्या है ?" उसके उत्तरमें उपस्थित पण्डितगण बोले, आप मूर्त्तिपूजाका खण्डन करेंगे और हम उसका समर्थन करेंगे।' यह सुनकर दयानन्दने कहा, "तो आपमें जो पण्डित श्रेष्ठ हों, वही अग्रवर्त्ती हों।" इसपर रघुनाथप्रसाद कोतवाल नामक एक व्यक्ति बोले, "पण्डित श्रेष्ठ कोई हों वा न हों, आपके साथ एक समयमें एक वा दो पण्डित विचार करेंगे।" तब पूर्वोक्त पण्डित ताराचरण अग्रवर्ती हुए। दयानन्दने उनसे पूछा, "आप वेदोंको प्रमाण मानते हैं या नहीं ?"

तारा०—वर्णाश्रमीमात्र ही वेदोंका प्रमाण ग्राह्य करते हैं।

दया०—तो पाषाणादिमूर्त्तिपूजाके विषयमें यदि कोई वैदिक प्रमाण हो तो बोलिये।

तारा०—जो व्यक्ति वेदभिन्न अन्य प्रमाण नहीं मानना चाहे, उनसे क्या कहें ?

दया०—वेदभिन्न अन्य पुस्तकोंकी कथा पर पीछे विचार किया जायगा। किन्तु वेदोंका ही विचार मुख्य है, वेदोक्त धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है, इसलिए वेदोंकी ही आलोचना करनी प्रथम उचित है। मनुस्मृति प्रभृति वेदमूलक ग्रन्थ भी प्रामाणिक रूपसे ग्रहण किये जा सकते हैं। ऐसा कहनेसे वेदविरुद्ध वा वेद-अप्रसिद्ध कोई ग्रन्थ भी गण्य नहीं हो सकता।

तारा०—मनुस्मृति किस प्रकारसे वेदमूलक है ?

दया०—सामवेदीय ब्राह्मणमें कथित है कि जो कुछ मनुने कहा है वह औषधका भी औषध है ❀।

इसका कुछ उत्तर न दे सकने पर पण्डित ताराचरण चुप हो गये तब विशुद्धानन्द स्वामीने एक व्याससूत्र बोलकर प्रश्न किया कि वेदमें इसका कोई मूल है वा नहीं।

दया०—यह भिन्न प्रकरणकी बात है, इसलिये अब इसका विचार अनावश्यक है।

विशुद्धा०—आप यदि इसे जानते हैं तो अवश्य कहिये।

दयानन्द—यदि कोई विषय किसीके कण्ठस्थ न हो, तो वह पुस्तक देखकर आगे चल सकता है।

विशुद्ध०—यदि कण्ठस्थ नहीं है, तो काशीमें शास्त्रार्थके लिये आपके आनेका क्या प्रयोजन था ?

दया०—क्या सब विषय आपके कण्ठस्थ हैं ?

विशुद्ध०—हां हैं।

दया०—तो धर्मका स्वरूप क्या है, बोलिये देखें ?

विशुद्ध०—वेदप्रतिपाद्य फलके सहित जो अर्थ है उसका ही नाम धर्म है।

दया०—यह तो आपका स्वरचित्त संस्कृत है, इसलिये यह प्रमाणके योग्य नहीं है। इस विषयमें यदि कोई श्रुति वा स्मृतिका प्रमाण जानते हो तो कहिये।

विशुद्धा०—जो चोदना लक्षण युक्त हो वही धर्म है। यह जैमिनिका सूत्र है।

दया०—आपसे मैंने श्रुति-स्मृतिका प्रमाण दिखानेको कहा था। वह न दिखाकर सूत्रका प्रमाण क्यों दिखाते हैं ? क्या इसे

❀ यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः।

ही कण्ठस्थ विद्या कहते हैं ? और चोदना शब्दका अर्थ तो प्रेरण है। इसका भी श्रुति-स्मृतिका प्रमाण दिखाना होगा।

इसके उत्तरमें विशुद्धानन्द ने कोई बात न कही। दयानन्द पूछा, अच्छा आप तो धर्मका स्वरूप नहीं बतला सके, अब देखें धर्मके लक्षण क्या हैं यही कहिये।"

विशु०—धर्मका एक ही लक्षण है।

दया०—वह क्या है ?

इसके उत्तरमें विशुद्धानन्द कुछ न बोले। तब दयानन्दने मनु स्मृतिके अनुसार धर्मके दश लक्षण * बतला कर कहा, "धर्मके यही तो दश लक्षण हैं। तब फिर आप यह कैसे कहते हैं कि धर्म का एक ही लक्षण है ?"

इस समय पण्डित बालशास्त्रीने अग्रसर होकर कहा, समस्त धर्मशास्त्र हमारे कण्ठस्थ हैं। जो इच्छा हो आप पूछ सकते हैं।

दया०—आप अधर्मके क्या लक्षण हैं यही कहिये।

इसके उत्तरमें बालशास्त्री कुछ भी नहीं कह सके।

तब यह देख कर कि एक २ व्यक्तिका प्रश्न करना सुविधा जनक नहीं है, पण्डितगण ने कोलाहलपूर्वक प्रश्न किया, "वेदमें प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?"

दया०—है।

पण्डितगण—वेदके किस स्थलमें है ?

सामवेदीय ब्राह्मणके एक स्थलमें है ?

पण्डितगण—यदि वेदमें प्रतिमा शब्द है, तो आप उसका खण्डन क्यों करते हैं ?

दया०—उस प्रतिमा शब्दके अर्थ पाषाणादि मूर्त्तिपूजा के नहीं है।

---

* धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥मनुः ६।९२।

यह कह कर उन्होंने सामवेदीय ब्राह्मणान्तर्गत अद्भुतशांति-प्रकरणके जिस अंशमें प्रतिमा शब्द है उस अंशके अर्थ परिष्कृत रूपसे समझाकर प्रतिपादित किया कि वेदोक्त प्रतिमा शब्द मूर्त्ति-पूजा का प्रतिपादक नहीं है तब पण्डितगण निरुत्तर हो गये। उसके पश्चात् विशुद्धानन्द स्वामी ने प्रश्न किया, "वेद किससे उत्पन्न हुआ है ?"

दया०—वेद ईश्वरसे उत्पन्न हुआ है।

विशुद्धा०—किस ईश्वर से—न्यायशास्त्रप्रसिद्ध ईश्वरसे, वा योगशास्त्रप्रसिद्ध ईश्वर से, अथवा वेदान्तशास्त्रसिद्ध ईश्वर से वेद उत्पन्न हुआ है ?

दया०—तब क्या आप ईश्वरको बहुसंख्यक कहना चाहते है

विशु०—ना ईश्वर तो एक ही है। तब किस लक्षणाक्रान्त ईश्वरसे उत्पन्न हुआ है—हम यही जानना चाहते हैं।

दया०—सच्चिदानन्द लक्षणाक्रान्त ईश्वरसे वेद उत्पन्न हुआ है

विशु०—ईश्वर का वेद के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है' वह प्रतिपाद्य-प्रतिपादकके समान है, जन्य-जनक, स्व-स्वामिभाव तादात्म्यभाव अथवा समवाय सम्बन्धके समान है ?

दया०—ईश्वरके साथ वेदका कार्यकारणभाव सम्बन्ध है।

विशु०—जैसे सूर्यमें वा मनमें ब्रह्मबुद्धि पूर्वक उपासना की व्यवस्था है, ऐसे ही शालिग्राममें ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करन भी तो उचित हैं।

दया०—सूर्य में वा मनमें ब्रह्मबुद्धि करके उपासना करने विषय में वेदमें प्रमाण * देखा जाता है, जैसे "मनो ब्रह्मेत्यु

---

* दयानन्द वास्तवमें वेदके ब्राह्मणभागको वेद नहीं मान थे। उनके मतमें संहिता भाग ही यथार्थ वेद थे। सुतरां सूर्य वा मनमें ब्रह्मबुद्धिकी कथा वेदकी कथा नहीं है, केवल ब्राह्म की कथा है।

पासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत।" किन्तु पाषाणादिके विषयमें वेदमें कोई प्रमाण नहीं है, इसलिये वह विधेय नहीं हो सकती।

इस समय पर माधवाचार्य नामक एक पण्डितने सहसा एक मन्त्रको पढ़कर उसमें आये हुए, 'पूर्त' शब्दके अर्थ पूछे।

दया०—पूर्त शब्दके अर्थोंसे वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण होता है।

माध०—पूर्त शब्दसे पाषाणादि मूर्त्तिपूजा क्यों नहीं समझते?

दयानन्द पूर्तशब्द पूर्तिवाचक है, इसलिये उसके द्वारा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा नहीं समझी जाती। यदि संशय हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देख लीजिये।

माध०—वेदमें पुराणशब्द है वा नहीं?

दया०—वेदके बहुतसे स्थलोंमें पुराण शब्द है, किन्तु वह ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराणका वाचक नहीं है, क्योंकि वह भूतकालवाची है और विशेषण रूपसे व्यवहृत हुआ है।

तब विशुद्धानन्द ने माधवाचार्यका पक्ष अवलम्बन करके बृहदारण्यक उपनिषद्का यह मन्त्र उद्धृत किया, "नेतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति" और प्रश्न किया कि इसमें आया हुआ पुराण शब्द किसका विशेषण है।

दया०—इस विषयका ग्रन्थ लाने पर विचार करके कह सकता हूँ।

तब पूर्वोल्लिखित माधवाचार्य वेदों के दो पत्र निकाल कर बोले, "इस स्थलमें पुराण शब्द विशेषण है?"

दया०—इस स्थलका पाठ क्या है? पढ़िये।

माध०—पाठ यही है, 'ब्राह्मणानीतिहासान पुराणानीति'

दया०—इस स्थलका पुराण शब्द ब्राह्मणका विशेषण है अर्थात् पुराण नामक ब्राह्मण।

इसके उत्तरमें बालशास्त्री अग्रसर होकर बोले, "तो क्या कोई नवीन ब्राह्मण है ?"

दया०—कोई नवीन ब्राह्मण नहीं। स्यात् किसीको कभी यह सन्देह हो कि ब्राह्मण नवीन है, इसीलिये इस स्थलमें पुराणशब्द विशेषण रूपसे व्यवहृत हुआ है।

इसके उत्तरमें विशुद्धानन्द स्वामी बोले, "यदि ऐसा है, तो इतिहास शब्दका परवर्ती होकर पुराण शब्द किस प्रकारसे विशेषण हो गया ?"

दया०—ऐसा हो सकता है जैसे "अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।" जैसे इस स्थलमें पुराण शब्द दूर होनेपर भी देही का विशेषण है और दूरस्थ होनेसे कोई शब्द विशेषण नहीं हो सकता—ऐसा कोई नियम व्याकरण में दृष्ट नहीं पड़ता।

विशुद्धा०—इस स्थलमें पुराण शब्द जब इतिहासका विशेषण न होकर ब्राह्मणका ही विशेषण होगया, तब इतिहासको नवीन कहकर ही ग्रहण करना होगा।

दया०—नहीं, ऐसा नहीं है, क्योंकि स्थलान्तरमें पुराण शब्द इतिहासका भी विशेषण दृष्ट होता है, जैसे "इतिहासः पुराणं पञ्चमो वेदानां वेदः" इत्यादि।

इसके पश्चात् माधवाचार्यने पुनर्वार वेदके दो पत्र सबके सामने रखकर कहा, "इसमें लिखा हुआ है कि यजमान यज्ञकी समाप्ति पर दशवें दिन पुराणका पाठ श्रवण करे। अब मैं यह पूछता हूँ कि इस स्थलका पुराण शब्द किसके विशेषण रूपसे व्यवहृत हुआ है ?"

दया०—आप पत्रके इस अंशका पाठ कीजिये। तब देखा जायगा कि वह विशेष्य है वा विशेषण।

तब विशुद्धानन्दने उसके पाठ करनेके लिये स्वामीजीको ही अनुरोध किया। इसके उत्तरमें स्वामीजीने विशुद्धानन्दको पढ़नेके लिये कहा। तब विशुद्धानन्द, यह कहकर कि हम बिना चश्मेके नहीं पढ़ सकते, वेदके दोनों पत्र दयानन्दके हाथमें देकर पाठके लिये अनुरोध करने लगे। इस प्रकारके बारंबार अनुरोधसे बाधित होकर उसको पाठ करनेके अभिप्रायसे वेदके दोनों पत्रों पर दयानन्द दृष्टिपात कर रहे थे कि इतनेमें, अर्थात् पांच सेकिंड भी नहीं बीते थे, विशुद्धानन्द खड़े होकर बोले कि "हमें और प्रतीक्षा करनेका समय नहीं है। हम जाते हैं।" इसके सुनते ही अन्यान्य पण्डितवर्ग भी विशुद्धानन्दके दृष्टान्तका अनुसरण करके खड़े होगये और कोलाहल मचाकर कहने लगे, "दयानन्द पराजित होगये, दयानन्द पराजित होगये।" ❀

इस सम्बन्धमें विचारक्षेत्रमें उपस्थित और दयानन्दसे सुपरिचित एक व्यक्तिने क्रिश्चियनइण्टलिजेन्सर नामक समाचारपत्रमें जो कुछ लिखा है हम उसको यहां उद्धृत करते हैं। उन्होंने

❀ इस विचारमें पुराण शब्दके विषयमें दयानन्दने उसके पश्चात् उत्तर प्रदान किया था। उपर्युक्त पत्रोल्लिखित अंश यह था 'दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेद इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्यादिति।' दयानन्दने इसका अर्थ यह किया था 'पुराणविद्या अर्थात् पुरातन विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्यावेद पुराणविद्या है, क्योंकि वेद ब्रह्मविद्या अर्थात् उपनिषद् समन्वित है और इस मन्त्रके पूर्व प्रकरणमें ऋग्वेदादि वेदचतुष्टयके श्रवणकी कथा है किन्तु उपनिषद् श्रवणकी कथा नहीं है। इसी कारण इस स्थलमें पुराण-विद्यावेद वाक्यसे उपनिषद् ही प्रतिपाद्य है। इसलिये यह पुराण शब्द ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थोंका बोधक न होकर विशेषण रूप से ही व्यवहृत हुआ है।"

लिखा है:—

"The date of his arrival in Benares I do not know. It must have been in the beginning of October. I was then absent. I first saw him after my return in November. I went to see him in company with the Prince of Bharatpore and one or two pandits. The excitement was then at its height. The whole of the Brahmanic and educated population of Benares seemed to flock to him. In the verandah of a small house at the end of a large garden near the monkey-tank, he was holding daily levees, from early in the morning till late in the evening, for a continous stream of people who came, eager to see and listen to, or dispute with the novel reformer. It does not appear, however, that the heads of the orthodox party or the pandits of the greatest repute ever visited him, unless they did it secretly. The intensity of the excitement at last induced the Raja of Benares in concert with his court pandits and other men of influence, to take some notice of the reformer, and to arrange a public deputatoin between him and the orthodox party, in order to allay the excitement by a defeat of the reformer. But I fear there was a determination from the beginning that they would win the day by any means whether foul or fair. The deputation took place on the 17th of November, in the place where the reformer had taken up his abode; it lasted from about 3 to 7 P. m. The

Raja himself was present and presided. The discussion commenced by Dayanand asking pandit Taracharana, the Raja's court pandit, who had been appointed to defend the cause of orthodoxy. whether he admitted the Vedas as the authority. When this had been agreed to, he requested Taracharana to produce passages from the Vedas sanctioning idolatry, pashanacipujana (worship of stones, etc.) Instead of doing this Taracharana for some time tried to substitude proofs from the Puranas. At last Dayananda happening to say that he only admitted the Manusmriti, Sharirak-sutras, etc. as authoritative, because founded on the Vedas, Vishudhananda, the great Vedantist interfered and quoting a Vedant-Sutra from the Sharirak-Sutras asked Dayananda to show that it was founded on the Vedas. After some hesitation Dayananda replied that he could do this only after refering to the Vedas, as he did not remember the whole of them Vishudhananda then tauntingly said if he could not do that, he should not set himself up as a teacher in Benares. Dayananda replied, that none of the pandits had the whole of the Vedas in his memory. Thereupon Vishudhananda and several others asserted that they knew the whole of the Vedas by heart. Then followed several questions.... put by Dayananda to show that his opponents had asserted more than they could justify. They could

answer none of his questions. At last some pandits took up the thread of the discussion again by asking Dayananda whether the term pratima (likeness) and purti (fulness) occuring in the Vedas did not sanction idolatry. He answered that rightly interpreted, they did not do so. As none of his opponents objected to his interpretation it is plain, that they either perceived the correctness of it, or were too little acquainted with the Vedas to venture to contradict it. Then Madhavacharya, a pandit of no repute, produced two leaves of a Vedic MS., and reading a passage containing the word 'Puranas,' asked to what this term referred. Dayanaada replied; it was there simply an adjective, meaning "ancient," and not the proper name. Vishudhananda challenging this interpretation, some discussion followed as to its grammatical correctness; but, at last, all seemed to acquiesce in it. Then Madhavacharya again produced two other leaves of a Vedic MS. and read a passage with this purport, that upon the completion of a yajna (sacrifice) the reading of the Puranas, should be heard on the 10th day, and asked how the term 'Puranas could be there an adjective. Dayananda took the MS. in his hand and began to meditate what answer he should give. His opponents waited but two minutes, and as still no answer was forthcoming, they rose, jeering and calling out that he was unable

to answer and was defeated, and went away. The answer, he afterwards published in his pamphlet."÷

इसका भावार्थ यह है—"मैं नहीं कह सकता कि दयानन्द किस समय काशीमें आये। बोध होता है कि वह अक्टूबर मास के आरम्भमें ही आये होंगे। जब मैं नवम्बर मासमें काशी लौट-कर आया, तब मेरा उनसे साक्षात् हुआ। भरतपुरके महाराजके साथ मैं उनसे मिलने गया। हमारे साथ दो एक पण्डित भी गये थे। तब दयानन्दके विषयमें काशीमें तुमुल आन्दोलन हो रहा था। काशीस्थ ब्राह्मण और शिक्षितगणोंके दलके दल उनके पास जाते थे। दयानन्द एक छोटेसे घरके बारान्देमें बैठकर आये हुए लोगोंके साथ बातचीत करते थे। वह घर हनुमान्कुण्डके पास एक विस्तृत उद्यानके प्रान्त्यभागमें था। प्रातःकालसे सन्ध्या काल पर्यन्त नाना श्रेणीके लोग स्रोतके समान अविश्रान्त भावसे उस घरके बराम्देमें बैठते थे। उनमें कोई दयानन्दको केवल देखनेके लिये और कोई २ उनके साथ बातचीत वा शास्त्रालोचना करनेके निमित्त वहाँ जाते थे। काशीका कोई समाजपति अथवा कोई प्रसिद्धिसम्पन्न पण्डित दयानन्दके पास जाता हुआ नहीं देखा गया। सम्भव है गुप्तभावसे वे लोग आते जाते हों। क्रमशः दयानन्दके सम्बन्धमें आन्दोलन इतना प्रबल हो गया कि काशी-नरेशकी सभाके पण्डित और अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तियोंके परामर्शके अनुसार प्रकाश्यभावसे विचार करना ही महाराजा-काशीने युक्तिसंगत समझा, क्योंकि उन्हें निश्चय होगया था कि दयानन्दको विचारक्षेत्रमें पराभूत किये विना वह उच्छ्वसित आन्दोलनस्रोत किसी प्रकार भी निवारित नहीं होगा। इसलिये बोध होता है कि किसी-न-किसी प्रकारसे दयानन्दको पराजित करना ही

÷ The Christian Intelligencer of March 1870, quoted in the Triumph of Truth P. 31-33

उन लोंगोंका पहिलेसे ही संकल्पथा । अस्तु । १७ वीं नवम्बर उनके साथ विचारका दिन निरूपित हुआ । उस दिन अपराह्न समयमें पूर्वोल्लिखित उद्यानमें उस्थित होकर महाराजा काशीने विचारसभाके सभापतिका आसन ग्रहण किया । तीन बजेसे विचार प्रारम्भ करके सन्ध्याके ७ बजे समाप्त हुआ । प्रथम दयानन्दने राजपण्डित ताराचरणसे प्रश्न किया कि वह वेदोंकी प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं वा नहीं । उसके उत्तरमें ताराचरणके उसे स्वीकार करनेपर दयानन्दने उनसे पूछा कि वेदोंके किसी स्थल में पाषाणादि मूर्त्तिपूजाकी विधि है वा नहीं । उसके उत्तरमें ताराचरण पुराणोंके प्रमाण उपस्थित करनेकी चेष्टा करने लगे । यह देखकर दयानन्द बोले कि वह मनुस्मृति और शारीरिकसूत्र प्रभृति वेदमूलक ग्रन्थोंके भिन्न और किसी ग्रन्थकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते हैं । उसके उत्तरमें प्रसिद्ध वेदान्ती विशुद्धानन्द स्वामीने एक वेदान्तसूत्र पढ़कर दयानन्दसे जिज्ञासाकी कि वेदमें उसका कोई मूल है वा नहीं । इसपर दयानन्द कुछ देर चुप रहनेके पश्चात् बोले कि विना वेदोंके ग्रन्थ देखे इस बातका उत्तर नहीं दे सकते । इसके उत्तरमें विशुद्धानन्दने किञ्चित् अवज्ञाके साथ कहा कि यदि आप ग्रन्थ देखे विना नहीं कह सकते, तो आपको काशीमें विचारके लिये आना उचित नहीं था । इसपर दयानन्दने कहा—सब वेदोंको स्मृतिपटमें अङ्कित करके रखना किसी पण्डितके लिये भी सम्भव नहीं है । यह सुनकर विशुद्धानन्द प्रभृति पण्डितगण बोले कि समस्त वेद उन सबके ही कण्ठस्थ हैं । तब दयानन्दने कई प्रश्नपर प्रश्न किये, किन्तु वे दयानन्दके प्रश्नका भी उत्तर न दे सके । इससे सिद्ध हो गया कि समग्र वेद उनमेंसे किसीके भी कण्ठस्थ नहीं थे । इसके पश्चात् पण्डितगणने दयानन्दसे पूछा कि वेदमें प्रतिमा और पूर्ति शब्द हैं वा नहीं । इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि वेदमें दोनों शब्द हैं

तो सही, परन्तु यह दोनों शब्द मूर्तिपूजाके अर्थमें व्यवहृत नहीं होते। इसके पश्चात् जिन २ अर्थोंमें दोनों शब्द व्यवहृत होते हैं दयानन्दने उसकी व्याख्या करके बतला दी। उनकी व्याख्याके विषयमें पण्डितोंमेंसे किसीने कोई आपत्ति नहीं की। इससे जाना गया कि या तो पण्डितगण इन दोनों शब्दोंके यथार्थ अर्थ नहीं जानते थे, या तो वे वेदोंसे उत्तमरूपसे परिचित नहीं थे। जो हो, कुछ समय पश्चात् माधवाचार्य नामक एक अख्यातनामा पण्डितने वेदोंके दो पत्र निकाले और उनमें आये हुए पुराण शब्दके अर्थ पूछनेपर दयानन्दने उसकी व्याख्या करदी कि वह विशेषण है; किन्तु विशुद्धानन्द स्पर्धाके साथ उस व्याख्याको भ्रान्त सिद्ध करनेकी चेष्टा करने लगे। तब उस पुराण शब्दके व्याकरणानुकूल अर्थ लेकर कुछ देर तक विचार होने लगा। किन्तु अन्तमें आपत्ति करने वालोंको चुप होना पड़ा। तदनन्तर पूर्वोक्त माधवाचार्य पुनः दो वेदके पत्र निकाल कर पढ़ने लगा। उसमें लिखा था कि यजमान यज्ञके पश्चात् दशवें दिन पुराण श्रवण करे। माधवाचार्यने दयानन्दसे पूछा कि यह पुराण शब्द किसका विशेषण है। दयानन्दने उस उल्लिखित अंशको ध्यानपूर्वक देखनेके अभिप्रायसे वेदके दोनों पत्रोंको हाथमें ले लिया। उन्होंने उन्हें हाथमें लेकर वेदके पत्रोंपर दो मिनिट भी दृष्टिपात नहीं किया था कि इतनेमें पण्डितगण खड़े होकर उपहासके साथ और ऊँचे स्वरसे यह कहते हुए कि दयानन्द उत्तर नहीं दे सके, दयानन्द पराजित हो गये, चले गये। किम्बहुना, दयानन्दने उसका उत्तर काशीशास्त्रार्थनामक पुस्तकमें प्रकाशित कर दिया।”

इस सम्बन्धमें निम्नलिखित वृत्तान्त सुप्रसिद्ध पायोनियर पत्रसे लिया गया है। यद्यपि यह वृत्तान्त बहुत दिन पीछे लिखा गया, तौ भी पाठकोंके समक्ष उपस्थित विषयका एक उज्ज्वल

और सच्चा चित्र अङ्कित करनेके अभिप्रायसे हम इसे प्रकाशित करते हैं। वृत्तान्त इस प्रकार है:—

"It was about ten years ago that Dayananda Saraswati Swami made his first debut at Benares. He threw down a challenge to the pandits of Benares to meet him to discuss the question whether idolatry was sanctioned by the sacred writings of the Hindoos. The challenge was taken up by the pandits who, under the patronage and protection of the Maharajah of Benares, assembled at a garden-house near the temple of Durga The Maharajah himself presided in the meeting. Hundreds of learned priests and thousands of the unlearned laity thronged there to witness the great controversy. The spokesmen were Pandit Bala Shastri, a late Professor in the Ṣanskrit College, Benares, and Pandit Taracharana Tarkaratna, the Maharajah's court pandit. Several other pandits subsequently joined in the discussion. The proceedings of the meeting were taken down by a reporter, in the person of the learned editor of the Sama Veda (published in the Biblictheca Indica), and which were published in his monthly Sanskrit Journal, the defunct Pratna Kamra Nandini. As I have said before, the question at issue was whether idolatry was sanctioned by the sacred writings of the Hindoos. The pandits urged that the Vedas did not, like one of the ten commandments of theJews, distinctly prohibit idol-worship, while the Purans evidently enjoined it. The Swami denied the authoritative character of the Purans asserting, among many other things, that the word Puran was invariably used as an adjective, and stood as qualifying word before

any work that had any pretension to antiquity. The pandits, on the other hand, maintained that the word Puran was a proper name, and desigonated only certain sacred writings, forming the ground-work of modern Hindooism. The Swami challenged the pandits to show him in any portion of the Vedic writings the use of the word as a noun. Unfortunately for his cause, one of the pandits happened to be present with some leaves of a very sacred work, whose authority the Swami could not deny, containing the very word used as a substantive. No effort on the part of the learned Swami, in changing the construction of the sentence, could make it otherwise. The Swami hung down his head, and the pandits clapped their hands in triumph. An attempt was made by some turbulent spirists to hoot the Swami, and to inflict a personal chastisement on him for his audacity in questioning the propriety of the national mode of worship; but the presence of the Maharajah quenched the ebullition of their spirit. The Swami remained at Benares for some days, but he had lost his prestige, and the report of the victory of the pandits went abroad to gladden the hearts of the pious Hindus. This is an unvarnished account of his first combat with the Brahmins of Benares in the arena of theological controversy."†

इसका मर्म यह है–"प्रायः १० वर्ष हुए कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीके साथ काशीस्थ पण्डितोंका प्रथम शास्त्रार्थ हुआ था। उस विचारक्षेत्रमें दयानन्दने काशीके पण्डितोंको स्पर्धाके साथ यह सिद्ध करनेके लिये आहूत किया कि मूर्त्तिपूजा वेदादि शास्त्रों-

† The Pioneer 1880 January 8.

के अनुकूल है वा नहीं। पण्डितगण दयानन्दके बुलाने पर और महाराजा काशीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर विचारके लिये उपस्थित हुए। दुर्गामन्दिरके समीप एक उद्यान-वाटिकामें महाविचारका आयोजन हुआ। स्वयं काशीनरेश विचारसभाके सभापति बने। सैकड़ों सुशिक्षित पण्डित-पुरोहित और सहस्रों अशिक्षित व्यक्ति महाविचारके देखनेके अभिप्रायसे वहां उपस्थित हुए। काशीके राजपण्डित ताराचरण तर्करत्न और संस्कृतकालिजके भूतपूर्व अध्यापक पण्डित बालशास्त्री उपस्थित पण्डितमण्डलीके प्रतिनिधिरूपसे दयानन्दके साथ शास्त्रार्थके लिये प्रवृत्त हुए। पीछे अन्यान्य पण्डितगण भी उनके साथ योग देने लगे। प्रत्नकम्रनन्दनी नामक संस्कृत मासिकपत्रिकाके सम्पादकने शास्त्रार्थका विवरण लिपिबद्ध किया था। उसके पश्चात् वही विवरण प्रत्नकम्रनन्दिनीमें प्रकाशित हुआ था। अस्तु। जिज्ञासित प्रश्नके सम्बन्धमें पण्डितगणने दृढ़ताके साथ कहा कि यहूदियोंके निषेधसूचक दश आदेशोंके समान मूर्तिपूजा वेदमें विशिष्टभावसे निषिद्ध नहीं है; उसके भिन्न पुराणोंमें तो स्पष्टाक्षरोंमें उसकी विधि है। किन्तु दयानन्दने पुराणोंकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की। विशेषतः उन्होंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी कि पुराण शब्द प्राचीनतर ग्रन्थोंके विशेषण रूपसे ही व्यवहृत हुआ है। इसके विरुद्ध पण्डितगणने उसे विशेष्य कह कर प्रतिपादनके लिये तर्क किया। उसके पश्चात् दयानन्दने पण्डितगणसे यह दिखानेका अनुरोध किया कि वेदके किस स्थलमें पुराण शब्द विशेष्य रूपसे व्यवहृत हुआ है। इतनेमें एक पण्डितने एक प्रामाण्य ग्रन्थके कई एक पत्रे निकाल कर यह प्रतिपादित करनेका प्रयास किया कि उनमें पुराण शब्द विशेष्यका वाचक है। दुःखका विषय है कि उसके उत्तरमें दयानन्द कुछ भी न कह सके और नतशिर होगये। इस प्रकार काशीके पण्डितगण शास्त्रार्थमें जयलाभ करके कर-

तालि बजाने लगे। कई उग्रप्रकृति अशिक्षित व्यक्ति दयानन्द पर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हुए, परन्तु काशीनरेशके सम्मुख ऐसा न कर सके। शास्त्रार्थके पश्चात् दयानन्द कुछ दिन तक काशीमें रहे। उन दिनोंमें वह हृतमान और हृतगौरव होकर रहे। इस ओर पण्डितोंके विजय-संवादके चारों ओर विघोषित होनेसे हिन्दुओंका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित होने लगा। फलतः वाराणसीके पण्डितोंके साथ दयानन्दके प्रथम बारके शास्त्रार्थका यह वृत्तान्त अतिरंजित और यथार्थ है, इस विषयमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता।

किन्तु उल्लिखित वृत्तान्त को असत्य बतलाकर एक व्यक्ति ने उसका इस प्रकार प्रतिवाद किया है।

"I refrain from giving the details of the discussion, for they would hardly be intelligible to the majority of your readers. Those who take a special interest in the controversy may refer to a small pamphelt, entitled the Shastrarth which can be had of Messrs. Brij Bhooshan Dass, of Benares. Suffice it to say that the question at issue was whether idolatry is sanctioned by the Vedas which, according to the orthodox' 'Hindu, are Divine Revelation The swami maintained that the Vedas do not inculcate idolatry, and the pandits did not produce at the time, nor have they produced since, a single passage from the Vedas that could dislodge the Swami from his Position The answer of the pandits were extremely evasive. The whole controversy was no better than a regular Tamasha, for the Brahmins did not confine their arguments to the point at issue, but carried on altercations on various points of a Hindu jurisprudence, logic, and Sanskrit grammer which had not the least bearing on the main question, How —can

in the face of the above facts boldly assert that the swami got the fight I leave for your impartial readers to judge' " ÷

इसका मर्म यह है—"काशीके शास्त्रार्थका सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित करना यहाँ उपयोगी नहीं है। जिन्हें इस विषयका तथ्य जाननेकी इच्छा हो वह बनारसके ब्रजभूषणदाससे काशी-शास्त्रार्थ नामक पुस्तक क्रय करके पढ़ सकते हैं। मूर्त्तिपूजा वेदानुमोदित है वा नहीं—यही प्रश्न काशीके शास्त्रार्थ का मूल प्रश्न था। किंतु पण्डितगण मूलप्रश्नका कोई भी उत्तर न दे सके और नाना अप्रासंगिक बातों पर विचार करने लगे। अर्थात् मूल विषयको छोड़कर और अन्यान्य नाना विषयों की नाना अप्रासंगिक बातों को उठाकर काशीके पण्डितोंने उस शास्त्रार्थके कार्यको वस्तुतः एक तमाशा बना दिया था। फिर ऐसी दशामें कैसे कहते हैं कि स्वामीजी काशीके पण्डितोंसे पराजित होगये थे।

उपस्थित विषय पर एक और व्यक्ति की सम्मति उद्धृत करते हैं। उन्होंने लिखा है:—

"That stronghold of Hindu idolatry and bigotry which according to Hindu mythology stands on the trident of Siva, and is therefore not lible to the influence of earth-quakes, has lately been shaken its foundations by the appearance a sage from Guzerat. The name of this great personage is Dayananda Saraswati. He has come with the avowed object of giving a death—blow to the present system of Hindu worship. He considers the Vedas te be the only religious books worthy of regard and styles the Puranas as cunningly-devised fable—the invention of some shrewd Brahmans of a later period for the subservanc of their selfish motives. The Vedas says he, entirely

÷ The Pioneer 1880 January 15.

ignore idol-worship, and he challenges the pandits and great men of Benares to meet him in argument. Some time ago the Maharaja of Ramanagar held a meeting in which he invited the great pandits and the elite of Benares. A furious and protected logomachi took place between Dayanand Saraswati and the pandits, but the latter not withstanding their boasted learning and deep insight into the Sastras,met with a signal discomfiture. Finding it impossible to overcome the great man by a regular discussion the pandits resorted to the adoption of a sinister end to subserve their purpose. They made over to the sage an extract from the Puranas that savored of idolatry and handed it over to the Sarasvati saying that it is a text from the Vedas. The latter was pondering over it, when the host of the pandits headed by the Maharajah himself clapped their hands signifying the defeat of the great pandit in the religious warfare. Though mortified grealty at the unmanly conduct and hard treatment of the Maharajah, Dayananda Swami has not lost courage. He is still waging the religious contest with more earnestness than ever. Though alone, he stands undaunted in the midst of a host of opponents. He has the shield of truth to protect him and his banner of victory is waiting in the air. The Pandit has lately published a pamphlet styled "Tatta Dharma Bichar," containing particulars of the religious contestabove alluded to, and has issued a circular calling on the pandits of Benares to show which part of the Vedas sanctions idol-worship. Noone has venured to make his appearence.

"Hearing the great fame of the sage, we made up our minds to pay him a visit and accordingly went to Anand

Bag, near Durga Bari, in which romantic gardenhe has taken up his temporary residence. The Rishi-like appearance of the venerable Pandit, his cheerful countenance and child-like simplicity, made on our minds an impression never to be effaced. When he began to speak, manna dropped from his lips, and the wise instruction he gave us forced us to the conviction that the golden age of India has not altogether disapppeared. The great Pandit after 18 years of research into the Vedas has come to the conclusion that they do not savor of idolatry at all and with the view of rususcitating the Vedic religion of the ancient sages of India, he has come out on his mission of religious reformation. He has did adieu to all worldy enjoyments, he has assumed the austerities of an anchorite, and is buoyant with the hope of regenerating Hinduism and securing a lasting boon for his countrymen With the view of promulgating correct theistic doctrines and dispelling the misunderstanding of the present Sannyasis and pandits who hold pantheism to be the main doctrine of the Vedas, he is now appealing to his educated and enlightened brethren to establish a Vedic School, the teachership of which he will most gladly accept." †

उपर्युद्धृत अंग्रेजी अंशका तात्पर्य यह है—"काशीक्षेत्र मूर्तिपूजाका दुर्गस्वरूप है। अधिकन्तु महादेवके त्रिशूलके ऊपर स्थित होनेसे काशी भूकम्पमें भी कभी कम्पित नहीं होती। परन्तु सम्प्रति गुजरातदेशीय एक संन्यासीके आविर्भाव और प्रभावसे काशी कम्पित होगई। संन्यासीका नाम दयानन्द सरस्वती है। हिन्दुओंके मूर्तिपूजाका उच्छेद करनेके ही अभिप्रायसे सरस्वती महाशय काशीमें उपस्थित हुए हैं। वह वेदको हिन्दुओंका एक-

† The Hindoo Patriot 1870 Jaunary 17.

मात्र धर्मशास्त्र मानकर सम्मान करते हैं; और पुराणादि ग्रन्थोंको कल्पनाकल्पित, विशेषतः स्वार्थपरायण आधुनिक पण्डितोंकी बुद्धिप्रसूत, कह कर अग्राह्य बताते हैं। दयानन्द कहते हैं कि वेदमें आदिसे मूर्त्तिपूजाका प्रसङ्ग नहीं है; यहां तक कि यदि वेदके किसी स्थलमें मूर्त्तिपूजाका कोई प्रसङ्ग हो, तो उनके दिखानेके लिये उन्होंने काशीकी पण्डित मण्डलीको शास्त्रार्थके लिये आहूत किया। उसके अनुसार रामनगर * के महाराजाने काशीके पण्डितों और अन्यान्य शिक्षित व्यक्तियोंको बुलाकर कुछ दिन पहिले एक महासभाका अधिवेशन किया। सभामें दयानन्दके साथ पण्डितोंका बहुत देर तक वाग्युद्ध रहा। शास्त्रसम्बन्धमें पण्डितोंकी तीक्ष्ण दृष्टि होने पर भी वह लोग निस्संशय ही दयानन्दसे पराजित हो गये थे अर्थात् उन्हें न्यायानुसार विचारमें पराजित करना असम्भव समझकर पण्डितोंने अन्याययुक्त विचारका आश्रय ग्रहण कर लिया था। उन्होंने मूर्तिपूजाको वेदप्रतिपादित सिद्ध करनेके अभिप्रायसे कई एक पौराणिक मन्त्रों ☞ को वैदिक मन्त्रोंके रूपमें लिखकर दयानन्दके हाथमें दे दिया। दयानन्दने उन दिये हुए और पत्रमें लिखे हुए मन्त्रोंको देखा ही था कि इतनेमें पण्डितगण करतालि देकर और यह कह कर कि "दयानन्द पराजित हो गये" उठ खड़े हुए। दयानन्द पण्डितोंके ऐसे अन्यायके व्यवहारसे दुःखित होने पर भी निरुत्साहित नहीं हुए; प्रत्युत वह अब भी अधिकतर उत्साहके साथ वहांके पण्डितोंको शास्त्रसंग्रामके लिये आह्वान करते हैं। वह अकेले होने पर भी विपक्षी दलके भीतर वीरके समान अविच-

---

* रामनगरमें रहनेसे काशीके महाराजाको रामनगरका महाराजा भी कहते हैं। रामनगर काशीतलवाहिनी गंगा के दूसरे पार है।

☞ "काशीशास्त्रार्थ" नामक हिन्दीपुस्तकमें जो लिखा हुआ है

लित रहे हैं। कारण यह है कि दयानन्दने सत्यरूपी दुर्भेद्य वर्म्म से अपनेको आवृत्त किया है। सुतरां उनकी विजयपताका भी वायुसे मन्द-मन्द आन्दोलित होती है। उन्होंने 'सत्यधर्मविचार' नामक एक पुस्तकमें उक्त शास्त्रार्थका वृत्तान्त लिपिबद्ध किया है और यह दिखानेके लिये कि वेदके किसी स्थलमें मूर्त्तिपूजाकी परिपोषक कोई कथा है वा नहीं वाराणसीके पण्डितवर्गको आह्वान करते हैं; किन्तु वाराणसीका कोई पण्डित उनके आह्वानका उत्तर देनेके लिये उद्यत नहीं हो सका। हम एक दिन उनसे मिलनेके लिये दुर्गाबाड़ीके निकटस्थ आनन्दबागमें गये थे। हमने जाकर देखा कि दयानन्दकी मूर्ति ऋषिके समान है, उनका मुख सर्वदा ही प्रफुल्लित और प्रकृति अत्यन्त सरल है। हमारे साथ बात करते समय, बोध होता था कि, उनके मुखसे अमृत गिरता है। अट्ठारह वर्ष वेदों पर विचार करनेके, पश्चात् दयानन्द इस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं कि मूर्त्तिपूजा किसी अंशमें भी वेदानुकूल नहीं है। वह सांसारिक सुखका सर्व प्रकारसे ही परिहार करके ही कटोरभावसे कालातिपात करते हैं और हिन्दूधर्मके संस्कारसे स्वदेशका यथार्थ कल्याण साधन करनेके अभिप्रायसे आशान्वित हो रहे हैं। उन्होंने वेदप्रतिपादित विशुद्ध ब्रह्मवादको प्रतिष्ठित करने के उद्देशसे एक वेदविद्यालय स्थापना करनेका भी संकल्प किया है।"

उससे यह प्रतीत नहीं होता है कि पण्डितोंने दयानन्दके हाथमें कोई पौराणिकमन्त्र वेदमन्त्र कह कर दे दिये थे। काशी शास्त्रार्थमें यह लिखा है कि पण्डितोंने उन्हें सामवेदीय ब्राह्मणविशेषके मन्त्र दिये थे, तो भी उपर्युक्त कथाको नहीं कहकर पौराणिक मन्त्रोंकी उपस्थितिकी कथाको भी असम्भव नहीं कहा जा सकता।

हुआ। अस्तु। इस बीचमें कई एक रेलवेके कर्मचारियोंके अनुरोधवश दयानन्द एक दिन मुगलसराय गये। उनका अभिप्राय दयानन्दके निर्विघ्नतापूर्वक धर्मालोचना करनेका था। हाली शहर के निवासी श्रीयुक्त दीनानाथ गङ्गोपाध्याय महाशय स्वामीजीको इस प्रकार आह्वान करनेके पक्षमें अग्रणी थे। स्वामीजी उनके साथ मुगलसरायके मठमें गये, और तृणावृतभूमि पर बैठ कर नाना प्रकारकी हितकर कथाओंके प्रसङ्गसे उनकी तृप्ति करके काशीमें चले आये।

काशीमें एक वेदविद्यालयके स्थापित करनेकी दयानन्दको अभिलाषा थी। केवल काशीमें ही नहीं, भारतसाम्राज्यकी राजधानी कलकत्ता नगरमें भी वैदिक धर्म्मके प्रकाशके विकिरण करनेके अभिप्रायसे एक वैदिकपाठशाला स्थापन करनेका उन्होंने संकल्प किया था। इस विषय पर पैट्रियाटपत्रिकाके पूर्वोल्लिखित सदाशय लेखकने ऐसा लिखा है:—

"In conclusion, we would make a strong appeal to the heads of the orthodox classs of Hindoos to assist Dayananda Sarswati in establishing a Vedic School. Almost all the educated natives are theists at heart, and though some cling to idolatry for the sake of their parents and nearest relations, many have avowedly adopted Brah-

---

तोंने कोलाहल मचा दिया है कि मैं पराजित हो गया। यह बात भी सेन महाशयके मुखसे सुनी है कि शास्त्रार्थके पश्चात् दयानन्दको मारनेका भी उद्योग हुआ था, परन्तु पुलिसके सहाय्यसे वह उद्योग व्यर्थ हो गया था। काशीके पण्डितोंने उपर्युक्त विज्ञापनपत्रके भिन्न "दयानन्दपराभूति" नामक संस्कृतमें और "दुर्जनमतमर्दन" नामक हिन्दीमें एक २ पुस्तक भी प्रकाशित की थी।

maism. It is therefore meet that the Vedic religion should be revived. The tide of progress can not be obstructed, and the members of the "Sanatan Dharm Rakshni Sabha" will ill-esucceed in keeping up the present system of Hinduism. They will secure the lasting gratitude of the Hindoos if they try to purify Hinduism from the corruption that have crept into it, and establish the Vedic religion as the religion of the educated." †

उपर्युक्त अंशका तात्पर्य यह है—"दयानन्द-सरस्वतीके प्रस्तावित वैदिक विद्यालय स्थापन करनेके विषयमें हम हिन्दूसमाजके नेताओंको आग्रहपूर्वक आह्वान करते हैं, क्योंकि यहाँके शिक्षित व्यक्तियोंमें प्रायः सबही भीतरसे एकेश्वरवादी हैं। कोई २ माता-पिता वा आत्मीय स्वजनोंके अनुरोधसे मूर्तिपूजाकी पोषकता करते हैं; परन्तु अनेकोंने अब प्रकट रूपसे ब्राह्ममत ग्रहण कर लिया है। यह उन्नतिप्रवाह किसीसे रुकने वाला नहीं है। इसलिये वैदिक धर्म्मका पुनरुद्दीपन करके प्रचलित हिन्दूधर्म्मके संस्कार करनेकी चेष्टा करनी सबका ही कर्तव्य है। इस कार्यमें सहायता करनेसे सनातन-धर्मरक्षिणी सभा निश्चय ही हिन्दु-साधारणकी कृतज्ञताका पात्र होगी।

पैट्रियाट पत्रिकाके प्रवीण सम्पादकने इस उत्साहपरिपूरित और सुयुक्तियुक्त कथाका अन्तःकरणसे अनुमोदन किया था। उन्होंने यह विलक्षणरूपसे हृदयस्थित कर लिया था कि प्रस्तावित वैदिकविद्यालयके प्रतिष्ठित होनेसे इस देशका बहुत मङ्गल साधित होगा। इस कारण वह केवल पूर्वोल्लिखित कथाके अनुमोदन वा समर्थन करनेसे ही निश्चिन्त नहीं हुए। किन्तु उन्होंने उपर्युल्लिखित-पत्रलेखकसे अनुरोधके साथ ऐसे २ अत्यावश्यक विषयों पर जिज्ञासाकी जैसे कि किस उपायके अवलम्बन करने

† The Hindoo Patriot 1870, January 17.

से यह शुभसाधक संकल्पकार्यमें परिणत हो सकता है, और कार्यमें परिणत होने पर इसके परिचालनके लिये कितने व्ययकी आवश्यकता होगी—इत्यादि † । पत्रलेखक महाशयने इस प्रकारके अनुरोध और जिज्ञासा पर प्रस्तावित वेदविद्यालयके व्ययादिके सम्बन्धमें पैट्रियाट सम्पादकको पुनर्वार इस प्रकार लिखा था:—

† Here is an oportunity for the Dharma Sabha to prove itself useful which we trust and hope will not be thrown away. The Sabha is an anachronism, but its existence may be tolerated by enlightened public opinion, if it makes its objects to revive. Vedic learning and Vedic religion the glorious heritage of our proud ancestors. We wish our correspondent had given an estimate of the cost of the proposed Vedic School, which ought of course to be moderate, and we can not believe that if the objects of the projected institution were properly explained and circulated, there would be lack of funds. A single Native Prince might give the money required. It would certainly redound to the credit of the Darma Sabha, if it should come forward liberally and second the laudable efforts of the new Reformer. Otherwise we would recommend the Brahmo Samaj, as the chief instrument of the revival of Vedic worship under the guidance of the late Rajah Ramamohana Raya, to interest itself in this sacred cause, and lend its support and authority of the new Reformer. The Hindu Patriot 1870 January 17.

उपर्युक्त अंग्रेजी नोटका हिन्दी मर्म यह है—"यह अवसर धर्मसभाके लिये अपने आपको उपकारक बनानेका है, और हमें विश्वास और आशा है कि वह इसे हाथसे न जाने देगी यह

"Emboldened by your words of encouragement we repaired to Anand Bag in Benares, and explained to the venerable Pandit the substance of your editorial remarks. The joy of the sage knew no bounds; and with a blooming countenance he thanked you most heartily. He then propounded the following plan in accordance with which the working of the proposed Vedic School is intended to be carried out. As a first step, the services of a good Pandit should be secured for teaching Sanskrit literature As Sarasvatee has in contemplation the introduction of

---

सभा समयविरुद्ध घटना है; परन्तु यदि वह अपना उद्देश्य वैदिकशिक्षा और वैदिकधर्मके पुनरुद्धारको बनाले, जो हमारे गौरवान्वित पूर्वजोंका दिव्य दाय है, तो उसकी स्थिति जनसाधारणकी प्रकाशान्वित सम्मति सहन कर सकती है। हमारी इच्छा है कि हमारे संवाददाता प्रस्तावित वेदविद्यालयका आनुमानिक व्यय बतला दें, परन्तु वह अत्यधिक न होना चाहिये, और हमें विश्वास नहीं हो सकता कि यदि प्रस्तावित संस्थाके उद्देश्य उत्तमरीतिसे दर्शाये और प्रचारित किये जावें, तो धनकी न्यूनता रहेगी केवल एक ही देशीय महाराजा आवश्यकीय धन दे सकते हैं। यदि धर्मसभा उदारताके साथ अग्रसर हो और नये सुधारकके प्रशंसनीय यत्नोंमें योग दे, तो यह निस्सन्देह सभाके गौरवका कारण होगा। अन्यथा हम ब्रह्मसमाजसे प्रार्थना करेंगे, जो परलोकगत राजा राममोहनरायके नेतृत्वमें वैदिक उपासनाके पुनरुद्धारका मुख्य साधन है, कि वह इस पवित्र कार्यमें मनोयोग दे और नये सुधारकको सहायता और अपना बलप्रदान करे।" दि हिन्दु पैट्रियाट १८७०, जनवरी १७। (अनुवादक)

a system of training that will lead to a clear understanding of the Vedas, he intends selecting a Pandit from among the few best scholars he is aquainted with. Though a native of Guzerat, he was brought up in a Vedic School at Muttrah, under the tuition of the great sage, tha late lamented Sura Das. There are few scholars of this great man, who will gladly accept the teachership of the proposed School, if remunerated on a some what liberal scale. The salary should be from Rs. 75 to Rs 100 per mensem. After the Pupils have been thoroughly initiated into Sanskrit literature, which will take two years to accomplish, the services of another Pandit should be secured at say Rs. 100 per month, for teaching the Vedas. As liberal education has inflamed the hearts of many a youth with the fire of religious zeal, advanced Scholars of the Sanskrit College and Pandits of the Vernacular schools might be induced to enter the Academy with a view to obtain an insight into the Vedic lore. In that case, a night School ought to be organised ; and no Eleemosynary aid will then be needed. But as there is every probability of pupils from Nabodeep or other Somajes joining the School, arrangements should be made for supplying all their necessaries, including purchase of books, etc. At the outset, a monthly subscription should be raised sufficient to pay Rs 100 per month to a Pandit, and to defray the necessary expenses teaching 10 pupils. In addition to the

monthly subscription there should of course be a reserve fund to meet contingent expenses. I do not say anything at present about School-buiding and Boarding-house, because I think, any one of our of wealthy countrymen might be induced to spare one of their super-numerary buldings for this noble purpose. As soon as arrangements have been made for opening the proposed School,our venerable Pandit Dayananda Sarasvatee will start for Calcutla in company with a Sanskrit teacher, and will stay there as long as his assistance will be considered necessary to place the *Pathshala* on a firm footing...... It is the intention of our Pandit to make Benares which has an academic fame of no recent date, the centre of his educational scheme, with School spread all over India; and if the liberal minded gentry come forward to fulfil the desire of of this great man, they will assuredly confer a great boon on India. The branches of the trre of corruption have over-shadowed the whole of India and it is his noble intention to apply, the axe of truth to the very root of the tree, which has gone deeper at Benares than elsewhere. Yesterday,the Pandit left this station for Allahabad where he intends staying for a month."†

उपर्युद्धृत अंग्रेजी अंशका मर्म इस प्रकार है—"आपके साहस बंधाने वाले शब्दोंसे हम साहस लाभ करके काशीमें आनन्दबागमें गये और पूजनीय पण्डितजीसे आपकी सम्पादकीय सम्मति का सारांश कहा। पण्डितजी के उल्लासकी सीमा न

---

† The Hindoo Patriot 1870 February 14.

रही; और प्रफुल्लवदन होकर उन्होंने आपको हृदयसे अत्यन्त धन्यवाद किया। फिर उन्होंने निम्नलिखित पद्धतिका प्रस्ताव किया जिसके अनुकूल भावी वेदविद्यालयके कार्यसंचालनकी इच्छा है। प्रथमतः संस्कृतसाहित्यकी शिक्षा देनेके लिये एक योग्य पण्डितको रखना चाहिये। सरस्वती महाशयका विचार एक ऐसी शिक्षणविधिके प्रचार करनेका है जिससे वेदोंका अर्थ स्पष्टतया समझमें आजाय, और इसलिये उनकी इच्छा है कि वे पण्डित उन गिनेचुने सर्वश्रेष्ठ विद्वानोंमेंसे निर्वाचित किये जांय जिन्हें वे जानते हैं। यद्यपि वे गुजरातके रहनेवाले हैं, परन्तु उन्होंने परलोकगत महापण्डित सूरदासजीके निकट मथुराके वेदविद्यालयमें शिक्षा पाई है। इन महापुरुषके कुछ शिष्य हैं, जिन्हें यदि उदारतापूर्वक वेतन दिया जायगा, तो वह प्रसन्नतासे प्रस्तावित विद्यालयके अध्यापकपदको ग्रहण कर लेंगे। वेतन ७५) से १००) मासिक तक होना चाहिये। जब विद्यार्थिगण संस्कृत-साहित्यमें पूर्णतया प्रवेश कर लें, जिसके लिये दो वर्ष लगेंगे, तो वेदोंकी शिक्षा देनेके लिये एक दूसरे पण्डितको १००) रु० मासिक पर रक्खा जाय। क्योंकि उदारशिक्षाने बहुतसे युवकोंके मनमें धार्मिक उत्साहकी अग्नि प्रज्वलित कर दी है, इसलिये संस्कृतकालिजके उच्चश्रेणीके छात्रों और देशीय विद्यालयोंके पण्डितोंको इस विद्यालयमें वैदिकसाहित्यसे परिचय प्राप्त करनेके लिये प्रवेश करनेकी प्रेरणाकी जा सकती है। ऐसा होने पर एक नैतिक विद्यालय खोलना चाहिये, और फिर छात्रोंको भोजनादि-की सहायता देनी आवश्यक न होगी। परन्तु इस कारणसे कि प्रायः यह सम्भावना है कि नवद्वीप और दूसरी समाजोंके छात्र भी विद्यालयमें सम्मिलित होंगे, उनकी सब आवश्यकताओंको, जिनके अन्तर्गत पुस्तकादिका क्रय करना भी है, पूरा करनेका प्रबन्ध करना चाहिये। आरम्भमें इतना मासिक चन्दा कर लेना

चाहिये जिससे १००) रु० मासिक पण्डितको दिया जा सके और १० छात्रोंकी शिक्षाका आवश्यक व्यय चल सके। मासिक चन्देके अतिरिक्त एक रक्षितनिधि भी अवश्य होना चाहिये जिससे आकस्मिक व्यय पूरे हो सकें। सम्प्रति हम विद्यालयके स्थान और छात्रशालाके विषयमें कुछ नहीं कहते, क्योंकि हमारे विचारमें हमारे धनाढ्य देशनिवासियोंमेंसे किसी एकको ऐसी प्रेरणाकी जा सकती है कि वे अपने अनावश्यकीय स्थानोंमेंसे एक स्थान इस उत्तम कार्यके लिये देदें। जैसे ही प्रस्तावित विद्यालयके खोलनेका प्रबन्ध हो जाय, हमारे पूजनीय पण्डित दयानंद सरस्वती एक संस्कृत अध्यापकके साथ कलकत्ता चले आयेंगे, और जब तक पाठशालाको दृढ़ भित्ति पर स्थापित करनेके लिये उनकी सहायता आवश्यक समझी जावेगी वह वहां ठहरेंगे' ... . 'हमारे पण्डितजीका यह विचार है कि काशीको, जिसकी ख्याति विद्याभूमि होनेकी बहुत प्राचीनकालसे चली आती है, उनके शिक्षासम्बन्धी कार्यका केन्द्र बनाया जाय और उससे सम्बन्ध रखने वाले विद्यालय सम्पूर्ण भारतवर्षमें फैले हुए हों; और यदि उदारचेता सम्भ्रान्त जन इन महापुरुषके मनोरथको पूरा करनेके लिये अग्रसर होंगे, तो वे निस्सन्देह भारतभूमिका बड़ा कल्याण करेंगे। दुराचारके वृक्षकी शाखाओंने सम्पूर्ण भारतवर्षको अच्छादित कर लिया है, और उनका यह अतिश्रेष्ठ विचार है कि इस वृक्षकी जड़ पर, जो और स्थानोंकी अपेक्षा काशीमें अधिक गहरी है, सत्यके कुल्हाड़ेका प्रहार किया जाय। कल पण्डितजीने इस स्थानसे प्रयागके लिये प्रस्थान किया है, जहां वे एक मास रहना चाहते हैं।" (अनुवादक)

ऊपर दिये हुए अंग्रेजीअंशके विचारनेसे विदित होता है कि स्वामी जी प्रस्तावित वैदिकपाठशालामें प्रथम अध्यापकको ७५) से १००) तकके वेतन पर नियोचित करनेके इच्छुक थे। अपने

आचार्यके किसी उपयुक्त शिष्यको ही अध्यापकपद के लिये निर्वाचित करनेका उनका अभिप्राय था। उन्होंने स्वनिर्धारित पद्धतिके ऊपर वेदविद्यालयके समस्त शिक्षाकार्यको प्रतिष्ठित करनेका सङ्कल्प किया था। विद्यार्थिगण पहले अध्यापकके पास दो वर्ष तक साहित्यकी शिक्षा पावेंगे और उसके पश्चात् दूसरे अध्यापकके पास वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होंगे। इस प्रकारके नियमानुसार उन्होंने वेदविद्यालयके शिक्षासम्पादन करनेकी इच्छाकी थी। दयानन्दका विश्वास था कि पाठशालाके पण्डितों अथवा संस्कृतकालिजके अपेक्षाकृत उन्नत श्रेणीके छात्रोंमेंसे अनेक लोग वेदालोचनाके निमित्त उनके स्थापित किये हुए विद्यालयमें आवेंगे। अस्तु। सङ्कल्पित विद्यालयके स्थापनके लिये वह कलकत्ता आन पर भी सहमत थे, और विद्यालयको दृढ़तर भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित करनेके उद्देशसे वहां कुछ समय तक ठहरनेके भी इच्छुक थे, और वेदविद्याके विस्तारके पक्षमें काशीको केन्द्ररूप बनानेकी भी उनकी इच्छा थी। काशीप्रतिष्ठित वेदविद्यालयकी शाखा-प्रशाखारूप भारतके प्रधान २ स्थानोंमें विद्यालय स्थापित होजांय यह उनकी आन्तरिक वासना थी। किन्तु उनकी यह वासना सिद्ध नहीं हुई। पूर्वोल्लिखित सदाशय व्यक्तिने यद्यपि इस विषयकी ओर आर्यसाधारणकी दृष्टि आकर्षण करनेमें कुछ भी त्रुटि नहीं की, यहां तक कि वेदसर्वस्व सरस्वती महाशयके इस परमहितकर सङ्कल्पको कार्यक्षेत्रमें विपर्यीभूत करनेके अभिप्रायसे यद्यपि वह अपने उद्यमोत्साह प्रदर्शनमें परिश्रान्त नहीं हुए * तोभी इस सम्बन्धमें कार्यरूपमें कुछ भी होना स्वामीजीके पक्षमें सम्भावित नहीं हुआ। अस्तु। दयानन्द इस प्रकार काशीके सुधीसमाजमें अपने सिद्धान्तोंको अखण्डित रखकर और अपनी विजयपताकाको अनवनत करके जनवरी मासकी २६ तारीखको

† The Hindu Patriot 1970 March 28 and April 4.

इलाहाबाद चले गये, क्योंकि वेदविद्यालयके व्ययादि सम्बन्धमें पूर्वोद्धृत अंग्रेजीपत्र मुगलसरायसे ही २७ तारीखको लिखाया गया था और उस पत्रके अन्तिम भागमें प्रकाशित हुआ था कि—"स्वामीजी गतकाल काशी छोड़कर इलाहाबाद गये हैं।" इससे विदित होता है कि दयानन्द उस बार काशीमें प्रायः चार मास रहे थे।

षष्ठ परिच्छेद ।

कलकत्ता-आगमन,—प्रमोदकाननमें स्थिति और नाना
मनुष्योंके साथ वार्त्तालाप,—केशवचन्द्रसेनके गृह
में गमन और शास्त्रव्याख्या,—ब्रह्मोत्सवमें
देवेन्द्रनाथ ठाकुरके गृहमें आगमन,—
कतिपय स्थानोंमें वक्तृता,—
हुगलीगमन और पंडित
ताराचरण प्रभृतिके
साथ विचार ।

सन् १८७२ ई० ३० दिसम्बरके इण्डियनमिरर पत्रमें दयानन्द सरस्वतीके आगमनका समाचार इस प्रकार लिखा है :—

"The redoubtable Hindu iconoclast, Pandit Dayananda Sarasvati, who recently discomfited the learned Pandits at Benares in an open theological encounter, and has otherwise made himself famous throughout, Northern India, has come down to Calcutta, and is now staying in the suberban garden house of Rajah Jotindra Mohan Tagore at Nynan. He has issued notices in Sanskrit, Hindi, Bengali and English inviting inquirers and others to come and discuss the theological subjects with him." †

इसका अर्थ यह है—"मूर्तिपूजाके महावैरी पण्डित दयानन्द सरस्वती, जिन्होंने थोड़े दिन पहले काशीके पण्डितवृन्दको शास्त्रार्थमें पराजित करके भारतके उत्तराचलमें ख्यातिलाभ किया

† The Indian Mirror 1872 December 30.

था, अब कलकत्तामें आकर यतीन्द्रमोहन ठाकुरके नगरोपकण्ठ-स्थित नैनानके उद्यानमें ठहरे हुए हैं और जिज्ञासुओं और अन्यान्य व्यक्तियोंके साथ धर्मविचार करनेके अभिप्रायसे उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और बङ्गाली भाषाओंमें विज्ञापन भी दिया है।" राजा यतीन्द्रमोहनका नैनानका उद्यान प्रमोदकाननके नामसे प्रसिद्ध है। वह कलकत्ताके निकट उत्तरकी ओर स्थित है। नगरमें रहनेके विषयमें दयानन्दकी वितृष्णा थी, इसीलिये जब वह किसी नगरमें जाते थे, तो नगरके प्रान्तवर्ती किसी उद्यानमें अथवा प्रान्तवाहिनी नदीके तट पर अपने ठहरनेका प्रबन्ध करते थे। इससे नगरनिवासियोंके साथ विचारादि करनेमें कोई असुविधा नहीं होता था और नागरिक अशान्ति और कोलाहलका कष्ट भी उन्हें सहन करना नहीं पड़ता था। इसी हेतु उनकी स्थितिके लिये प्रमोदकानन निर्दिष्ट हुआ था।*

इण्डियन मिरर पत्रमें लिखे हुए संवादके अनुसार दयानन्द दिसम्बरके अन्तमें ही कलकत्ता आये थे—यह बोध होता है। बंगाब्दके अनुसार वह १२७६ वर्षके अग्रहायणके अन्तमें किंवा पौषके आरम्भमें यहां उपस्थित हुए थे। अस्तु। उस समय दयानन्दके साथ गजानन नामके एक व्यक्ति थे। गजानन मिरजापुरके रहने वाले थे। वह स्वामजीसे मनुसंहिता पढ़ते थे और उनकी सेवा और सहायतासम्बन्धी अन्यान्य कार्योंमें भी नियोजित रहते थे। यह स्वयं स्वामीजीके हाथका लिखा हुआ है कि

---

* पूर्वोक्त श्रीयुत चन्द्रशेखरसेन बेरिस्टर महाशय दयानन्द को कलकत्ता लानेके विषयमें विशेष रूपसे उद्योगी हुए थे। वह पहिले दयानन्दके आगमनका समाचार लेकर श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरके पास गये। किन्तु उन्होंने स्वामीजीके ठहरनेके विषयमें कोई प्रबन्ध करनेमें असामर्थ्य प्रकाश किया। तब सेन महाशय

गजानन मनु संहिता पढ़ते थे। पूर्वोल्लिखित विज्ञापनके अनुसार दयानन्दसे मिलनेके लिये अनेक लोग प्रमोदकाननमें जाने लगे। दयानन्द प्रातःकालसे दो पहर पर्यन्त तक आये हुए मनुष्योंसे बातचीत नहीं करते थे, इसलिये उस समयके भीतर वहां लोगों का आना जाना भी नहीं देखा जाता था। अपराह्नमें दो तीन बजेसे उद्यानकी ओर जनस्रोत प्रवाहित होता था। अनेक लोग केवल उन्हें देखनेके लिये ही जाते थे, अनेक लोग उनसे शास्त्र-विचार करनेके लिये आते थे, और कोई २ छिद्रान्वेषी किसी न किसी दोषके पकड़नेकी अभिलाषासे वहाँ आकर तीक्ष्णदृष्टिके साथ उनके कार्य-कलापादिको देखते थे। दयानन्द कभी उद्यानमें कभी उद्यानस्थित अट्टालिकाके भीतर, और कभी उद्यानान्तर्गत पुष्करिणीके घाट पर बैठ कर आये हुए मनुष्योंसे बातचीत करते थे। आने वालोंके भीतर प्रायः सब ही श्रेणीके मनुष्य दीख पड़ते थे। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न और पण्डितवर तारानाथ तर्क-वाचस्पति प्रभृति शास्त्रिगण भी सरस्वती महाशयके पास जाते राजा शौरीन्द्रमोहन ठाकुरके पास गये। पहिले राजा शौरिन्द्र-मोहनने भी उनके प्रस्तावसे अधिक अनुरागप्रकाश नहीं किया, परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल जब बाबू चन्द्रशेखर दयानन्दको हावड़ा स्टेशनसे लेकर शौरीन्द्रमोहनके घर गये, तब शौरीन्द्र-मोहनने अत्यन्त विनय और आग्रहके साथ प्रमोदकाननमें स्वामीजीके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया।

(स्वामीजी के कई जीवनवृत्तान्तोंमें यह लिखा है कि जब स्वामीजी कलकत्ता गये, तो उनका भक्तिभाजन देवेन्द्रनाथ ठाकुर से समागम हुआ और ठाकुर महाशयने ही उनके रहन-सहन और खान-पानका प्रबन्ध किया। किन्तु ग्रन्थकारसे पूछने पर विदित हुआ कि यह मिथ्या है, क्योंकि उस समय ठाकुर महा-शय कलकत्तामें उपस्थित नहीं थे—अनुवादक)

थे। श्रीयुक्त केशवचन्द्रसेन, श्रीयुक्त राजनारायण बसु और श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति सुशिक्षित और देशप्रसिद्ध व्यक्ति दयानन्दके पास बैठते थे, और राजा शौरीन्द्रमोहन ठाकुर प्रभृतिके समान ऐश्वर्य्यपति और उच्चपदारूढ़ व्यक्तिगण भी बीच २ में वहां जाते थे। इसके भिन्न अन्यान्य आने वाले मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है। इनके भीतर वाचस्पति और वाग्मिवर केशवचन्द्रको दयानन्दके पास प्रायः देखा जाता था। स्वामीजीके साथ केशवचन्द्रका आवागमन पर विचार हुआ था। इसके अतिरिक्त अद्वैतवाद वेदप्रतिपादित है वा नहीं—इस विषय पर भी सेन महाशयने उनके साथ विचार किया था। वसु महाशयके साथ होमके विषयमें बातचीत हुई थी। उन्होंने होम को मूर्तिपूजाका अन्यतम अङ्ग कहा तो दयानन्दने उत्तर दिया कि जिस कार्यका ब्रह्मस्मरणपूर्वक अनुष्ठान किया जाय, और विशेषतः जो जनसाधारणके हितके उद्देशसे ही सम्पादित हो, उसका कभी भी मूर्तिपूजाके अङ्गोंमें परिगणन नहीं हो सकता। यह सुनकर बाबूराजनारायणने उसके सम्बन्धमें फिर कोई बात नहीं कही। वसु महाशयकी 'हिन्दुधर्मकी श्रेष्ठता' नामक वक्तृता-पुस्तक भी दयानन्दको पढ़कर सुनाई गई थी। पाठके अन्तमें दयानन्दने उनसे कहा था कि "हिन्दूधर्मकी श्रेष्ठता प्रतिपादनके पक्षमें पुराण-तन्त्रका प्रमाण ग्रहण करना युक्तिसंगत नहीं है। शास्त्रीय प्रमाणके स्थलमें महाभारत पर्य्यन्त ही गृहीत हो सकते हैं।"

एक दिन सायङ्कालके समय पुष्करिणीके घाट पर बैठे हुए स्वामीजी आये हुए लोगोंसे वार्त्तालाप कर रहे थे कि इतनेमें राजा शौरीन्द्रमोहन गाड़ी पर बैठ कर प्रमोदकाननमें आये। आनेके थोड़ेही देर पश्चात् एक मनुष्यने आकर दयानन्दसे कहा कि राजा बहादुर आपको बुलाते हैं। इसके उत्तरमें दयानन्दने

कहा—'हम आये हुए मनुष्योंके साथ बातचीत कर रहे हैं, इस-लिए इस समय हमारा उठकर जाना सम्भव नहीं है।" शौरीन्द्र-मोहन संवादके लाने वालेके मुखसे इस बातको सुनकर अन्तमें स्वयं ही वहां चले आये, और कुछ काल पश्चात् स्वरके उत्पत्ति-स्थानके विषयमें दयानन्दसे प्रश्न किया। जिज्ञासित प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा उसको न समझ सकने पर, और इसलिये दयानंदकी कुछ विरक्ति प्रकाश करने पर, शौरीन्द्र-मोहन कुछ क्रुद्ध होकर वहांसे चले आये। इस घटनाके पश्चात् कलकत्ताके किसी किसी स्थानमें, यहां तक कि समाचारपत्र विशेषमें, दयानन्दके सम्बन्धमें कई असत्य और अमूलक कथा प्रचारित होने लगीं॥। इससे अनेक लोगोंने यह अनुमान किया था कि शौरीन्द्रमोहनके आश्रित वा सम्बन्ध वाले व्यक्तियोंमेंसे ही किसीने इन सब अमूलक कथाओंकी रचना करके प्रचार किया है। इस प्रकार अनुमान हमारे विचारमें असङ्गत नहीं है।

आये हुए लोगोंके साथ बातचीत करके दयानन्द एक दिन निमन्त्रित होकर भक्तिभाजन केशवचन्द्रसेनके घर गये। जिस

॥ "कस्यचित्वराहनगरवासिनः" इस नामसे एक व्यक्तिने दयानंदके सम्बंधमें कई असत्य और विद्वेषमूलक कथा "सोम-प्रकाश" नामक प्रसिद्ध समाचारपत्रमें प्रकाशित की थी। यह व्यक्ति राजा शौरीन्द्रमोहनकी प्रेरणासे परिचालित होकर इस प्रकारके कार्य्यमें रत हुआ था—यह उसके प्रकाशितपत्रके पाठ करनेसे विदित होता है। सोमप्रकाशके शास्त्रदर्शी सम्पादकने भी इस विषयमें पक्षपातका परिचय दिया था क्योंकि दयानंदके कतिपय अनुरागी और सत्यनिष्ठ व्यक्तियोंने पूर्वोक्त असत्य और विद्वेषमूलक पत्रके प्रतिवादमें सोमप्रकाशमें छपनेको एक पत्र भेजा था; परंतु सम्पादक महाशयने उस प्रतिवादको अपनी

दिन अपराह्नमें केशवचन्द्रसेनके घर गये थे, उसी दिन उन्होंने मध्याह्नमें भारतवर्षीय कौतुकागारमें गमन किया था। इस सम्बन्ध में १२ जनवरी सन् १८७३ के इण्डियन मिरर में निम्नलिखित वृत्तान्त प्रकट हुआ था। वह वृत्तान्त इस प्रकार थाः—

"This learned Punidt visited the Asiatic Museum on Thursday last, with a view chiefly to purchase copies of the Vedas and the Upanishads, He then Met a large number, of Brahmos at the house of Baboo Keshab Chandra Sen. and in answring the various questions put to him he clearly explained his doctrinal opinions. * * * We hope a committee will be formed to undertake the publication and extensive circulation of his reformed

---

पत्रिकामें स्थान नहीं दिया। तब उन्होंने ढाकाकी हिंदुहितैषिणी पत्रिकामें उस पत्रको प्रकाशित करके असत्य आक्रमणसे दयानंदकी रक्षाकी थी। अधिक क्या, सोमप्रकाशके सम्पादकने स्वयं भी स्वामीजीके प्रति विद्वेषमिश्रित भावका परिचय देनेमें त्रुटि नहीं की, क्योंकि उन्होंने स्वामीजीके सम्बंधमें लिखा था—"यह दिग्विजयके प्रसंगमें प्रवृत्त होकर अब कलकत्तेमें आये हैं। शङ्कराचार्यने दिग्विजयमें प्रवृत्त होकर अद्वैतवादका स्थापन करके जैसा जगत्का उपकार किया था, उनके समान इनका कोई महान् उद्देश्य है वा नहीं, हम नहीं कह सकते; किंतु हमने इनकी विचारप्रणालीका जो प्रवाद सुना है उससे स्पष्ट बोध होता है कि आत्मपाण्डित्य प्रकाश करके ख्यातिलाभ करना ही इनका एकमात्र उद्देश्य है।" सोमप्रकाश वंगाब्द १२७६ फाल्गुन २१।

ideas in the form of small tracts" ❀

इससे विदित होता है कि नवीं जनवरीको वृहस्पतिवारके मध्याह्नमें स्वामीजी भारतीय कौतुकागारमें गये थे। और उसके पश्चात् बाबू केशवचन्द्रजी के घर गये थे। उनका कौतुकागारमें जानेका उद्देश्य प्रधानतः वेद और उपनिषद् ग्रन्थोंका क्रय करना था। केसवचन्द्रके गृहमें दयानन्दके साथ सदालाप करनेके प्रयोजनसे बहुतसे ब्राह्मणगण एकत्र हुए थे एकत्रित ब्राह्मणोंमेंसे अनेकोंने उनसे आर्यजातिके शास्त्र और धर्मविषयमें अनेक प्रकारके प्रश्न किये। उन्होंने जिज्ञासित प्रश्नसमूहका सदुत्तर प्रदान करके जिज्ञासुओंको विमोहित कर दिया। विशेषतः दयानन्दकी वक्तृता और शास्त्रव्याख्याको सुनकर समग्र व्यक्तिमात्र ही विस्मित हो गये। क्योंकि एक कौपीन-कमण्डलधारी संन्यासी योरुपीय विद्यासे सर्वतोभावेन अनभिज्ञ रहते हुए समाज, शास्त्र और धर्म सम्बन्धमें इस प्रकार के मार्जित, उच्च और उदार विचारोंका पोषण कर सकते हैं, यहां तक कि एकमात्र वेदरूप ब्रह्मास्त्रकी सहायताका अवलम्बन करके समाज और धर्म्मसम्बन्धी यावतीय भ्रान्तियोंका निराकरण करनेमें उद्यत हुए हैं—यह देख कर कौन विस्मयाविष्ट न होगा। उपस्थित विषयमें श्रद्धाभाजन श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायने लिखा है:—"केशव बाबूके घर जिस दिन मैंने प्रथम दयानन्दकी वक्तृता सुनी उस दिन एक नई बात मैंने अनुभव की। मैं नहीं जानता था कि संस्कृतभाषामें ऐसी सरल और मधुर वक्तृता हो सकती है। वह ऐसी सहज संस्कृत बोलने लगे कि संस्कृत भाषामें जो व्यक्ति महामूर्ख हो वह भी अनायाससे उनकी बातको समझ लेता था। और एक विषयमें मुझे आश्चर्य हुआ। अँग्रेजी भाषासे अनभिज्ञ हिन्दुसंन्यासीके

❀ The Indian Mirror 1873 January 12.

मुखसे धर्म्म और समाज विषयमें ऐसे उदार विचार मैंने पहिले कभी नहीं सुने थे ÷ । अस्तु । अन्तमें दयानन्दके मन्तव्यामन्तव्य को पुस्तकाकारमें प्रकाशित करके देशमें सर्वत्र प्रचारित करनेके निमित्त अनेकोंने इच्छा प्रकट की । और कोई कोई उस इच्छाको कार्य्यमें परिणत करनेके उद्देश्यसे एक समितिके स्थापन करने पर उद्यत हुए; किन्तु भविष्यमें क्या समिति-स्थापन, क्या स्वामीजीके मन्तव्यामन्तव्यका सङ्कलन, कुछ भी कार्यमें परिणत नहीं हुआ । किन्तु ऐसा न होने पर भी इस प्रकारका प्रस्ताव केशवचन्द्रके पक्षमें साधारण उदारताका परिचायक नहीं है ।

दयानन्द जिस समय कलकत्ता नगर में इस प्रकार वैदिक धर्म्मके विस्तारमें व्यापृत थे । उस समय ब्रह्मसमाजमें माघोत्सव था । माघोत्सवके उपलक्षमें उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण देने के अभिप्राय से श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर महाशय एक दिन रात्रिके समय स्वामीजीके निकट गये । द्विजेन्द्रनाथके साथ दयानन्दकी नाना विषयों पर बातचीत हुई । द्विजेन्द्रनाथ दर्शनशास्त्रों के अनुरागी थे । इससे बोध होता है कि उन्होंने स्वमीजी के निकट प्रधानतः दार्शनिक प्रसंगही उत्थापित किये थे, क्योंकि यह सुना जाता है कि उस समय स्वामीजीने उन्हें यह समझाने की चेष्टाकी थी कि कपिलका सांख्यदर्शन निरीश्वर ग्रन्थ नहीं है । इस प्रकारकी कथा-वार्त्ताके पश्चात् द्विजेन्द्रनाथने अपने आनेका सङ्कल्प प्रकाशित किया । दयानन्दने उनके अभिप्रायको जान कर पहले तो कुछ असम्मति प्रगटकी, परन्तु अन्तमें निमन्त्रणको

÷ श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय प्रणीत "महात्मा दयानन्द सरस्वतीकी संक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ २

स्वीकार कर लिया। *। दयानन्द इस प्रकार निमन्त्रित होकर ४३ वें ब्राह्मोत्सवकी ग्यारहवीं माघको मध्याह्नकालमें पूज्यपाद देवेन्द्रनाथ ठाकुर महोदय के घर उपस्थित हुए। देवेन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्टाचारपरायण पुत्रों ने स्वामीजी के अभ्यर्थना में कुछ भी त्रुटि नहीं की। दयानन्दने उनके घर अनेकोंके साथ असङ्कुचितभावसे धर्मालाप किया। विशेषतः देवेन्द्रनाथके अन्यतम और स्वर्गारूढ पुत्र हेमेन्द्रनाथके साथ आत्माकी स्वाधीन इच्छाके विषयमें विचार हुआ। दयानन्द स्वाधीन इच्छा पक्षपाती थे, यहां तक कि उन्होंने स्वाधीन इच्छाके पक्षमें वैदिक प्रमाणोंका प्रदर्शन करके हेमेन्द्रनाथको विस्मित कर दिया ÷। इसके बाद

*पूर्वोल्लिखित श्रीयुक्त हेमचन्द्र चक्रवर्ती श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनाथके साथ स्वामीजीकेपास निमन्त्रणकेलिये गये थे। उन्होंने कहा है कि ११वीं माघको ठाकुर बाबूके घर उपस्थित होनेकी बात कहने पर दयानन्दने कहा कि इसके लिये मुझे केशव बाबूने भी निमन्त्रित किया था। परन्तु मैंने उनके निमन्त्रणको स्वीकार नहीं किया। ऐसी दशामें आपका निमन्त्रण स्वीकार करके ११ वीं माघको कैसे जा सकता हूँ। इस बातके उत्तरमें जब आदिब्रह्मसमाजके उद्देश्य स्पष्ट करके कहे गये और विशेषतः यह कि वेदादि ग्रन्थोंमें आदि समाजान्तर्गत लोगोंकी प्रगाढ़ श्रद्धा है, तो उन्होंने निमन्त्रण ग्रहण कर लिया।

÷ श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृतिने अपने तीनतला वाले घरमें कुछ दिन ठहरनेके लिये अनुरोध किया, तो दयानन्दने कहा कि संन्यासीके लिये गृहस्थाश्रममें वास करना विधेय नहीं है। उनके घरके आँगनमें जो मण्डप है दयानन्द उस मण्डपके मध्यस्थित वेदिको देखकर, विशेषतः वेदिके चारों ओर लिखे हुए संस्कृत श्लोकोंको पढ़ कर, अत्यन्त आनन्दित हुए थे। इन

दयानन्दने यहांके कई एक स्थानोंमें कई एक वक्तृतायें दीं फर्वरी मासकी २३ वीं तारीखको अपराह्नमें स्वर्गीय गौराचान्ददत्तके घर के आँगनमें 'ईश्वर और धर्म' विषय पर उनकी एक वक्तृता हुई थी ❀। उस वक्तृतामें कलकत्तेके सैकड़ों लोग उपस्थित हुए थे। उसके पश्चात् मार्चकी नवीं तारीखको वराहनगरके नाइटस्कूल (नैशिक पाठशाला) में एक और वक्तृता हुई थी। इस वक्तृताके सम्बन्धमें वराहनगरके एक सिक्षित व्यक्तिने इस प्रकार लिखा थाः—

'On Sunday, the 9th instant. a lecture was delivered by Pandit Dayananda Saraswati on the 'Vedic Doctrines' at the premises of the Barhanagore Night School. A large number of respctable Native gentlemen were prssent on the occassion. The lecturer, dressed with a silken cloth, took his seat on tht pulpit in the most solemn posture and commenced his duty at half past three P. M. The lecture opened his address with a prayer to the Almighty Father, and then with a flowing, sweet

---

सब कारणोंसे दयानन्द आदिब्रह्मसमाज और उसके प्राणस्वरूप पूज्यपाद श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर महाशयके प्रति आस्थावान् हो गये थे। प्रमोदकाननके दालानके भीतर श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर और श्रीयुक्त केशवचन्द्रसेनकी एक २ प्रतिकृति लगी हुई थी। दयानन्दने उन दोनों प्रतिकृतियोंको देख कर पहिली प्रतिकृतिके सम्बन्धमें कहा था कि—"इनको देख कर बोध होता है कि यह ऋषिभावके स्वभावतः अनुरागी हैं।

❀ 'The Iudian Mirror 1873 Februry 22.

and easy Sanskrit continued for more than three hours. He proved in simple argument from the Vedas the existense of the unity of God, the iniquity of caste-distinctions, and the injury done by early marriages. His oratory is most wonderful. His language is simpl, yet majestic. From his words we can observe that he is not only a man of extensive learning but also a man of deep reflection and vast observation. His arguments are forcible and strong, and his spirit is fearless and brave. I hope that my educated friends of Calcutta will make it a point to attend his future lectures."$

उपर्युक्त अंश का यह मर्म है—"पण्डित दयानन्द सरस्वती ने मार्च की नवीं तारीख रविवारको अपराह्नके साढ़े तीन बजेके समय वैदिकमतके सम्बन्ध में एक वक्तृता दी। वक्तृता देनेके स्थानमें बहुतसे शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित हुए थे। वक्ता महाशयने वेदिके ऊपर गम्भीरभावसे बैठकर प्रार्थना करके अपना कार्य आरम्भ किया। वक्तृताके समाप्त होनेमें तीन घण्टे से भी अधिक लगे। यद्यपि वक्तृता संस्कृत भाषामें थी, तो भी सरस्वती महाशयकी संस्कृत अत्यन्त सरल मधुर और धाराप्रवाहिनी थी। उन्होंने वैदिक प्रमाणोंका अवलम्बन करके ईश्वरके एकत्व और जातिभेद और बाल्यविवाहकी अपकारिताको बहुत सुगमतासे सिद्ध किया। दयानन्दकी वाग्मिता अत्यन्त असाधारण है। उनकी वक्तृता सुननेसे वह केवल सर्वशास्त्रदर्शी ही नहीं बोध होते हैं, प्रत्युत उनके व्याख्यानको सुन कर वह एक विलक्षण विचारशील और भूयोदर्शी व्यक्ति जान पड़ते हैं।

$ The Indian Mirror 1873 March 15,

दयानन्दकी युक्ति नितान्त तीव्र और प्रबल और उनका हृदय सर्वतोभावेन भयशून्य है। हम आशा करते हैं कि कलकत्ताके शिक्षित व्यक्तिगण भविष्यत्में उनकी वक्तृता सुननेमें सयत्न रहेंगे।" किन्तु शोक है कि कलकत्तेमें उनकी और कोई वक्तृता नहीं हुई। केवल इतना ही नहीं, कलकत्तेमें स्वामीजी का जिस प्रकार सम्भाव होना उचित था और उनके उठाये हुए लोक हितकर कार्योंकी ओर जिस प्रकारके उत्साह और अनुरागको प्रदर्शन करना कर्त्तव्य था, कलकत्ताके निवासिगण उस प्रकारके सम्मानदान और अनुरागप्रदर्शनमें प्रवृत्त नहीं हुए। कारण यह कि कलकत्ता स्वार्थता की तीव्र अग्निमें नितान्त ही प्रतप्त था। इसीलिये पूर्वप्रस्तावित वेदविद्यालयके सम्बन्धमें भी स्वामीजी यहाँ कुछ नहीं कर सके। यद्यपि उन्होंने स्थानीय सुधीसमाजके सम्मुख वेदविद्यालयका प्रसङ्ग उठाया था, और उसकी परिचालन-पद्धतिके विषय में अपने मनोभावको प्रकट करनेमें संकोच नहीं किया था, तो भी उनमेंसे किसीने उनके इस प्रस्तावको कार्यमें परिणत करनेके लिये उत्साह प्रदर्शन नहीं किया ❀। इसी

❀ उपस्थित विषय पर 'इण्डियन मिरर' पत्रके सम्पादकने भी ऐसा ही लिखा था। यथाः—"His project of a Vedic Shcool in this city has not, it seems, met with public support." (Indian Mirror 1873 March 9.) अर्थात् "ऐसा प्रतीत होता है कि उन (दयानन्द) के वैदिकपाठशाला स्थापित करनेके प्रस्तावका इस नगरमें सर्वसाधारणने समर्थन नहीं किया है।" वेदोंके पठनपाठनके बिना संस्कृत-शिक्षा किसी प्रकार कार्यकर नहीं है—यह स्वामीजीने यहांके अनेक लोगोंसे कहा था। उस समय छोटे लाट क्यम्बेल साहबने संस्कृतकालिज स्थापन करनेका प्रस्ताव किया था। यह सुन कर

हेतुसे इस विषयमें स्वामीजी को कुछ खिन्न होना पड़ा। जो स्थान विशाल भारतसाम्राज्यके भीतर शिक्षा और सभ्यताकी केन्द्रभूमि कहला कर स्पर्धा करता हो, उस स्थानमें वेदविद्याके सम्बन्धमें इस प्रकारकी विमुखताके प्रदर्शन करनेपर कौन सहृदय व्यक्ति दुःखित नहीं होगा। अस्तु। इस प्रसङ्गमें हम एक कौतुकावह कथाका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते। स्वामीजीको देख कर और उनके उपदेशादिको सुनकर यहांके कोई कोई अल्पबुद्धि व्यक्ति आपस में ऐसी बातें करते थे कि यह निश्चय ही कोई जर्मनदेशीय मनुष्य हैं, केवल हिन्दुधर्म्मको नष्ट करनेके उद्देशसे ही संन्यासी का रूप धारण करके आये हैं।"

इस प्रकार तीन माससे कुछ अधिक दिन कलकत्ता नगरमें अतिवाहित करके दयानन्द हुगलीमें आये। वहां श्रीयुक्त बृन्दावनचन्द्र मण्डलका उद्यान उनके ठहरनेके लिये निरूपित हुआ। रेवरेण्ड लालविहारीदे उस समय हुगली-कालिजके अध्यापक थे। लालविहारी ईसाई धर्मके एक विशिष्ट परिपोषक प्रसिद्ध थे। दयानन्दकी उपस्थितिका संवाद सुनकर वह उनके पास विचारके लिये आये। स्वामीजीके साथ उनका वर्णभेद विषयपर विचार हुआ। विचारमें वह अति अल्प समयमें ही पराजित हो गये।

उन्होंने कहा था कि इस प्रकारके संस्कृत कालिज रहनेसे क्या लाभ है। मूलायोडमें स्वर्गीय प्रसन्नकुमार ठाकुरका जो संस्कृत विद्यालय है उसमें किसी प्रकार वेदों के पठनपाठनकी व्यवस्था हो सकती है—इस विषयमें स्वामीजीने नेशनल पत्रिकाके सम्पादक नवगोपाल मित्र महाशयको एक प्रस्ताव लिख कर दिया था। आयुर्वेदकी रक्षा पर भी उनकी विशेष दृष्टि थी। ऐसा सुना जाता है कि इस विषयमें उन्होंने डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार के साथ विचार किया।

उसके पश्चात् मण्डल बाबूके घर दयानन्दकी एक दिन वक्तृता हुई। उस वक्तृता के स्थानमें बङ्गालीसाहित्यके सुपरिचित सेवक श्रीयुक्त अक्षयचन्द्र सरकार महाशय उपस्थित थे। उन्होंने उस वक्तृताके सम्बन्धमें ग्रन्थकारको लिखा था कि "हमारे सामने चूंचड़ाके मण्डलोंके घरमें पण्डितवरने एक दिन अपराह्नमें वक्तृता दी थी। उस समय भट्टपल्लीके कई पण्डित उपस्थित थे। उनकी अति सहज संस्कृत बोलनेकी क्षमताको देख कर हमने उनकी मन ही मनमें सौ वार प्रशंसा की थी। इससे पहले हमारा यह विश्वास नहीं था कि ऐसा सहज संस्कृतमें अति कठिन विषयोंका व्याख्यान हो सकता है। उनके हाव भावसे उनकी भाषाको सहजमें ही अनेक लोग समझ जाते थे।"

उस सभामें आनेके लिये ताराचरण तर्करत्नसे भी अनुरोध किया गया था। ताराचरण काशीराजके सभापण्डित होने पर भी भट्टपल्लीके रहने वाले थे। अस्तु। अनुरोध करने पर भी उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया; किन्तु स्वामीजीकी अविद्यमानतामें अपनी शास्त्रज्ञताका घमण्ड करने लगे। जब एक ओर सभामें आकर उन्होंके शास्त्रविचार नहीं किया, और दूसरी ओर अपनी विद्याबहुलताके प्रदर्शनमें प्रवृत्त हुए, तो वहांके अनेक लोगोंने इच्छा की कि तर्करत्न महाशय अन्ततः केवल एक वार ही स्वामीजीके सामने विचारार्थी रूपसे उपस्थित हों। ❀। अन्तमें अनेकोंकी इच्छा और अनुरोधके अनुसार वह दयानन्दके साथ विचार करने पर सम्मत हुए। दोनोंके सुविधा पर ध्यान रखके विचारका दिन स्थिर होगया। यही स्थिर हुआ कि मण्डल बाबूके

❀ जब दयानन्द प्रमादकाननमें ठहरे हुए थे तब पण्डित ताराचरणके एक दिन राजा यतिन्द्रमोहन ठाकुरके पास उपस्थित

जिस उद्यानमें दयानन्द ठहरे हुए थे उसी उद्यानमें विचार-सभा का अधिवेशन हो। तर्करत्न महाशय भट्टपल्लीके कई पण्डितोंके साथ विचारके दिन संध्या समय स्वामीजीके निकट उपस्थित हुए। वह दिन मङ्गलवार था। सुतरां मङ्गलवार सायंकालको ही ताराचरण तर्करत्नके साथ दयानन्दका हुगलीमें विचार हुआ था। श्रीयुक्त भूदेव मुखोपाध्य प्रभृति कई विश्रुतनामा व्यक्ति भी विचारस्थलमें उपस्थित थे। विचार स्थलमें किसी प्रकारकी वाद-वितण्डा न होने पावे, विशेषतः यथोचित धीरता और गम्भीरताके साथ विचार-कार्य्य सम्पादन हो—इस पक्षमें दोनों ही एकमत थे। अधिकिन्तु, स्वामीजीने न्यायशास्त्रके प्रवर्तक महर्षि गोतमके पथके अनुसार विचारकार्य करनेका प्रस्ताव किया। ताराचरण भी उससे सहमत हो गये। उसके पश्चात् ग्रन्थोंकी प्रामाणिकताकी बात उठी। इस सम्बन्धमें उन दोनोंने कुछ देर विचार किया और दोनोंने चारों वेद, छः वेदाङ्ग और छः दर्शनको प्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार कर लिया। विचार्य्य विषयके प्रसंगमें तर्करत्न महाशयने मूर्तिपूजा की विधेयताका पक्ष अवलम्बन किया, और स्वामीजी वैदिक प्रमाणोंके अनुसार उसे अविधेय बतला कर प्रतिवाद करनेके निमित्त अग्रसर हुए। उसके पश्चात् विचार आरम्भ हुआ। ताराचरणने अपने पक्षके समर्थन

होने पर यतीन्द्रमोहनने उनसे स्वामीजीके साथ विचार करनेका अनुरोध किया था। इस अनुरोधपर ताराचरण कुछ संकटमें पड़ गये थे क्योंकि वह राजाके अनुरोधको भी अस्वीकार नहीं कर सकते थे और स्वामीजीके साथ विचार करनेकी भी इच्छा नहीं रखते थे। सुतरां विचारदिनके सम्बन्धमें आज कल परसों करके अन्तमें कलकत्तासे चले आये थे। किन्तु यहां पुनः ऐसा करनेका उपाय नहीं था।

में कहा—"पतञ्जलिसूत्रम् 'चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्क' इति व्यासवचनं अर्थात् पातञ्जलसूत्रमें कहा गया है कि स्थुल पदार्थके अवलम्बनके बिना चित्त स्थिर नहीं हो सकता। इसी कारण उपासनाके समय पाषाणादिकी मूर्ति आवश्यक है—यह व्यासोक्ति है।"

दया०—आपने जो कहा है वह ठीक पतञ्जलिका सूत्र नहीं है। पतञ्जलिका सूत्र यह है—"विषयवतीवा प्रकृतिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निवन्धनी इति।" अर्थात् किसी वस्तुका अवलम्बन करके चित्तकी स्थिरता सम्पादनकी जा सकती है। इसी कारण व्यासदेवने व्याख्यामें लिखा है—'नासिकाग्रे धारयत इत्यादि।' इसका अर्थ यह है कि नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टिपात करनेसे चित्त स्थिर किया जा सकता है। आपके उच्चारणकी अशुद्धि और पाठकी अशुद्धिको देखकर बोध होता है कि आप पातञ्जल दर्शन से उत्तम रूपसे परिचित नहीं है। तब आपने उल्लिखित सूत्रको पतञ्जलिप्रोक्त कह कर किस प्रकार व्यासका कहा? किन्तु सूत्र न पतञ्जलिप्रोक्त है न व्यासकथित। और यदि वह पतञ्जलिप्रोक्त हो, तो फिर व्यास कथित कैसे हो सकता है; और व्यास कथित हो तो पतञ्जलिप्रोक्त कैसे हो सकता है? इसलिये इससे आप अपना खण्डन स्वयं ही करते हैं।

तारा०—स्वरूपसाक्षाद्वती प्रज्ञा आभोगः सच स्थूलविषयत्वात् स्थूल इत्यादि।" अर्थात् जो चक्षुके द्वारा देखा जाय वह मनमें स्थित हो जाता है और चक्षुद्वारा स्थूल पदार्थ ही देखा जाता है, इसलिये मन भी स्थूल पदार्थको ही धारण करता है। सुतरां प्रतिमा आदि स्थूल पदार्थ ही उपासनाके उपयोगी हैं।

दया०—आपने विचारके आरम्भमें स्वीकार किया है कि वेदादि सत्य ग्रन्थोंके भिन्न और किसी ग्रन्थको प्रमाणिक कह कर

ग्रहण नहीं करेंगे, तो फिर अब आप वाचस्पतिके वचनको उद्-घृत करके आत्मपक्षका समर्थन क्यों करते हैं; और जागृत अवस्था में मनुष्यको यावतीय वस्तुओंके स्थूलतत्वका ज्ञान होता है, परन्तु स्वप्नावस्थामें वस्तुओंके स्थूलतत्वका ज्ञान नहीं रहता। ऐसा होने से आपके कथनानुसार स्वीकार करना पड़ता है कि स्वप्नावस्थामें मनुष्यको वस्तुज्ञान भी नहीं रहता। किन्तु यह सत्यके विरुद्ध है। आपनेपहले ही कहा है कि वृथा कथामें विचारका समय नहीं खोवेंगे, किन्तु अब आप ऐसा ही कर रहे हैं। यदि स्थूल वस्तु के अतिरिक्त किसी प्रकारसे चित्त स्थिर नहीं होता, तो संसारमें प्रतिमाके अतिरिक्त तो अनेक वस्तु हैं। फिर आप प्रतिमा ही को लेकर इतनी खेंचातानी क्यों करते हैं?

तारा०—यदुक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिध्यत्येतस्याः स्थूलत्वात्—अर्थात् आपके कथनसे ही मूर्तिपूजा सिद्ध होती है, क्योंकि मूर्तिभी एक स्थूल पदार्थ है।

दया०—एव एवको वारम्बार कहनेसे विदित होता है कि आपका संस्कृतका ज्ञान, नितान्त अल्प है, इसीलिये पाण्डित्यका अभिमान करते हैं? फलकथा, उपासना यदि सामीप्यबोधक है, तो आप लोग इस लोकसे वैकुण्ठलोकके विष्णुकी उपासना कैसे करते हैं और शिल्पिगण पाषाणादि पदार्थ द्वारा किस प्रकारसे वैकुण्ठलोकवासी विष्णुकी मूर्ति निर्माण कर सकते हैं?

तारा०—"अथ स यदा पितृन्नावाह्यति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते" इस वचनके द्वारा लोकान्तरवासी व्यक्तियोंकी भी उपासना सम्भव है।

दया०—इस वचनके साथ उपस्थित विषयका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस वचनका तात्पर्य यह है कि अष्टैश्वर्य सम्पन्न योगी इच्छाके अनुसार सब स्थानोंमें जा सकते हैं—इच्छा करने पर वे

पितृलोकमें जाकर आनन्द उपभोग करते हैं। सुतरां इसमें लोकान्तरस्थित वस्तुओंकी उपासनाके सम्बन्धमें कोई बात नहीं आती।

इस प्रकार दयानन्दके सामने पदे २ विपर्यस्त होकर अन्तमें तर्करत्न महाशय कह उठे—"उपासना मात्रैव भ्रममूलम्" अर्थात् उपासनामात्र ही भ्रममूलक है।" यह सुन कर स्वामीजीने कुछ हँस कर कहा—"मूर्तिपूजाकी विधेयताके प्रतिपादनमें असमर्थ होकर अब आप उपासनाको ही भ्रममूलक कहते हैं।" अस्तु। पण्डित ताराचरणके पराभूत होनेके साथ ही उस दिनकी सभाका कार्य समाप्त हो गया। सभाके कार्यके अन्तमें बाबू वृन्दावनचन्द्र और बाबू भूदेव मुखोपाध्याय प्रभृति कहने लगे कि ताराचरण मूर्तिपूजाका समर्थन करने आये थे, परन्तु स्वयं खण्डन करके चले गये। कुछ देर पीछे ताराचरण सभास्थलसे उठ कर ऊपर जानेके उद्देश्यसे सोपान (सीढ़ी) पर चढ़ते थे कि इतनेमें स्वामी जीने जाकर उनका हाथ पकड़ लिया और हाथ पकड़े हुए दोनों ऊपर चले गये। इसके पश्चात् स्वामीजीके सद्भावसे पूछने पर तर्करत्नने सबके सामने सरलभावसे कह दिया—"मूर्तिपूजा मिथ्या तो है ही परंतु हम तो उदरपूर्तिके लिये इसका समर्थन करते हैं। ऐसा न करें, तो महाराजा काशी बिना विलम्ब ही बाहर निकाल दें।" तर्करत्नके मुखसे ऐसी बातको सुनकर, अनुमान होता है कि, सारे ही उपस्थित व्यक्ति कुछ विस्मित हुए होंगे। किन्तु ताराचरणके समान इस देशके अनेक तर्करत्न अवस्थादोषसे वा अर्थवशासे मूर्तिपूजाका अनुमोदन कर रहे हैं—यह कहना बाहुल्यमात्र है।

सप्तम परिच्छेद ।

बङ्गदेशसे प्रस्थान,—छपरा नगरमें ब्राह्मणोंके साथ विचार,—डुमरांवमें शास्त्रार्थ,—काशीमें वैदिक पाठशालाका स्थापन,—कानपुर प्रभृतिमें भ्रमण करके इलाहाबादमें गमन,—वहां वेदादि विषयमें आलोचना और धर्म्मव्याख्या ।

दयानन्द कलकत्ता और हुगलीके अतिरिक्त बङ्गदेशके किसी और स्थानमें नहीं गये । परन्तु कलकत्ता आनेसे पहले वह मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत बालुचर नामक स्थानमें कुछ दिन रहकर आये थे * । इसके पश्चात् वह इस देशमें फिर कभी नहीं

---

* इस पुस्तकके प्रथम भाग × के प्रकाशित होनेके पश्चात् बालुचरनिवासी थानसिंह नामक एक जैनधर्म्मावलम्बी व्यक्तिके साथ ग्रन्थकारका साक्षात् हुआ । साक्षात् होने पर विशेषतः पहलेसे ही परिचित होनेसे पुस्तकरचयिताने दयानन्दके सम्बन्ध में थानसिंहसे कई बातें पूछीं । उनका जो उत्तर थानसिहने दिया वह यहां प्रकाशित किया जाता है । उन्होंने कहा, "ठीक किस

× ग्रन्थकारने यह पुस्तक बंगलामें दो भागोंमें प्रकाशित की थी । प्रथम भागमें अवतरणिका और छः परिच्छेद थे; द्वितीय भाग सप्तम परिच्छेदसे आरम्भ होता था । परन्तु अनुवादमें पुस्तकको दो भागोंमें विभक्त करना उपयोगी नहीं समझा गया । (अनुवादक)

आये। सुतरां बंगालेके विशाल क्षेत्रके भीतर केवल बालुचर, हुगली और कलकत्तामें ही स्वामीजी आये—यही अनुमान होता है। किन्तु वह बङ्गदेशमें फिर क्यों नहीं आये ?

कोई कोई कहते हैं कि स्वामीजी बङ्गदेशसे वीतश्रद्ध होगये थे। बङ्गवासियोंके चरित्रमें भ्रष्टाचारिताका प्राचुर्य्य देख कर उन्होंने

सम्वत्‌में दयानन्द सरस्वती बालुचर आये थे—यह हम नहीं कह सकते। सम्भवतः वह कार्तिक मासमें यहां आये थे। यहां आकर प्रथम वह एक मिर्जापुर निवासी वैश्य की कोठीमें ठहरे। मैं उसके गुमाश्तेसे संवाद पाकर उनके पास गया और वहांसे उन्हें अपने उद्यानमें ले आया। हमारे उद्यानमें वह प्रायः एक मास रहे। स्वामीजी गेरुवे वस्त्रधारी संन्यासीके समान आये थे। उस समय उनके शरीर में विभूति लगी हुई थी। उनके साथ एक ब्राह्मण था। वह स्वामीजीके साथ रसोई करता था। स्वामी जीको देखने हमारे उद्यानमें अनेक लोग आते थे, यहां तक कि उनके साथ शास्त्रालाप करनेके लिये मुर्शिदाबाद और बहरामपुर तकसे लोग आते थे। मैं उनके साथ प्रायः जैनधर्मके विषय पर ही बातचीत किया करता था, क्योंकि मैं स्वयं जैन था। दयानन्द उस समय मूर्तिपूजाका प्रतिवाद करते थे, एकमात्र परमेश्वर को मानते थे, सब ग्रन्थोंसे वेदको श्रेष्ठ कहते थे और उसीके साथ वेदोंकी प्रचलित टीका और भाष्य समूहको भी भ्रान्तिपूर्ण बतलाते थे। उनकी बातोंसे उस समय विदित हुआ था कि वह स्वयं एक वेदभाष्यका प्रकाश करेंगे उद्यानके मालियोंसे मैंने सुना था कि स्वामीजी मध्याह्नके समय भोजन करके कुछ देर टहलते थे, रात्रिमें केवल एक प्रहर सोते थे और चार बजे उठ कर प्रातः काल तक ध्यानमें बैठे रहते थे भारतवर्षका किस प्रकार कल्याण हो—स्वामीजी केवल यही सोचते रहते थे। मैंने उनके समान निःस्वार्थ देशहितैषी संन्यासी कहीं नहीं देखा।"

नितान्त विरक्ति प्रकट की थी। विशेषतः पदे पदे बङ्गालियोंकी केवल वकवादिताका परिचय पाकर वह बङ्गभूमिके शुभाशुभके सम्पर्कमें एक प्रकारसे निराश होकर गये थे। परन्तु हम इस बातको सत्य मान कर ग्रहण नहीं कर सकते। क्योंकि जो सारे भारतवर्षके सर्वप्रकार की शुभचिन्तामें ही अहोरात्र रत रहते थे, जो हिन्दुसाधारणका सर्वतोभावेन मङ्गलसाधन करनेके निमित्त तपोरत रहते थे, उनके पक्षमें एक अङ्गका परित्याग करके दूसरे अङ्गका पुष्टिसाधन करना, बङ्गालेके सम्बन्धमें उदासीन रह कर पञ्चनदकी परिचर्य्यामें शक्ति नियोजन करना किसी रूपसे भी सम्भावित नहीं है। अस्तु। जब वह फिर बङ्गदेशमें नहीं आये, तब यही विश्वास करना होता है कि बङ्गदेशसे वा बङ्गदेशवासियों के साथ उनका यही शेष वा समस्त सम्पर्क हुआ था।

स्वामीजी बङ्गभूमिसे विदा लेकर हुगलीसे बिहारकी ओर गये। छपरा बिहारके भीतर एक प्रसिद्ध नगर है। वह बिहारमें प्रविष्ट होकर छपरा नगरमें गये। छपराके शिवगुलाम नामक एक सम्भ्रान्त भूपति (जमींदार) ने स्वामीजीको बुलाया था। शिवगुलामने यथोचित यत्नके साथ उनके रहन-सहनका प्रबन्ध कर दिया। स्वामीजीके आनेका सम्वाद शीघ्र ही सारे छपरामें फैल गया। दयानन्दके आने पर, विशेषतः उनकी ओर शिव-गुलामके प्रगाढ़ श्रद्धाभक्ति प्रदर्शन करनेपर, छपराके ब्राह्मणगण बहुत कुछ रोषाविष्ट हुए, यहां तक कि नगरमें जहां तहां यह कह कर कि एक नास्तिक आया है। स्वामीजीकी निन्दा करने लगे।

इस ओर वहांके नाना श्रेणीके लोग दयानन्दके पास आने लगे। प्रातःकाल और सन्ध्यामें ही लोगोंका अधिक समागम होता था। आये हुए लोगोंमें से कोई कोई कौतूहलवश होकर प्रश्न करते थे; परन्तु उनमें से अनेक दयानन्दकी तेजोदीप्त मूर्त्ति,

प्रसारित ललाट, प्रतिभामय मुखमण्डल और आम्नठ्याख्याके एक प्रकारसे अपूर्व ढंगको देख कर ही एक दम चुप हो जाते थे। इस प्रकार छपराके अनेक लोग स्वामीजीकी ओर आकृष्ट होगये। किन्तु वहांके जो धर्मजीवी ब्राह्मणगण उनके आनेके दिनसे ही नाना प्रकारके निन्दावादमें नियोजित हो गये थे, उन्हें दयानन्द का इस प्रकारका प्रताप और प्रतिष्ठा तनिक भी सह्य नहीं हुआ। इसी कारण वे स्वामीजीके प्रतिकूल समरघोषणा करनेके अभिप्रायसे दल बांध कर पण्डित जगन्नाथ नामक एक प्रसिद्ध पुरोहित के घर गये। परन्तु जगन्नाथ उनकी सहायता करनेमें सम्मत नहीं हुए, प्रत्युत नाना प्रकारसे शास्त्रोंके वचनोंको पढ़ कर उन्होंने आये हुए ब्राह्मणोंको समझा कर कहा कि नास्तिक के मुख देखने से ही महापातक होता है, इसलिये दयानन्दके समान एक विशिष्ट नास्तिकके सम्मुख होकर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होना उनके लिये किस प्रकारसे विधेय हो सकता है? ब्राह्मणोंका दल जगन्नाथ पुरोहितके मुखसे इस प्रकार की आशाके प्रतिकूल बातको सुनकर हताश हो गया और सरस्वती महाशय के प्रतिकूल फिर जानेका आयोजन करना उचित है वा नहीं—इस विषयमें परामर्श करने लगे। क्रमशः यह बात स्वामीजीके कानों तक भी पहुँच गई। स्वामीजी यह अच्छी तरहसे जान गये कि जिससे उनके साथ शास्त्रार्थ न करना पड़े, इसीलिये जगन्नाथ पूर्वोक्त प्रकारकी चातुरीका अवलम्बन करते हैं। इसलिये उन्होंने विरोधी ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि—"यदि हमारे समान नास्तिकके सम्मुख होनेसे जगन्नाथ पण्डितको पातक लगता है, तो वह एक यवनिका (परदे) के पीछे बैठ कर हमारे साथ अनायाससे शास्त्रार्थ कर सकते हैं।" यह बात सुनकर विरुद्ध पक्षके ब्राह्मण कुछ आश्वस्त हुए, और अविलम्बसे पुरोहित पुङ्गवके पास जाकर यवनिकाके

पीछे बैठ कर शास्त्रार्थ करनेकी व्यवस्था की। परन्तु जगन्नाथने उस प्रस्तावसे भी सहजमें सम्मत होना नहीं चाहा। सम्मत न होने ही की तो बात थी, और सम्मत न होनेसे भी जगन्नाथका सम्मान न रहता था, क्योंकि वह छपरा नगरमें पण्डित कहला कर प्रसिद्ध थे और विशेषतः पुरोहित कहला कर हिन्दुसाधारण के निकट पूजित थे। और भी एक बात थी। जब विचार-कार्य सर्वतोभावेन पुरोहित महाशयकी इच्छानुकूल ही सम्पादित होने की व्यवस्था होती थी, तब स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थमें प्रवृत्त न होनेसे जगन्नाथकी प्रतिष्ठा वा प्रतिपत्तिकी रक्षाके विषयमें विशेष विघ्न होगा, यह बोध होता है, सब ही जानते थे। इस सब विषय पर विचार और आलोचना करके जगन्नाथ पण्डित अन्तमें पूर्वोल्लिखित प्रस्तावसे बिना सहमत हुए न रह सके। इसलिये स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ अनिवार्य हो गया। तब प्रतिपक्षी ब्राह्मण घमण्डके साथ आनन्दका प्रकाश करने लगे।

निर्दिष्ट दिन के निर्दिष्ट समय पर स्वामी दयानन्द सभाके स्थानमें उपस्थित हुए। उनके उपस्थित होने पर शब्दायमान सभागृहने निस्तब्ध भाव धारण कर लिया। पूर्वोल्लिखित प्रस्तावके अनुसार स्वामीजीके सामने यवनिका (परदा) टांगी गई। जग-न्नाथ पुरोहितने यवनिकाके भीतर आसन ग्रहण किया। सभामें आये हुए सभी लोग इस विचित्र सभाके विचित्र व्यापारको देखनेके लिये उत्सुक होने लगे। प्रथमतः स्वामीजीने ही प्रश्न उठाया। प्रश्न स्मृतिशास्त्रके एक प्रसङ्ग को लेकर किया गया था। जिज्ञासित प्रश्नके उत्तरमें जो कुछ जगन्नाथ ने कहा वह सदुत्तर नहीं था। अधिकन्तु, बोलनेके समय उन्होंने बहुतसे अशुद्ध शब्दोंका व्यवहार किया। अशुद्ध वा व्याकरणदूषित पदोंका प्रयोग पण्डितोंके कानमें बड़ा ही क्लेशदायक होता है। इसी

कारण दयानन्द उनकी भाषाकी अशुद्धि और अनभिज्ञता दिखाये बिना न रह सके। इस पर श्रोताओं के मनमें सन्देहका संचार हुआ, और सभामें उपस्थित सब ही जान गये कि जगन्नाथ पण्डितका पाण्डित्य का अभिमान एक असार अभिमान है। जगन्नाथ स्वयं ही अप्रतिभ हो गये, लज्जाभिभूत हो गये, और स्वामीजीकी शास्त्रदर्शिताके सामने किसी न किसी प्रकार शास्त्रीय कथाकी अवतारणा करने चले जाना उनके पक्षमें सर्वतोभावेन धृष्टताका परिचायक है—यह समझ कर मन ही मनमें क्षुण्ण होने लगे। सुतरां यवनिकाके भीतर चुप बैठनेके अतिरिक्त जगन्नाथको और कुछ कार्य न रहा। सभाकी ऐसी अवस्थामें सरस्वती महाशय चुप न रह सके। उन्होंने गम्भीर स्वर से सभामण्डलको कम्पित करके आर्यशास्त्रोंकी व्याख्या आरम्भ करदी, नाना प्रकारकी कथाओंकी अवतारणा करने लगे। व्याख्या-कार्य में प्रायः ४ घण्टे अतिवाहित कर दिये। सभामें उपस्थित सब ही लोग विमोहित हो गये, और छपरानगरमें एक कोलाहल मच गया कि आर्यधर्म की इस प्रकार की अद्भुत व्याख्या कभी किसी ने नहीं सुनी। परन्तु इससे विरुद्ध मतावलम्बी ब्राह्मणोंका ईर्ष्यानल एक दम जल उठा। यहां तक कि जब उन्होंने समझ लिया कि स्वामीजीको पराभूत करनेकी और कोई सम्भावना नहीं है, तब वे बारंबार यह चीतकार करने लगे कि वेदोंकी निन्दा होती है। आजीव-सर्वस्व ब्राह्मणोंके इस प्रकारके आकस्मिक चीतकार और अब्राह्मणोचित व्यवहारसे सभामें आये हुए सारे ही मनुष्य नितान्त विरक्त हो गये, विशेषतः सभागृहसे शीघ्र ही चले जानेके लिये उनसे अनुरोध करने लगे। तब ब्राह्मण लोग सभास्थलका त्याग किये बिना न रह सके। परन्तु उनमें जो अधिकतर उद्धत वा अभद्रप्रकृतिके मनुष्य थे वे यह कहते हुए कि "स्वामीजी जब

मार्गमें मिलेंगे, तो उन्हें पत्थरोंसे और छुरीसे मार डालेंगे, शीघ्रता से पलायमान हो गये।

स्वामीजी छपराके विद्यालयमें एक दिन उपस्थित हुए। विद्यालयके बालकवृन्द व संचालक आदि दयानन्द के आगमनसे अत्यन्त आनन्दित हुए और उनके प्रति सम्भ्रम वा सम्मान प्रदर्शन करने में कुछ भी त्रुटि नहीं की। इस प्रकार स्वामी जी छपरा नगरमें एक पक्षके लगभग रह कर दानापुर चले गये। दानापुरसे डुमरांवमें आये। डुमरांव विहारके भीतर कोई प्रधान नगर न होने पर भी महाराजाकी राजधानीके नामसे प्रसिद्ध स्थान है। डुमरांवमें दयानन्द सर्वथा अपरिचित नहीं थे, क्योंकि इससे पहले वह एकबार वहां आये थे। कलकत्ता यात्राके समय वह डुमरांवमें नागाजीके साथ बातचीत करके गये थे। नागाजी एक साधु थे। वे नागाजीके मित्र और नामसे भी प्रख्यात थे। अनेक उन्हें साधुराम नामसे भी सम्बोधन करते थे। वहां दुर्गाप्रसाद परमहंस नामक एक व्यक्ति की पाण्डित्य विषयमें ख्याति थी। दयानन्दने इस यात्रामें डुमरांवमें आकर दुर्गाप्रसाद के साथ शास्त्रार्थ किया। उनके शास्त्रार्थसम्बन्धमें डुमरांवमें एक प्रबल आन्दोलन हुआ। परन्तु शास्त्रार्थका परिणाम क्या हुआ— इस विषयमें वास्तविक समाचार कुछ नहीं जाना जाता। परलोक-गत दीवान लाला जयप्रकाश लाल ने दयानन्दके पास आकर नाना प्रश्न किये। स्वर्गीय महाराज राधाप्रसादसिंह भी धर्मालाप करने के अभिप्रायसे स्वामीजीके पास आये थे। किन्तु डुमरांवमें स्वामीजी और अधिक समय तक न रह सके, क्योंकि काशीमें, शीघ्र आना उनके लिये आवश्यक हो गया।

स्वामी दयानन्द वैदिकपाठशालाके बड़े पक्षपाती थे। उनके समान वैदिकपाठशालाओंके पक्षपाती वा परिपोषक और किसीने

इस देशमें वर्तमान समयमें जन्म ग्रहण नहीं किया। वह जिस प्रकार वेदादि आर्षग्रन्थोंका पठन-पाठन आवश्यक वा अपरिहार्य्य मानते थे, उस प्रकार और किसीको मानते हुए हम नहीं देखते। इसी कारण वैदिक पाठशालाके स्थापनमें उनका अपरिसीम उत्साह था। उन्होंने फर्रुखाबाद प्रभृति स्थानोंमें कई एक वैदिक विद्यालय स्थापित किये थे, परन्तु उनसे उनकी सम्यक् रूपसे तृप्ति नहीं हुई थी। अनेक कारणोंसे काशीमें एक वैदिकपाठशाला स्थापनके लिये उन्होंने सङ्कल्प किया था। यह शुभ सङ्कल्प स्वामीजीके हृदयसे एक दिनके लिये भी अन्तर्हित नहीं हुआ। इसलिये वह प्रथमवारके समान इस वार भी आकर काशीमें वैदिकपाठशालाके स्थापनार्थ बद्धपरिकर हो गये। प्रथमवार स्वामीजीकी चेष्टा सार्थक नहीं हुई थी; परन्तु इस वार उनकी चेष्टा सार्थक हो गई। उन्होंने हिन्दुओंके पवित्र तीर्थमें हिन्दुओं की पवित्र विद्याकी आलोचनाके लिये वैदिक पाठशाला स्थापित कर दी। उस पाठशालाने वैदिक-सार्वभौमपाठशाला नाम ग्रहण किया + और वह संवत् १६२६ माघ मासके शुक्ल पक्षमें स्थापित हुई। उसके अध्यापनकार्यमें पहले पण्डित शिवकुमार शास्त्री नियोजित हुए। काशीके लोगोंने दयानन्दकी स्थापित पाठशालामें आशानुरूप सहाय्य नहीं किया। इसी कारण उन्हें पाठशाला-परिचालनके लिये नाना स्थानोंसे चन्दा संग्रह करना पड़ा *।

+ १७९६ शकाब्दके ज्येष्ठ मासकी "तत्वबोधी पत्रिका, में परिव्राजक हेमचन्द्र चक्रवर्तीने लिखा है—"यहां (कानपुरमें) पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामीके साथ हमारा साक्षात् हुआ। उन्होंने यह कहा कि काशीमें माघ मासके शुक्ल पक्षमें एक वैदिक-सार्व-भौम-पाठशाला स्थापित की है।"

* इस विषयमें श्रीमान् आत्मानन्द सरस्वतीने कहा कि

अस्तु। इस प्रकार वाराणसीमें वैदिक विद्यालय स्थापित करके और उसकी स्थिति और उन्नतिके लिये यथासम्भव सुप्रबन्ध करके दयानन्द कुछ दिन पीछे, कानपुर आये। उसके पश्चात् स्थानीय पाठशालाके कार्यनिरीक्षणके अभिप्राय से वह फर्रुखाबाद गये। फर्रुखाबादमें उस यात्रामें व्याख्यान वा वक्तृता आदि विशेष रूप से नहीं हुई। वह तत्रस्थ वैदिकपाठशालाके प्रबन्धकार्य्यमें ही संलग्न रहे।

उसके पश्चात् स्वामी जी इलाहाबाद आये। नागरिक कोलाहलसे दूर रहने के अभिप्राय से वह नागरिक सीमाके बाहर एक विस्तृत उद्यानमें रहने लगे। स्थानीय डाकघर द्वारा उन्होंने कई एक विज्ञापन भेजे। उनसे उनकी उपस्थितिका संवाद शीघ्र ही नागरिक जनसाधारणके कर्णगोचर हो गया। अधिकन्तु, उस द्वारा इलाहाबादके शास्त्री शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको भी स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ वा धर्मविचार करनेके उद्देशसे निमन्त्रित किया गया था। उसके अनुसार नाना श्रेणीके लोग दयानन्दके पास आने लगे। म्योरकालिज के अपेक्षाकृत अधिक वयस्क छात्र कौतूहलवश होकर उपस्थित हुए। संस्कृताध्यापक पण्डित काशीनाथ शास्त्री आये। महाराष्ट्रीय क्रिष्टान निहिमिया नीलकान्त गोरे ऋग्वेद लेकर आये; और निजामुद्दीन नामक एक अंग्रेजीशिक्षित मौलवी आकर परमेश्वरके स्वरूपादिक विषयमें मोहम्मदी शास्त्रके मन्तव्यामन्तव्यकी आलोचना करने लगे।

काशीमें वैदिकपाठशाला स्थापन-करके उसके व्ययार्थ चन्दा संग्रह करनेके लिये स्वामीजीने जोहरदास उदासी नामक व्यक्तिको नाना स्थानोंमें भेजा। जोहरदास डुमरांव और आरा प्रभृतिमें भ्रमण करके कुछ रुपये एककालीन (यकमुश्त) वा मासिक हिसाबसे साहाय्य लेकर आये। जोहरदास एक सुपण्डित व्यक्ति थे।

नीलकान्तके हाथमें जो ऋग्वेदका ग्रन्थ था वह मैक्समूलर नामक योरुपीय पण्डितका प्रकाशित किया हुआ था। नीलकान्त ने उस ऋग्वेदके एक स्थलमेंसे अग्निशब्दको उद्धृत करके दयानन्दसे जिज्ञासाकी कि जब इसका अर्थ अग्निके अतिरिक्त और कुछ समझमें नहीं आता, तब अग्नि शब्दको ब्रह्मबोधक कह कर किस प्रकारसे प्रतिपादन कर सकते हैं? इसके उत्तरमें स्वामीजी ने कहा—"अध्यापक मैक्समूलरने वेदोंके यथार्थ तात्पर्यको हृदयङ्गम न करके इस प्रकारका विकृत अर्थ किया है। इसके अतिरिक्त वेद अग्नि-जलादि जागतिक वस्तुओंकी पूजासे परिपूरित है—इस बातको लिपोपित न करनेसे बाइबिलवर्णित धर्मका उत्कर्ष भी किसी प्रकार सिद्ध न हो सकेगा, इसलिये अग्निशब्द की इस प्रकारकी भ्रान्त व्याख्या करनी ही मैक्समूलरके लिये स्वाभाविक है। इसके उत्तरमें निहिमिया नीलकान्त और कुछ न कह कर चुप हो रहे।

दयानन्दने उसके पश्चात् ख्रिष्टीय धर्मका प्रसङ्ग उठाया। उसके युक्तियुक्त होनेके सम्बन्धमें वह आलोचना करने लगे। बाइबिलवर्णित ईश्वर अनेक विषयमें मानवीय भावापन्न है, वह भयसे भीत और विचलित होता है, और भयसे परित्राण पानेके निमित्त समय २ पर मनुष्यजातिके अशुभसम्पादनके लिये भी उत्तेजित हो जाता है—यह सिद्ध करनेके लिये स्वामीजीने बेबलटावर (बुर्जबाबुल) का वृत्तान्त उत्थापित किया *। फलतः वह

* पृथ्वीकी प्रथम अवस्थामें बहुतसे मनुष्य एकत्रित होकर एक स्थानमें एक गगनभेदी स्तम्भ निर्माण करते थे। उस स्तम्भके निर्मित होने पर सारे ही मनुष्य उसके सहाय्यसे स्वर्गके राज्यमें जा सकेंगे और स्वर्गधाम मनुष्योंके आनेसे कलुषित हो जायगा—इस भयसे परमेश्वरने उस स्तम्भके बनाने वालोंमें भाषाभेद कर

समागत लोगोंको यह समझाने लगे कि ईसाई लोगोंका परमेश्वर विषयक विश्वास और सिद्धान्त सर्वथा समीचीन नहीं है। नील-कान्त गोरे इस बातका कोई उत्तर न दे सके। तब हिन्दुश्रोता किसी २ विषयमें जिज्ञासु हुए। पूर्वोल्लिखित काशीनाथ शास्त्री कुछ अवज्ञाके साथ स्वामीजी पर दृष्टिपात करके बोले—"आपने किसलिये यह देशव्यापक गोलमाल मचाया है।" इसके उत्तरमें स्वामीजीने गम्भीरभावसे कहा—मैंने गोलामल नहीं मचाया। मेरे आनेसे पहले इस देशके पण्डितोंने भयानक गोलमाल मचा रक्खा था। अब मैं उस गोलमालका प्रशमन करके सत्यकी वाणीको धीरे २ सुनानेकी चेष्टा करता हूँ।" दयानन्दके इस प्रकार के उत्तरसे काशीनाथ कुछ अप्रतिभ हो गये और कोई बात न कह कर सहचरवर्गके साथ सभास्थलसे चले गये। तब समागत छात्रोंके साथ बातचीत आरम्भ हुई। छात्र लोग उत्सुक होकर धर्मके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी बातें पूछने लगे प्रसङ्गवश हिन्दुओंके नित्यानुष्ठित सन्ध्याका विषय भी आया। सन्ध्याकी

दिया। इस घटनासे पहिले सारे मनुष्य एक भाषभाषी थे। भाषाभेद हो जानेसे एक मनुष्य दूसरेकी बात न समझ सका, इसलिये निर्माणकार्यमें बाधा पड़ गई। उसके पश्चात् परमेश्वर ने एक प्रबल भूकम्प भेज कर उस निर्मितप्राय स्तम्भको धारा-शायी कर दिया। इस प्रकार वह स्तम्भ धूलीसात् हो गया। अस्तु। वही स्तम्भ इतिहासमें बेबिल टावरके नामसे विख्यात है। कहा जाता है कि जिस स्थानमें बेबिल टावर निर्मित हुआ था, पीछे आकर उसी स्थानमें बाबिलन नगर निर्मित हुआ। Biblical Theologiecal and Ecclesiastical Cyclopedea Vol, 1. P. 590.

बातको उत्तमरूपसे समझानेके अभिप्रायसे उन्होंने उसे पढ़नेके लिये एक व्यक्तिको अनुमति दी।

उसके अनुसार ज्वालाप्रसाद नामक एक छात्र एक पाण्डुलिपिसे उसका पाठ करने लगे। वह पाण्डुलिपि, बोध होता है, सरस्वतीके स्वयं हाथकी लिखी हुई थी, और सम्भवतः वही पीछे आकर स्वामीजीकी सन्ध्या नामक पुस्तक रूपसे प्रकाशित हुई थी।

अतः वहां पर मुसलमानोंके मतके सम्बन्धमें बात चली। स्वामी जीने पूर्वोक्त मौलवीसे परमेश्वरके विषयमें कुरानका अभिप्राय पूछा। किन्तु मौलवी जिज्ञासित विषयमें कुरानकी कोई बात न कह सका और हैमिलटन नामके अंग्रेज दार्शनिकका मतामत बतलाने लगा। मौलवी स्वजातिके शास्त्रोंसे सुपरिचित नहीं था; और उस समय स्वामीजी भी मुसलमानधर्मके मन्तव्यामन्तव्यको सूक्ष्म रूपसे नहीं जानते थे। इस कारण उपस्थित प्रसङ्ग पर निजामुद्दीनने जो कहा उन्होंने उसीको मोहम्मदी शास्त्रोंका वास्तविक मत कह कर ग्रहण कर लिया। कुछ देर पीछे मौलवी और अन्यान्य कतिपय अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियोंने जन्मान्तरवाद का प्रसङ्ग उठाया। उन्होंने कहा—जन्मान्तरवादमें विश्वास करना अपेक्षाकृत अज्ञानताका परिचायक है, क्योंकि जीवात्मा का जन्म एक बारसे भिन्न अधिक बार नहीं हो सकता। इस देशके पूर्वकालीन लोग महती अज्ञानताके अन्धकारमें समावृत थे, इसलिये ऐसे भ्रान्तमतमें विश्वास करते थे। किन्तु वे नहीं समझ सकते कि स्वामीजीके समान सुपण्डित और सुबुद्धिसम्पन्न लोग किस प्रकार इसमें विश्वास स्थापन कर सकते हैं। उनके मुखसे ऐसी बात सुन कर दयानन्द कुछ उत्तेजित हो गये। उत्तेजित होने का कारण क्या था? कारण यह था कि इससे पहले उन्हें तनिक

भी विदित न था कि वैदेशिक शिक्षाके प्रतापसे हिन्दुओंकी सन्तान स्वधर्म विषयमें इतनी परिभ्रष्ट हो गई है। अस्तु। तब वह जन्मान्तरवादके समझानेमें अग्रसर हुए। जन्मान्तरवादके पक्षमें जितने प्रमाण और युक्ति हैं उन सबको हो वह धीरे २ प्रस्तुत करने लगे। उपस्थित विषयमें शास्त्रीयताके साहाय्यका भी अवलम्बन किया। वह जन्मान्तरकी कथामें इतने निमग्न हो गये कि बोलते २ सन्ध्योपासनाका समय भी अतिवाहित कर दिया। जब रात्रिके आठ बज गये, तब पूर्वोक्त ज्वालाप्रसाद और न ठहर सका, और स्वामीजीसे व्याख्याकार्य समाप्त करनेका अनुरोध किया। इसलिये उस दिन सभाका कार्य जन्मान्तरवादके प्रसङ्गमें समाप्त हुआ। दूसरे दिन एक सम्भ्रांत बंगालीके घर दयानन्दने एक वक्तृता दी। प्रायः एक सहस्र मनुष्योंके सामने वह धर्मके लक्षणोंकी व्याख्या करने लगे। स्वामीजीने मनुके उपदिष्ट मतानुसार धर्मके दश लक्षण बतलाये। प्रसङ्गतः देशाचारकी कई कुत्सित कथाओंका उल्लेख करके उन्होंने अत्यन्त आक्षेप किया। उनके आक्षेपका प्रधान अवलम्बन इदानीन्तन हिन्दू महिलाओंकी अज्ञानता और अवरोध प्रथा (परदेका रिवाज) था। उन्होंने हमारे अतीत सम्पत्ति और विगत गौरवका उल्लेख करके कहा कि इस देशमें भी एक समय वाष्पीय रथ (रेलवे) के समान द्रुतगामी रथ था। उसके प्रमाणमें उन्होंने नल राजाके विमानका वर्णन किया। सभास्थ सब मनुष्य ही स्वामीजीकी वक्तृतामें निस्पन्द हुए रहे। उस सभाके पश्चात् दयानन्द इलाहाबादमें अधिक दिन नहीं ठहरे। उसके थोड़े दिन पीछे जब्बलपुर चले गये। इस समय सन् १८७४ ईस्वीका जून वा जुलाई मास था।

———

अष्टम परिच्छेद ।
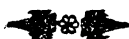
बम्बईका आन्दोलन, अहमदाबादके प्रार्थनासमाजमें उपदेश, प्रार्थनासमाजका नाम आर्य्यसमाज रखनेका प्रस्ताव, भोलानाथ साराभाईके साथ वेदविषयक आलोचना, बम्बईमें प्रत्यागमन और महाराजमतखण्डन, आर्य्य-समाज-स्थापन, आर्य्यसमाजकी नियमावली, मूर्तिपूजाका प्रतिवाद, पूना का आन्दोलन, वहां दोनों दलोंका विवाद, इन्दौर और बड़ौदा प्रभृति स्थानोंमें विचार और व्याख्या काशीमें आकर वेदभाष्यके रचनेका प्रस्ताव ।

जब्बलपुर दयानन्दके लिये सुविधाजनक नहीं हुआ, क्योंकि वहां जानेके कुछ काल पीछेही वहांके कई कपटप्रिय पण्डित उनके विरुद्ध नानाप्रकारके आचरण करने लगे। यद्यपि वह सरदार इंगला नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्तिके घरमें कुछ दिन तक उपदेश करते रहे, यद्यपि उनके उपदेश सुननेके लिये वहां के सैकड़ों लोग आये, तथापि उन कपटाचारी पण्डितोंके विद्वेषमय व्यवहारसे जब्बलपुर उन्हें प्रीतिकर नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने उस स्थानको शीघ्र ही छोड़ दिया।

यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि दयानन्द जब्बलपुरसे कहां गये। सम्भवतः वह मध्यप्रदेशान्तर्गत नाना स्थानोंमें भ्रमण

करते हुए नासिक आये और नासिकसे बम्बई गये। तब १९३० संवत्‌का कार्तिक अथवा १८७४ ईस्वीका नवम्बर मास था। बम्बई में बालकेश्वर नामक स्थान उनके रहनेके लिये निरूपित हुआ। उनके आनेका समाचार विघोषित करनेके लिये एक विज्ञापन निकाला गया। विज्ञापन नाना भाषाओंमें प्रकाशित होकर बम्बई की गली २ में बटने लगा। विज्ञापनको पढ़कर स्वामीजीके सम्बन्धमें लोगोंमें कौतूहल उद्दीपित हुआ। इसलिये उन्हें केवल देखने के लिये ही सैकड़ों लोग आये। इसके भिन्न उनके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये भी बहुतसे लोग आने लगे। कोई उनकी मूर्ति, कोई उनके मन्तव्यामन्तव्य, कोई उनके योगवल और कोई उनके दिग्विजयसम्बन्धमें नाना प्रकारकी बातें करने लगा। फलतः दयानन्दके विषयमें बम्बईमें एक अभिनव आन्दोलन मच गया। वहांके अनेक लोग अपनी २ इच्छाके अनुसार उस आन्दोलनकी उद्दाम तरङ्गमें डूब गये। अधिकन्तु, उनके आघात से अनेक साम्प्रदायिकमत छिन्नभिन्न होने आरम्भ हो गये, अनेक महन्त और महाराजों * के हृदय कम्पायमान हो गये, और उनके निर्मल प्रवाहसे भावी आर्यसमाजकी नींवभूमि परिष्कृत और परिक्षालित होने लगी।

इस वैदिक आन्दोलनका प्रवाह बम्बईकी चारों दिशाओंमें किस प्रकार परिव्याप्त हो—स्वामीजीको यह चिन्ता हुई। बंबई के चतुःपार्शवर्ती जितने स्थान शिक्षा वा सद्विचारके लिये प्रसिद्ध हैं दयानन्दने उन सब स्थानोंमें जानेका सङ्कल्प किया। अहमदाबाद बम्बई-विभागके भीतर एक प्रधान नगर है। इसी कारण वह कुछ दिनके लिये अहमदाबाद गये। वहां इससे पहले ही

* बल्लभाचारी नामक वैष्णवसम्प्रदायके गुरु महाराज कहलाते हैं।

प्रार्थना समाज स्थापित हो गया था *। प्रार्थनासमाजके सभ्यों ने दयानन्दके प्रति यथोचित सद्व्यवहार प्रदर्शन किया, यहां तक कि उपदेशादि देनेके लिये आग्रहके साथ उन्हें समाजकी वेदि छोड़ दी। स्वामीजीने प्रार्थनासमाजकी वेदि पर अधिरूढ़ होकर कई वक्तृतायें दीं। इसके अतिरिक्त वहांके पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ भी हुआ। रावबहादुर भोलानाथ साराभाई अहमदाबाद के एक विशिष्ट व्यक्ति थे। वे ही इस प्रार्थनासमाजके संस्थापक थे। इसके भिन्न वह गुजरात देशके सब प्रकारके सदनुष्ठान और शुभकर्म्मोंके सहायक थे। इस कारण साराभाई बम्बईमें सर्वत्र संस्कारक नामसे परिचित थे। विशेषतः वह गुजरातीय समाजके शिरोभूषण रूपसे समादृत होते थे। सुतरां उनके साथ वार्त्तालाप करके स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए। भोलानाथने उनसे बहुत बातें पूछीं, किन्तु उनके साथ वह सब बातोंमें एकमत नहीं हो सके। इसलिये भोलानाथको किसी २ विषयमें भिन्नमत ही रहना पड़ा। प्रधानतः वेदोंकी अभ्रान्तता विषयमें ही मतभेद हुआ। दयानन्दने कहा कि वेदोंकी अपेक्षा पृथिवी भरमें और कोई धर्मशास्त्र उत्कृष्टतर नहीं है। इसके भिन्न वेद आर्यावर्त्तकी ही सम्पत्ति है। इसलिये हम वेदोंको छोड़कर किसी प्रकारसे धर्मविचार नहीं कर सकते, और यदि करें भी, तो ऐसा करनेसे कृतकार्य नहीं हो सकेंगे। परन्तु भोलानाथ स्वामी दयानन्दकी इन सब बातोंसे सहमत नहीं हो सके; किन्तु स्वामीजीकी सत्यताके सम्बन्धमेंभी कुछ सन्देह करने लगे, और ऐसा विश्वास करने लगे कि स्वामीजी किसी गूढ़ लक्ष्यकी सिद्धिके अभिप्रायसे ही वेदोंकी सर्वोपरि श्रेष्ठताका कीर्त्तन करते हैं। तब स्वामीजीने वेदोंकी बात

---

* प्रार्थनासमाज बंगालेके ब्राह्मसमाजके न्याई सभाविशेषका नाम है।

छोड़कर प्रार्थनासमाजकी बात उठाई। यह बात सबके सामने न उठा कर कुछ एकान्तमें कही। उस समय रावबहादुर भोलानाथ और रावसाहब महीपतराम रूपरामके भिन्न और कोई भी स्वामीजीके पास नहीं रहा। फलतः यही दो पुरुष प्रार्थनासमाज के वास्तविक हिताकांक्षी थे।

इस स्थलमें एक अवान्तर कथाका समावेश भी आवश्यक है। स्वामी दयानन्दने भारतमें वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठाके लिये वैदिकपाठशालायें स्थापित तो की थीं, परन्तु वे सुफलप्रसव नहीं हुई थीं। उन्होंने आर्योंके अमूल्य शास्त्रस्वरूप वेदादिके अध्यापनके लिये फर्रुखाबाद, मिरजापुर, काशी और कासगंज प्रभृति स्थानोंमें एक २ विद्यालय खोला था, परन्तु उनमे आशानुरूप कार्य नहीं हुआ था। इसीलिये वह कुछ क्षुण्ण होगये थे, और क्षुण्ण होकर ही किसी नये उपायकी चिन्ता करते थे। परन्तु उन्होंने पुरातन प्रणालीका परित्याग नहीं किया, अथवा उल्लिखित स्थानसमूहमें पाठशालायें नहीं तोड़ दीं। वह केवल यही सोचते थे कि वैदिकधर्मकी सुप्रतिष्ठाके लिये कोई उत्कृष्टतर प्रणाली है वा नहीं, और यदि है तो वह अवलम्बनीय है वा नहीं। स्वामीजीकी चिन्ताका यह विषय भी था कि अवलम्बनीय प्रणालीके विषयमें किसी प्रकारकी सभाका स्थापन करना विधेय है वा नहीं, और यदि विधेय हो तो वैदिकधर्मका वास्तवमें प्रचार होगा वा नहीं। और भी एक बात थी कि वह जातीयताके साथ सम्बन्ध छोड़ कर किसी विषयमें प्रवृत्त नहीं होते थे। अधिक क्या, विजातीयताकी नींव बनाकर दयानन्दको कोई काम करना अभीष्ट नहीं था। इसलिये उनकी चिन्ताका अङ्गीभूत यह भी हो गया था कि वैदिकपाठशालाओंके समान सभाविशेषका सङ्गठन वा स्थापन करना जातीय व्यापार होगा वा नहीं। वह

समय २ पर ब्राह्मसमाजके साथ संसृष्ट हुए थे। बम्बई प्रदेशमें प्रार्थनासमाजके कार्य्यादिकी भी पर्यालोचना करते थे। इसी हेतु उन्हें धर्मसभा विषयक अभिज्ञता भी हो गई थी। चिन्ताके उपस्थित क्षेत्रमें वही अभिज्ञता उनकी सहायता भी करती थी, और वह सभाकी उपकारिताको भी नाना कारणोंसे जानते थे। वह देखते थे कि कार्यका प्रवन्ध एक व्यक्तिकी अपेक्षा अधिक व्यक्तियों पर अर्पित करनेसे उत्तमरूपसे सम्पादित होता है। जो एक की शक्तिसे नहीं होता, वह एकसे अधिक व्यक्तियोंकी सम्मिलित शक्तिसे अनायाससे ही सिद्ध हो जाता है। इसलिये सभासंसृष्ट वा सभावलम्बित कार्योंके सुसम्पादनपक्षमें प्रायः आशङ्का नहीं रह सकती। परन्तु इस विषयमें उनका चित्त सन्देहाच्छन्न होता था कि सभाओंके द्वारा वास्तवमें धर्मका प्रचार होगा वा नहीं। परन्तु यदि सर्वाङ्गीनभावसे धर्म प्राचरित न भी हो, तो भी सभाओंके सहाय्यसे मतविशेष विस्तारित हो सकता है—इस विषयमें वह निस्सन्देह हो गये थे। फलतः इन सब बातों पर मन ही मनमें बहुत वार विचार और चिन्ता करके उन्होंने यह स्थिर कर लिया कि वैदिकमतके प्रचारके लिये सभाविशेषका स्थापित करना ही कर्त्तव्य है। वह मनःकल्पित वा प्रस्तावितसभा मनुष्यसमाजमें किस नामसे प्रख्यात होगी—इस सम्बन्धमें भ उन्होंने एक मीमांसा कर ली थी। अस्तु। इस प्रकार आर्यसमाज का बीज दयानन्दके हृदयमें बोया जाकर अंकुरित हो गया था। इस समय दयानन्द उस अंकुरित बीजको वृक्षाकारमें परिणत करनेके लिये ही उद्योग करते थे। वह कुछ दिनोंसे सरस और उर्वर भूमिकी खोज कर रहे थे। आनन्दका विषय है कि अहमदाबाद आकर उस उद्दिष्ट भूमिके उन्हें दर्शन हुए और उन्होंने प्रार्थनासमाजमें आर्यसमाजकी स्थापनाका प्रस्ताव किया।

साराभाई और रूपरामने स्वामीजीके प्रस्तावको आदरपूर्वक ग्रहण किया; परन्तु प्रार्थनासमाजका नामपरिवर्तन आवश्यक है वा नहीं, विशेषतः उसका नाम आर्यसमाज रक्खा जा सकता है वा नहीं—इस विषयमें वे दोनों चिन्ता करने लगे। स्वामीजीने नामका परिवर्तन चाहनेसे अर्थात् प्रार्थनासमाजको आर्यसमाज नामसे प्रख्यात करनेको उद्यत होनेसे एक अति सङ्गत प्रस्ताव किया था, क्योंकि उसके साथ प्रस्तावित आर्यसमाजका कोई विशेष मतविरोध नहीं था। केवल वेदोंकी अभ्रान्तता पर ही कुछ विरोध था। वह विरोध किसी आपत्तिका कारण नहीं होता, क्योंकि वेद अभ्रान्तरूपसे परिगृहीत न होने पर भी पृथ्वीमें एक अद्वितीय धर्मशास्त्र हैं। इस विषयमें प्रार्थनासमाजके सदस्यभी सम्भवतः भिन्नमत नहीं थे। सुतरां उससे वैदिक भावकी ही श्रेष्ठता प्रतिष्ठित रहती। अस्तु। उपस्थित प्रस्ताव जैसा सङ्गत था, वैसा ही प्रकृत संस्कारके उपयुक्त भी था। क्योंकि जो लोग संसारमें संस्कारक नामसे प्रख्यात होते हैं, जो लोग मानवजातिके धर्मशास्त्र, रीति-नीतिका परिशोधन और परिमार्जन करके संस्कारकके समुन्नत आसन पर अधिरूढ़ होते हैं, वे कभी ध्वंसनीतिके पक्षपाती नहीं हो सकते। वे वस्तुविशेषको विध्वस्त करके उसके स्थानमें नई वस्तुका समावेश करना नहीं चाहते, पुरातनको तोड़ कर उसके बदले किसी नये सङ्गठन करनेकी अभिलाषा नहीं करते। वे पुरातनको ही नूतन करके उठाना चाहते हैं, अथवा जो मलिन वा अपरिस्फुट अवस्था में गिर पड़ता है, उसे ही परिष्कृत और परिस्फुट करनेके लिये सचेष्ट रहते हैं। इसी हेतु दयानन्द प्रार्थनासमाजको ही आर्यसजाजमें परिणत करनेकी चेष्टा करने लगे। किन्तु उनकी वह चेष्टा सफल नहीं हुई। पूर्वोल्लिखित दोनों पुरुषोंमेंसे एक भी स्वामीजीके प्रस्तावसे सहमत नहीं हुआ। यहाँ तक कि

भोलानाथ साराभाई उपस्थित विषयकी मीमांसाके लिये सारी रात चिन्तित रह कर भी कुछ नहीं कर सके†। इसलिये स्वामीजीको अहमदाबादसे लौटना पड़ा।

---

†About the end of the year 1874, the great reformer, Dayanand Saraswati, the founder of the Arya Samaj, visited Ahmedabad on his grand missionary tour. The Prarthana Samaj eagerly offered its pulpit to this great man who delivered several discourses on religious and social topics.... During his stay at Ahmedabad Dayanand proposed to Bholanath, and Rao Sahib Mahiput-Ram Rupram at a private audience that the name of the Prarthana Samaj be changed to that of Arya Samaj.... Bholanath promised to consider the question before he gave his assent. He passed the whole of that night in anxiously revolving this point and finally decided to decline Dayanand's proposal. Life of Rao Bahadur Bholanath Sarabhai, quoted in the Pandit Dayanand unveiled P. 4.

इस उद्धृतांशका हिन्दी मर्म यह है—"सन् १८७४ ईस्वीके अन्तमें आर्यसमाजके संस्थापक, प्रख्यातनामा संस्कारक, दयानन्द सरस्वती प्रचारके निमित्त अहमदाबादमें पधारे। प्रार्थनासमाजने आग्रहपूर्वक अपनी वेदिको इन महापुरुषोंके लिए छोड़ दी, जिन्होंने धार्मिक और सामाजिक विषयों पर कतिपय वक्तृतायें दीं।......जब दयानन्द अहमदाबादमें ठहरे हुए थे, तो उन्होंने एक दिन एकान्तमें भोलानाथ और रावसाहिब महीपतराम रूपरामसे प्रस्ताव किया कि प्रार्थनासमाजका नाम परिवर्तित करके आर्यसमाज रख दिया जाय।..........भोलानाथने अपनी अनुमति देनेसे पूर्व इस प्रश्न पर विचार करनेका प्रण किया। उन्होंने वह सारी रात्रि इसी प्रश्न पर चिन्तापूर्वक विचार

बम्बईका आन्दोलन कुछ निर्जीवसा हो गया था, दयानन्दने अहमदाबादसे लौट कर उसे फिर संजीवित कर दिया। बम्बई बल्लभाचारियोंका एक प्रधान स्थान है, क्योंकि बम्बई-प्रदेशके अधिकांश लोग वल्लभाचारी सम्प्रदायके अन्तर्निविष्ट हैं। इसलिये पहले वल्लभाचारियोंके साथ ही दयानन्दके संग्राम होनेकी सूचना हुई। किन्तु सूचनाके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। क्योंकि पण्डित गुट्टूलाल स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करने पर उद्यत होने पर भी उपस्थित नहीं हो सके। गुट्टूलालके न आने पर भी दयानन्दने महाराजमतका तीव्र प्रतिवाद किया। जो लोग जिज्ञासु होकर दयानन्दके पास आते-जाते थे क्रमशः उनके भीतर दो दल हो गये। एक दलने दयानन्दके प्रचारित धर्मको ही प्रकृत आर्यधर्म कह कर विश्वास कर लिया और दूसरा दल उसे आर्यधर्म न बतला कर विश्वास करने लगा। प्रथमोक्त दलके भीतर सेवकलाल कृष्णदास, मथुरादास लवजी और गिरधारीलाल, दयालदास कोठारी प्रभृति छः मनुष्य प्रधान थे। अस्तु वेद में यथार्थमें मूर्तिपूजाकी कोई व्यवस्था है वा नहीं—इसीको लेकर इन दोनों श्रेणियोंके बीच एक घोर वितर्क उपस्थित हुआ। उत्थापित विषयमें जितनी वार स्वामीजीसे जिज्ञासा की गई, उतनी ही वार उन्होंने स्पष्ट अक्षरोंमें कहा कि व्यवस्थाकी कथा तो दूर रही, वेदमें मूर्तिपूजाका उल्लेखमात्र भी नहीं है। इससे लोगोंका कौतूहल और भी बढ़ गया। तब पारितोषिकका संवाद प्रचारित हुआ। पूर्वोक्त सेवकलाल पांच सहस्र देने पर सहमत हुए, मथुरादासने दश सहस्र रुपये देनेकी प्रतिज्ञा की। मूर्तिपूजाको वेदानुमोदित सिद्ध कर सकने पर सहस्रों रुपये मिलनेकी सम्भावना हो गई। यह क्या साधारण सुयोग था? परन्तु खेद

करनमें विताई और अन्तमें दयानन्दके प्रस्तावको अस्वीकार करना ही निर्धारित किया— (अनुवादक)

है कि बम्बईका कोई व्यक्ति भी प्रतिज्ञात पारितोषिक लेनेके लिए अग्रसर नहीं हुआ। वेदके किस स्थलमें वा किस मन्त्रमें मूर्ति-पूजाकी कथा है—यह कोई भी सिद्ध न कर सका। सुतरां ऐसी दशामें स्वामीजीकी ही बात अखण्डनीय रही। इससे उनके पक्षा-वलम्बियोंका आनन्द और उत्साह बर्द्धित हुआ, और दिन प्रतिदिन नये-नये लोग आकर स्वामीजीके मतावलम्बी होने लगे। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें स्वामीजीके पक्षावलम्बियोंका एक दल बँध गया और कुछ दिन पीछे उन्हीं दलबद्ध लोगोंने भारतक्षेत्रमें आर्यसमाजका बीज बोया।

जिससे बम्बईका उपस्थित आन्दोलन निर्वापित न हो जाय, इसलिये सेवकलाल कृष्णदास और अन्यान्य कई व्यक्ति सचेष्ट हुए। उन्होंन स्वामीजीके पास जाकर इस विषयमें कुछ न कुछ करनेका प्रस्ताव किया। उन्होंने निःसंशयरूपसे बतलाया कि जब तक सनातनधर्मका आन्दोलन सुरक्षित नहीं होगा, वैदिक-धर्मके विस्तारकी व्यवस्था न की जायगी, तब तक भारतभूमिका वास्तविक कल्याण किसी प्रकार साधित नहीं हो सकेगा। फलकथा, स्वामीजीने उनके प्रस्तावको सर्वांशमें सङ्गत मान कर ग्रहण कर लिया, और वह यह चिन्ता करने लगे कि किस उपायसे वर्तमान आन्दोलनका स्थायित्व सम्पादित किया जा सकता है। अन्तमें पूर्वसङ्कल्पित सभाका स्थापन करना ही उपयोगी निश्चित हुआ। इस सभा द्वारा वर्तमान आन्दोलन सुरक्षित होगा, विशेषतः इसके द्वारा वैदिकमत सङ्गतभाव और सम्मिलित शक्तिसे भारतवर्षमें प्रसारित हो सकेगा, यह बात स्वामीजीने कृष्णदास प्रभृतिको समझा दी। उन सबने भी स्वामीजीके साथ एकमत होकर प्रस्तावित सभाकी आवश्यकताको स्वीकार किया। तदनुसार १ मार्च सन् १८७५ ईस्वीको दया-नन्दकी यह प्रस्तावित सभा स्थापित हुई। इस प्रकार चैत्र शुदि

प्रतिपदा संवत् १९३१ को बम्बई नगरमें आर्यसमाज* ने जन्म-ग्रहण किया।

इसके पश्चात् सभाके अङ्गादिका संगठन होने लगा। सभाके सभापति, मन्त्री और सभ्यादि निर्वाचित हुए, पूर्वोक्त गिरधारीलाल दयालदास समाजके सभापति हुए, और कृष्णदासने मंत्रीका पदग्रहण किया, और बम्बईके प्रायः आठ लाख निवासियोंमेंसे केवल २३ लोगोंने आकर उनकी सभ्यश्रेणीमें प्रवेश किया। स्वामी दयानन्द सहस्र वार अनुरोध करने पर भी उसके सभापति नहीं हुए, और न अधिनायक पद ही ग्रहण किया। केवल आर्यसमाजके एक सभ्यमात्र होकर ही तृप्त रहे। सभाके लिये नियमावली आवश्यक है। विना नियमावलीके सभा नहीं चल सकती। इसलिये आर्यसमाजकी नियमावली बनानेका उद्योग होने लगा। दयानन्द स्वयं ही उसे बनाने लगे और ६८ नियम बना कर उनके द्वारा आर्यसमाजको नियमित किया। इसके अतिरिक्त कई उपनियम भी प्रस्तुत हुए। सभापति महाशयने मन्त्रीके योगसे उपनियम प्रस्तुत किये। आर्यसमाजकी नियमावलीके विषयमें यहाँ एक बात कहनी नितान्त आवश्यक है।

---

* कोई कहते हैं कि स्वामीजीने ब्राह्मसमाज और प्रार्थना-समाजका अनुकरण करके ही प्रस्तावित सभाका नाम आर्य-समाज रक्खा था। हम नहीं कह सकते कि यह कथा कहाँ तक सत्य है।

(जनसाधारणका यह विश्वास है कि बम्बई आर्यसमाज ही सबसे पहिला आर्यसमाज है जो स्वामीजीने स्थापित किया था, परन्तु ग्रन्थकारने अपनी 'आदर्शसंस्कारक दयानन्द' नामक नामक पुस्तिकामें यह लिखा है कि सबसे पहिला आर्यसमाज राजकोटमें स्थापित हुआ था। —अनुवादक।)

जो लोग आर्यसमाजके साथ संसृष्ट रहे हैं, अथवा जिन्हें आर्यसमाजकी आभ्यन्तरिक अवस्थाका ज्ञान है, वे जानते हैं कि वह दश नियमोंके द्वारा परिचालित है, यहाँ तक कि वेही दश नियम आर्यसमाजके मूल नियम वा मूलमत परिणत होते हैं। स्यात् यहाँ कोई जिज्ञासा करेंगे कि यदि आर्यसमाजके आदिमें ६८ नियम थे और आदिमें अवलम्बित होनेसे ही यदि वे मूल-नियमोंमें परिगणित होते थे, तो फिर दश नियम कहाँसे आये? बिशेषतः दश नियम ही मूलनियम कह कर कैसे परिगणित हो गये? हमें ऐसा जान पड़ता है कि पीछे आकर इस बिषयमें स्वामीजीकी सम्मति परिवर्तित होगई थी* क्योंकि यदि ऐसा नहीं हो तो ६८ के स्थानमें दश नियमोंके प्रतिष्ठित वा प्रचलित होनेका क्या कारण है? फलतः आर्यसमाजके स्थापनके पश्चात् बम्बईका आन्दोलन अधिक प्रबल हो गया। जितने व्यक्ति आर्य-समाजके स्थापनमें उद्योगी हुए थे, जिन्होने सहायता की थी, और जो सरस्वती महाशयकी शक्तिसे आकृष्ट होकर उनके प्रदर्शित मार्गका अनुसरण करते थे, वे अपने कुटुम्बियों द्वारा नाना प्रकारसे निगृहीत होने लगे। सेवकवाल प्रभृतिको अपमान और आक्रमणका भय दिखलाया गया, इसलिये उन्हें बम्बईके राज-मार्गमें शस्त्र लेकर चलना पड़ता था। उनके नामसे अनेक निन्द-नीय कथा प्रचारित होने लगीं और बम्बईके निवासीवर्ग इस प्रकारकी बातें करने लगे कि आर्यसमाजका परिपोषक होकर

---

* उपस्थित विषय पर सेवकलाल कृष्णदासके साथ बातचीत होने पर उन्होंने कहा कि स्वामीजी पंजाबसे लौट कर जब दूसरी बार बम्बई आये, तब उनके मुखसे दश नियमोंकी कथा सुनी गई थी। इससे बोध होता है कि पंजाब जाकर नियमोंके सम्बन्ध-में उनका मत परिवर्तन हुआ था।

उन्होंने एक अत्यन्त अनार्योचित कार्य किया है। परन्तु वे अणुमात्र भी विचलित न होकर पूर्ववत् उत्साह और अनुरागके साथ आर्यसमाज रूपी नवांकुरित तरुके सम्वर्द्धनकार्यमें लगे रहे।

दयानन्द पुनर्वार बम्बईसे अहमदाबाद गये। अहमदाबादसे राजकोट जाकर वेदोक्त धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करने लगे। अनेक लोग कहते हैं कि उस समय स्वामीजीके हृदयमें जन्म-भूमिके देखनेकी इच्छा बलवती होगई थी, और उनकी जन्मभूमि राजकोटसे थोड़ी दूर थी, क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि राजकोटसे मोरवी केवल ३५ मील है। फलतः यह सुना जाता है कि वह इस यात्रामें राजकोटसे जन्मभूमिकी ओर गये थे। इस ओर कमलनयनाचारीके साथ शास्त्रार्थका दिन सन्निकट देखकर बम्बईके बन्धुगणने उन्हें तार द्वारा संवाद भेजा। इसलिये वह अहमदाबादसे शीघ्र ही लौट आये।

जून मासकी बारहवीं तारीखको बम्बई नगरमें एक विज्ञापन दिया गया। उसके अनुसार वहांके काउसजी इन्स्टीट्यूट हालमें सैकड़ों लोग आने लगे। आये हुए लोगोंमें सब ही उत्सुक थे। क्योंकि दयानन्दके समान दिग्विजयी पण्डितके सामने कमल-नयनाचारी उपस्थित होकर मूर्त्तिपूजाका समर्थन करेंगे—यह देखनेके लिये किसको उत्कण्ठा न होगी? कमलनयनाचारी रामानुजपन्थी थे, विशेषतः बम्बईके निवासियोंमें वह पण्डित प्रसिद्ध थ। परन्तु दयाननन्दके साथ शास्त्रार्थके विषयमें कमल-नयनाचारीने कई एक आपत्तिएं उत्थापित कीं। उन्होंने कहा कि विचारमण्डपमें वेदोंके सम्पूर्ण ग्रन्थ एकत्र किये बिना और कतिपय निष्पक्षपाती सुपण्डित व्यक्तियोंको मीमांसकके पद पर अधिष्ठित किये बिना, वह किसी प्रकार भी स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेमें प्रवृत्त न होंगे। अतएव कमलनयनाचारीके कथनके अनुसार ही काम होने लगा। सभाके प्रबन्धकर्त्ताओंने

बहुत यत्न करके वेदोंके प्रायः सब ही ग्रन्थ उपस्थित कर दिये; कतिपय पण्डित व्यक्ति भी मध्यस्थपद पर प्रतिष्ठित हो गये। किन्तु तो भी कमलनयनाचारी विचारके लिए अग्रसर नहीं हुए। आये हुए लोग उत्सुक होने लगे, मूर्त्तिपूजाके पोषक अधीर हो गये। यहाँ तक कि उस विशाल सभामें सर्वत्र ही अस्थिरताका दृश्य दिखाई देने लगा। तब कमलनयनाचारीसे असम्मतिका कारण पूछा गया। उसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि जब तक भारतवर्षकी चारों दिशाओंके पण्डितवृन्द सभामें नहीं आयेंगे, तब तक हम किसी प्रकार शास्त्रार्थमें प्रवृत्त नहीं होंगे। उपस्थित सभाक्षेत्रमें भारतवर्षके उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम दिशाओंके पण्डितोंका समावेश होना सर्वतोभावेन ही असम्भव था, और असम्भव समझ कर ही कमलनयनाचारी उसके प्रस्तावक हुए थे। कमलनयनाचारी जान गये थे कि दयानन्द सरस्वतीके सामने होकर मूर्तिपूजाका समर्थन करना उनके लिए सर्वांशमें ही असाध्य है। इसलिये प्रस्तावित शास्त्रार्थसे छुटकारा पानेके उद्देश्यसे वह यदि ऐसे कौशलका अवलम्बन न करते, तो क्या करते ? उनके मुखसे पूर्वोक्त कौशलात्मक कथा सुन कर सभाके सब ही लोग विरक्त हो गये, कोई-कोई तो रोषाविष्ट हो गये। सुतरां कमलनयनाचारीके लिये सभागृह असह्य हो गया। वह सभागृहको त्याग करके जाने लगे। उस समय आये हुए बालकगण और स्थिर न रह सके। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि उस दिन शनिवार होनेसे बालकोंको और दिनकी अपेक्षा सवेरे छुट्टी मिल गई थी। छुट्टी पाते ही उनमेंसे अनेक उत्सुक होकर विद्यालयसे सभामें चले आये थे और शास्त्रार्थका फल जाननेके निमित्त वह व्यग्रचित्त होकर इधर-उधर घूम रहे थे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि कमलनयनाचारी शास्त्रार्थ करने पर उद्यत न होकर प्रस्थान करने पर उद्यत हैं, विशेषतः जब उन्हें विदित

हुआ कि उल्लिखित प्रकार चातुरीका अवलम्बन करके वह स्वामीजीके साथ शास्त्रार्थ करनेमें असम्मत हैं, तब उन्होंने उनके प्रति नाना प्रकारकी व्यङ्ग क्रियाओंका आरम्भ किया। अधिक क्या, वे प्रस्थानोद्यत कमलनयनाचारीने पीछे-पीछे हंसी उड़ाते हुए करतालि प्रदान करते-करते जाने लगे। अस्तु। स्वामी दयानन्द चुप रहनेवाले मनुष्य नहीं थे। कमलनयनाचारीके चले जानेपर वह ज्वालामयी भाषामें मूर्तिपूजाका खण्डन करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंन अखण्डनीय भाव और अग्निस्राविनी भाषामें मूर्ति-पूजाकी असारता सिद्ध की। सभामंडपमें प्रायः पाँच सहस्र मनुष्य एकत्रित थे। पूर्वोक्त सेवकलाल इस वक्तृतासे विषयमें कहते थे कि उन्होंने मूर्तिपूजाके प्रतिकूल वैसी अकाट्य और उत्तापमयी वक्तृता कभी नहीं सुनी। रावबहादुर बेचरदास अम्बरदास उस सभाके प्रधान हुए। अम्बरदास एक सम्भ्रान्त व्यवसायी और धनाड्यव्यक्ति थे, और वह अहमदाबाद नगरके रहनेवाले थे। आश्चर्य है कि अम्बरदास मूर्तिपूजाके परिपोषक होते हुए भी उक्त सभाके प्रधान होनेमें तनिक भी क्षुण्ण न हुए। क्या यह अम्बरदासके पक्षमें उदारताका परिचायक नहीं है?

दयानन्दने बम्बईसे १ जुलाई सन् १८७५ ईस्वीको पूनाके लिये प्रस्थान किया। वह वहाँ श्रीमान् महादेव गोविन्द रानाडे और कुन्तेके विशेष निमन्त्रण पर गये थे। उस समय रानाडे महोदय पूनाके स्मालकाजकोर्टके जज थे। पूनाके रेल्वेस्टेशन पर नगरके सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने उनका स्वागत किया। पूनामें जुलाई मासकी ८ वी तारीखसे स्वामीजीने वक्तृता आरंभ की। वहाँ की बुधवार पीठके हालमें उनकी वक्तृता होने लगी वक्तृतास्रोत अगस्त मासकी १५ वीं तारीख तक चला। वहाँ प्रायः चालीस दिन तक उनकी वक्तृताओंसे पूनानिवासियोंने

आर्यधर्म और आर्यशास्त्र विषयमें अनेक नई-नई बातें सीखीं। अन्तिम दिवस अर्थात् अगस्त मासकी पन्द्रहवीं तारीखको बहुतसे लोगोंके अनुरोध करने पर दयानन्दने अपने जीवनके इतिहास सम्बन्धमें कुछ बातें कहीं। पूनाके अनेक शिक्षित और सम्भ्रान्त व्यक्ति उनके साथ परिचित होनेसे प्रसन्न हुए। यह कहना अनावश्यक है कि रानाडेके साथ बातचीत करनेसे रानाडेकी स्वामीजीके साथ मित्रता हो गई और स्वामीजीके देहान्त पर्यन्त वह अक्षुण्ण अवस्थामें रही।

पूनाके रेजिमेण्ट बाज़ारमें दयानन्दकी अन्तिम वक्तृता हुई। देशीय सैनिकलोग साग्रह होकर उनके उपदेश सुनने लगे। फलतः दयानन्दसे पूनाके प्रायः सब ही लोग प्रोत्साहित हो गये। केवल कुछ स्वार्थान्ध ब्राह्मण स्वामीजीके प्रतिकूल आचरण करनेसे न रुक सके। व्याख्याके पश्चात् एक सुसज्जित जलूस रेजिमेण्ट बाज़ारसे पूना शहरकी ओर चला जिसमें हस्ती-अश्व, बाजा-गाजा आदि थे। स्वार्थान्ध ब्राह्मणोंने यहाँ तक विरोध किया कि उस जलूससे मिलनेके लिये उन्होंने एक दूसरा जलूस निकाला, जिसमें एक गधेको सजाकर उस पर गधानन्द लिख रखा था। ये दोनों जलूस जब एक दूसरेसे मिले, तो उनमें दंगा हुआ। अन्तमें दोनों दलोंको पुलिसने पकड़कर विचारालय में भेज दिया। उपस्थित घटनासे पूना नगर आन्दोलित होने लगा। दयानन्द इन सब अप्रत्याशित घटनाओंसे अतिशय दुखित हुए और दो माससे कुछ अधिक रह कर पूनासे बम्बई लौट आये। जिस दिन फिर बम्बईमें आये, उस दिन वहाँके स्टेशनपर समारोहकी सीमा न रही। शिक्षित लोगोंकी तो कथा ही क्या है, नगरके सामान्य व्यवसायिगण तक अपनी-अपनी हाटें बन्द करक दयानन्दको लेनेके लिए स्टेशन पर जाने लगे। इससे बोध होता है कि

स्वामीजीकी चारित्र्यशक्तिने बम्बईके व्यवसायियोंके हृदय तक पर अधिकार जमा लिया था।

कुछ ही दिन रह कर स्वामीजी बम्बईसे इन्दौर चले गये। इन्दौरमें बालकृष्ण शास्त्री नामक एक व्यक्तिके पाण्डित्यकी ख्याति थी, यहाँ तक कि उसके कारण स्थानीय राजसभा तकसे बालकृष्ण सम्मानित होते थे। दयानन्दके आनेसे बालकृष्णका पाण्डित्याभिमान कुछ प्रतप्त हो गया। इसलिये वह दयानन्दके साथ शास्त्रार्थ की अभिलाषा किये विना न रह सके। दयानन्द भी इस विषयमें अप्रस्तुत नहीं थे। इस कारण इन्दौरमें शीघ्र ही एक सभा बुलाई गई। इन्दौराधीश उस सभाके सभापति हुए। दयानन्दने उस सभामें उपस्थित होकर सिद्ध किया कि वेदोक्तधर्म ही वास्तविक आर्यधर्म है। बालकृष्णने उसके विरुद्ध जो कुछ कहा वह दयानन्दके तीक्ष्ण तर्कास्त्रके आघातसे विखण्डित हो गया। इसलिये इन्दौराधीश स्वामीजीसे अत्यन्त प्रसन्न हुए, और स्वामीजीके असाधारण पाण्डित्यकी कुछ पूजा करनेकी अभिलाषासे शालादि बहुमूल्य सामिग्री लाकर उनके सामने रखदी। परन्तु उसका ग्रहण करना तो दूर रहा, बारंबार अनुरोध करने पर भी दयानन्दने उसमेंसे किसीको स्पर्श तक नहीं किया। इसके पश्चात् वह इन्दौरसे बड़ौदा गये। बड़ौदामें भी पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ। बड़ौदासे वह फिर बम्बई चले आये। वह बम्बईको सहसा नहीं छोड़ सकते थे, क्योंकि उस समय बम्बई नगर उनके कार्यक्षेत्रका केन्द्रस्थल हो गया था। फलतः वह इस प्रकार बम्बई और बम्बईके अन्तर्गत पूना, अहमदाबाद, सितारा, सूरत और राजकोट प्रभृति स्थानोंमें वैदिक धर्मके प्रचार और प्रतिष्ठारूपी पवित्र कार्यमें दो वर्षसे कुछ न्यून अतिवाहित करके संवत् १९३३ के वैशाख वा ज्येष्ठ मासमें अथवा सन् १८७६ ईस्वीके मई मासके

मध्यमें काशीमें आकर उपस्थित हुए। इस समय दयानन्दके हृदयमें एक अभिनव सङ्कल्प उद्भावित हो रहा था। वह उस सङ्कल्पको शीघ्र ही कार्यमें परिणत करनेके अभिप्रायसे काशीमें आये थे। वह अभिनव सङ्कल्प वेदभाष्यके प्रणयन और प्रचारके भिन्न और कुछ नहीं था।

नवम परिच्छेद

वेदचर्चा विषयमें अनास्था, वेदोंके भिन्न-भिन्न भाष्यकर्त्ता, योरुपीय पण्डितोंकी वेदव्याख्या, स्वामीजीकी ऋग्वेद-भाष्यभूमिका, भाष्यरचना, दिल्लीदर्बारमें आगमन, भारतमें एकता स्थापन करनेका प्रस्ताव, उपायनिर्धारण, मेरठगमन, चांदपुरके मेलेमें मौलवी और पादरियोंके साथ महाशास्त्रार्थ, पंजाबमें प्रवेश और लाहौरकी यात्रा।

स्वामीजीने वेदभाष्यके प्रणयनका क्यों संकल्प किया? वेदोंके नाना प्रकारके भाष्यतो इस देशमें विद्यमान थे ही; रावण, उव्वट, और सायणादि* सुधीजनने समय-समय पर भारतक्षेत्रमें

---

* उव्वट और रावण नामक दो पण्डित वेदोंके अपेक्षाकृत प्राचीन व्याख्याता हैं। इनमें रावण ही सर्वोपरि प्राचीन है। इनका भाष्य भी इस समय दुष्प्राप्य है। अभी थोड़े ही दिन हुए, काशीके एक पण्डितने उव्वटकृत भाष्यके साथ समस्त यजुर्वेदको प्रकाशित किया है। दूसरे भाष्यकार महीधर हैं। उन्होंने केवल यजुर्वेदका भाष्य किया है। महीधर सायणके पूर्ववर्ती हैं। सायणाचार्य अपेक्षाकृत आधुनिक भाष्यकार हैं। सायण माधवा-

अभ्युदित होकर वेदके ज्ञानके निमित्त एक-एक भाष्य प्रचारित किया था। तब फिर स्वतन्त्र भाष्य प्रचारित करनेका क्या कारण था? विशेषतः दयानन्द तो किसी अभिनव ग्रन्थके प्रचारके पक्षपाती भी नहीं थे, यहाँ तक कि उनके गुरु बिरजानन्द स्वामी भी नवीन ग्रन्थोंके घोर विरोधी थे। वह कहा करते थे कि पृथ्वी पर आर्ष ग्रन्थोंके रहते हुए अनार्ष ग्रन्थोंकी कोई आवश्यकता नहीं है; प्रत्युत अनार्ष ग्रन्थावलीके विलुप्त होनेमें ही भारतबर्षका मंगल है। इसी लिये शिष्यवर्गके प्रति विरजानन्दका कठोर आदेश था कि उनमें से कोई भी अपनी विद्वत्ता वा 'पाण्डित्यकी प्रतिष्ठाके अभिप्रायसे कोई ग्रन्थ प्रचारित न करे। गुरुदेवके इस ज्ञान-गम्भीर आदेशको दयानन्द भी अबतक शिरोधार्य्य करते हुए चले आये थे*। तब फिर वेदभाष्यरूपी अभिनव ग्रन्थके प्रचारका उन्होंने क्यों व्रत किया?

चार्य नामक प्रसिद्ध पण्डितके भ्राता और विजय नगराधिपति बुक्क राजाके मन्त्री थे। कोई-कोई कहते हैं सायणाचार्यने बुक्कके पिता संगम राजाके भी मन्त्रीका कार्य किया था। यह विदित है कि बुक्क राजा ईसाकी चौदहवीं शताब्दिके अन्तिम भागमें विद्यमान थे। ऐसा होनेसे सायणाचार्यको भी उसी समयके मनुष्योंमें रखना होगा। किसी-किसी ग्रन्थमें लिखा है कि सायणने साधनाबलसे भुवनेश्वरी नाम्नी देवीविशेषको प्रसन्न करके वर प्राप्त किया था और उसी वरके प्रभावसे प्रबुद्ध-बुद्धि होकर चारों वेदोंके भाष्यरचना रूपी दुरूह व्रतमें कृतकार्य हुए थे।

*वेदभाष्यके प्रचारसे पहले दयानन्दने किसी ग्रन्थका प्रचार नहीं किया था—ऐसा नहीं है। उससे पहले उन्होंने बम्बई नगरमें आर्याभिविनय नामक एक छोटी पुस्तक प्रकाशित की थी। यह

व्रत करनेका विशेष कारण था। क्योंकि भारतक्षेत्रमें वेदोंकी आलोचना बहुत शताब्दियोंसे लुप्तप्राय थी, बहुत दिनोंसे हिन्दुओंके जीवनमें वेदप्रियता और वेदानुगामिताका परिस्फुट भाव दृष्ट नहीं होता था। साधारणतः इस समय हिन्दू वैदिकशासनके अनुवर्ती होकर चलना नहीं चाहते थे। विशेषतः ब्राह्मणगण भी इस समय अतिशय वेदवितृष्ण हो गये थे। वेदानुशीलन और वेदाध्ययन तो दूर रहा, सैकड़ों ब्राह्मणपुत्र चारों वेदोंके नाम बतलानेमें भी इस समय असमर्थ थे। ब्राह्मणोंकी ऐसी शोचनीय वेदच्युति एक दिनमें नहीं हो गई थी। फलतः वे लोग बहुत दिनोंसे वेदविहीन होगये थे; वे लोग बहुत दिनसे ही वृत्तिच्युत और विपन्न हो गये थे। ब्राह्मणोंकी वृत्तिच्युति और विपत्ति कुछ तो अपने ही दोषसे हुई थी और कुछ बान्धवविहीनताके कारण हुई थी। क्योंकि क्षत्रियलोग ही ब्राह्मणों के यथार्थ बान्धव हैं। क्षत्रियगण केवल ब्राह्मणोंके ही बन्धुगण नहीं हैं, प्रत्युत आर्यसमाजके भी रक्षक हैं। किन्तु कौरव-पाण्डवके संग्रामके पीछेसे भारतवर्षमें क्षात्रशक्ति निर्वापित-प्राय हो गई थी। इसलिये जैसे ब्राह्मणगण बान्धवहीन होनेसे अवसन्न हो गये थे, वैसे ही समाज भी रक्षकहीन होनेसे विपन्न होगया था। तब वेदचर्चा और वेदालोचना कौन करे? इसके

पुस्तक कई वैदिक स्तोत्रोंके संग्रह वा समावेशके भिन्न और कुछ नहीं है। कोई-कोई कहते हैं कि स्वामीजी राजा जयकृष्णदासके अनुरोधसे परतन्त्र होकर पुस्तकरचनाके कार्यमें प्रवृत्त हुए थे। राजा जयकृष्णदासने स्वामीजीको अनेक प्रकारसे जतलाकर कहा था कि आप जिन महामूल्य बातोंका प्रचार करते हैं वे यदि लिपिबद्ध होकर पुस्तकाकारमें प्रकाशित न होंगी, तो संसारकी विशेष क्षति होगी।

अतिरिक्त वेदोंके लोपके और भी कई एक गुरुतर कारण थे। इससे इतिहासज्ञ पाठकमात्र ही अवगत हैं कि भारतभूमि बहुत कालसे कई एक प्रबल धर्मविप्लवोंसे विप्लवित थी। उन संघटित विप्लवोंमेंसे कितने ही तो अवैदिक थे। और कितने ही वेद-विरोधी थे। बौद्धधर्मका आविर्भाव और अधिकार एक प्रधान विप्लव रूपसे परिगणित है उसमें अवैदिकताकी अपेक्षा वेद-विरोधता ही अधिक है। इसलिये बौद्धविप्लवको वेदविरोधी विप्लव कहना ही अधिक संगत है। जैनविप्लव भी वेदविरोधी विप्लवोंके अन्तर्गत है। रामानुज, माधवाचार्य और वल्लभाचार्य प्रभृति महापुरुषोंने भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें समय-समय पर अभ्युदित होकर जिन विप्लवोंको प्रवर्तित किया है हम उन सबको ही अवैदिक विप्लवोंके भीतर निविष्ट करके उल्लेख करेंगे। इसके अतिरिक्त पंजाबके गुरु नानक, नवद्वीपके निमाई संन्यासीने जिस विप्लप्रवाहको भारतभूमिके कुछ अंशोंमें विलो-डित किया था, हम उसका अवैदिक विप्लव नाम रखनेमें अणुमात्र भी संकुचित नहीं होंगे। इसलिये अब यह जाना जा सकता है कि इस प्रकारकी अवैदिकता, और वेदविरोधिताके भीतर भारतभूमिकी शताब्दिके पीछे शताब्दि अतिवाहित होती आई है। वेदप्रदीपने इस प्रकार निर्वापितप्राय होकर भारतगृहको घोरतमसावृत्त कर दिया हैं, और वेदविटपने जीर्ण-शीर्ण और बहुत कालसे पत्र पल्लवादिशून्य होकर हिन्दुओंके समस्त जीवनको एक शुष्क और शोकावह व्यापार बना दिया है। ऐसी अवस्थामें स्यात् सबही स्वीकार करेंगे कि वेदोंके अर्थविपर्य्य होनेकी पूरी सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त वेदार्थविकृतिका एक और भी विशेष कारण था। निघण्टु और निरुक्त प्रभृति जितने ग्रन्थ वैदिकसाहित्यके सत्यार्थके निर्णायक कह कर प्रसिद्ध और परिगृहीत हैं, वेदचर्चाके विलोपके साथ-साथ उन सब

ग्रन्थोंका पठनपाठन भी लुप्त प्राय हो गया था। इस हेतु यह सहजमें ही जाना जा सकता है कि उल्लिखित अवैदिक युगमें जितने वेदव्याख्याता भारतक्षेत्रमें आविर्भूत हुए, उनकी व्याख्या सर्वतोभावेन निरुक्तादि ग्रन्थोंके अनुकूल नहीं है। केवल यही नहीं, प्रत्युत यह भी अनुमान होता है कि उनमेंसे किसी-किसीने बौद्धादिसम्प्रदायसे परिचालित होकर वेदोंके यथार्थ मर्मको प्रच्छन्न कर दिया है*। तो फिर वेदविभ्राट क्यों न हो ?

दयानन्द इस वेदविभ्राटके विषयमें बहुत दिनोंसे चिंता करते आये थे। उन्होंने इस विभ्राटको किसी अंश तक दूर करनेके उद्देश्यसे एक उपायका भी अवलम्बन किया था। वह उपाय वैदिकपाठशाला स्थापन करनेके भिन्न और कुछ न था। वेदादि शास्त्रोंके विचारके निमित्त ही वैदिकपाठशालाओंका द्वार खोला गया था। परन्तु उल्लिखित विभ्राटके निवारणके लिये वैदिकपाठशालायें ही पर्याप्त नहीं थीं, क्योंकि आर्यजीवन को वेदोज्ज्वल ज्ञानमें परिचालित करने किंवा आर्यावर्त्तके आद्योपान्त में वेदमहिमा को प्रतिष्ठित करनेके लिये वेदोंके वास्तविक अर्थोंका प्रकाश करना नितान्त आवश्यक था। ऐसा किये विना पूर्वोल्लिखित वैदिकविभ्राट जैसे दूर नहीं हो सकता था, वैसे ही वेदोद्धार रूपी महाव्रत भी सर्वतोभावेन साधित नहीं हो सकता था। इसलिये दयनन्द इस महाव्रतकी सिद्धिके अभिप्रायसे वेदोंके सत्य अर्थके विस्तारमें सङ्कल्परूढ़ हुए। यद्यपि प्रचलित व्याख्यासमूह पर उन्हें बहुत दिनोंसे सन्देह होगया था, यद्यपि विरजानन्दके शिक्षाप्रभावसे उनका वह सन्देह बद्ध-

---

*यजुर्वेदके दूसरे भाष्यकार महीधरने बौद्धोंसे आदिष्ट वा परिचालित होकर ही वेदार्थका विकृतिसाधन किया है—ऐसा सुना जाता है। कोई २ महीधरको वाममार्गावलम्बी कहते हैं।

मूल हो गया था, यहाँ तक कि रावण, सायण और महीधरादिरचित भाष्यसमूहको विकृत वा भ्रान्तिसंकुल कहनेमें उनके अन्तःकरणमें एक उज्ज्वल प्रतीति उत्पन्न होगई थी, तथापि वह अब तक वेदभाष्यके प्रचारमें हस्तार्पण नहीं कर सके थे। कारण यह था कि दयानन्द सरस्वती किसी काममें सहसा प्रवृत्त होनेवाले मनुष्य नहीं थे। उनके सारे ही कामोंमें धीरता और विचारशीलताका परिचय पाया जाता है। शिवव्रतकी उस वसन्तऋतुकी निशामें देवमूर्ति पर अश्रद्धाका उदय होने पर भी जैसे उन्होंने सहसा मूर्तिपूजाके प्रतिकूल अवधारण नहीं किया था, वैसे ही वेदोंकी आधुनिक व्याख्याओं पर अत्यन्त सन्देहक्रान्त हो जाने पर भी वह किसी नई व्याख्याके रचनेमें हठात् उद्यत नहीं हो सकते थे※। फलतः दयानन्दके चरित्रमें चंचलताकी अपेक्षा धीरता और आकस्मिकताकी अपेक्षा कालोपेक्षिताकी शक्ति प्रबला थी। इसी हेतु उन्होंने इतने दिन तक चिन्तापर रहने पर भी इस समय इस महाव्रतकी सूचना की।

दयानन्दने काशीमें वेदभाष्य रचनेका सूत्रपात क्यों किया? वह सबसे पहले काशीमें ही वैदिकधर्मकी जयघोषणा करनेके महाविचारमें क्यों प्रवृत्त हुए। इस विषयमें हम पहले ही कह आये हैं कि स्वामीजो आर्यभावके साथ विरोध करके कोई कार्य नहीं करते थे। उनके प्रायः सब ही कार्य आर्य प्रकृतिकी अनुसूया

※ वालुचरमें थानसिंह नामक जैनीके साथ स्वामीजीका जो कथोपकथन हुआ था उसमें उन्होंने थानसिंहके सामने प्रचलित भाष्यसमूह पर अश्रद्धा और उसके साथ ही आर्यरीतिके अनुकूल भाष्यप्रचारकी आकांक्षा प्रकाश की थी। हम यह बात पहले ही कह चुके हैं। यहाँ पाठकोंके स्मरणार्थ ही उसका पुनः उल्लेख किया है।

से रहित हैं। आर्योंके निकट जो स्थान शास्त्रविचारके सम्बन्धमें अतिशय पवित्र हैं, जिस स्थानमें हिन्दुओंके ज्ञानकाण्ड सम्बन्धी नाना शास्त्र प्रचारित हैं, और जिस स्थानमें व्यासदेवके ब्रह्मसूत्रों पर स्वयं शङ्कर स्वामीने वृत्ति और व्याख्या की, स्वामी दयानन्दने उसी स्थानसे वेदभाष्यका प्रचार करके अपनेको सर्वतोभावेन हिन्दू-संस्कारकके उपयोगी किया है। अस्तु। दयानन्दने काशीकी पवित्रभूमिमें वेदभाष्य प्रचार रूपी पवित्र व्रत धारण किया, परन्तु इस विषयमें कोई निजत्व वा नूतनत्व रखनेका कुछ प्रयास नहीं किया। प्रयास करने पर भी उनके समान अद्वितीय धीमान् व्यक्ति उसमें कभी विफल नहीं होते। किन्तु ऐसा प्रयास न करनेमें ही दयानन्दका यथार्थ महत्व प्रकाशित होता है। जैसे ब्राह्मसमाजके संस्थापक राजा राममोहनराय अपनेको किसी नये धर्मका आविष्कारकर्त्ता कहना वारम्वार अस्वीकार करते थे, वैसे ही आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दने भी अपनेको वेदोंके अभिनव भाष्यकर्त्ता कहना वारम्वार अस्वीकार किया है। महात्मा राममोहन जैसे आर्य्यधर्मको पुनरुद्दीपित करनेके निमित्त ही बङ्गभूमिमें बद्धपरिकर हुए थे, महात्मा दयानन्द भी वैसे ही आर्यपथका अनुवर्तन करके वेदभाष्यके प्रणयनमें प्रवृत्त हुए। उपस्थित विषयमें स्वामीजीने एक स्थानमें कहा है—"मैं प्राचीन आर्यरीतिका अवलम्बन करके ही इस वेदभाष्यकी रचनामें प्रवृत्त हुआ हूँ। यह भाष्य ऐतरेय और शतपथादिके व्याख्याग्रन्थोंके अनुकूल होगा; इसमें कोई अप्रमाणिक बात नहीं होगी।"* फिर कहा है—"इस भाष्यमें स्वकपोल-कल्पित कोई बात नहीं लिखी जायगी, किन्तु ब्रह्मासे व्यासदेव पर्यन्त महर्षिगणने जिस

---

*ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरणशंकासमाधानादि विषयक पृष्ठ ३२२।

भाव और जिस प्रणालीमें वेदार्थ निर्धारित किया है, मैं इस भाष्यमें केवल उसी भाव और उसी प्रणालीका अनुसरण करता हूँ।"* अस्तु। इसलिये यह जानना चाहिये कि स्वामी दयानन्दका वेदभाष्य किसी अंशमें नवीन वा स्वकपालकल्पित नहीं है।

दयानन्द भाष्यरचनामें सङ्कल्पारूढ़ होकर जैसे महीधर आदिकी व्याख्याओं की विशेष रूपसे समालोचना करने लगे, वैसे ही विलसन और मैक्समूलर प्रभृति योरूपीय मनीषिवर्गके वेदविषयक मतको जाननेके लिये भी उत्सुक हुए। इस प्रकारकी औत्सुक्य दयानन्दकी दूरदर्शिता प्रतिपादन करता है। क्योंकि इस देशमें इस समय अंग्रेजी चिन्ताकी गति जिस प्रकार बढ़ रही है, योरूपीय पण्डितों पर लोगोंकी जैसी सम्मानता है, और धर्म वा किसी शास्त्रसंसृष्ट विषयमें योरूपीय लोगोंके मतामत जाननेके लिये नव्यसम्प्रदायस्थ व्यक्तियोंकी जैसी साधना है, उससे पूर्वोक्त विलसन प्रभृति योरूपीय वेदानुवादकोंके वास्तविक मतामतसे अवगत होना स्वामीजीके लिये भी अत्यन्त आवश्यक हो गया था। किन्तु जिस भाषामें पूर्वोक्त पण्डितोंने वेदादि ग्रन्थोंका अनुवाद किया है स्वामीजी उस भाषासे सर्वथा ही अपरिचित थे।† इसलिये उन्होंने अङ्गरेजी विद्यामें सुशिक्षित एक

---

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ २।

† अङ्गरेज़ी भाषा न जाननेके कारण उसे सीखनेकी दयानन्दकी प्रबल इच्छा थी। दयानन्द जब कलकत्तेमें आकर कई एक मास रहे थे, तब उन्होंने हमारे सुपरिचित एक व्यक्तिसे अङ्गरेज़ी सीखनेका अभिप्राय प्रकाशित किया था। केवल अंग्रेजी भाषा सीखनेकी ही इच्छा नहीं थी, किन्तु इङ्गलैण्ड जानेका भी उनका प्रबल विचार था। परन्तु उनका प्रीतिभाजन छात्र और

बंगाली बाबूने बीच-बीचमें मैक्समूलर प्रभृतिके वेदोंके अनुवादको सुनने [illegible] । जिस समय इस प्रकार भाष्यप्रचारमें व्यग्र [illegible] आशामें सज्जित हो रहे थे, उस समय पूर्वोलिखित [illegible] उनके पास उपस्थित हुए। भीमसेनकी उपस्थिति [illegible] आकस्मिक थी, परन्तु वह समयोपयोगी हुई। क्योंकि [illegible] कामसें भीमसेन शास्त्रीके समान कई एक व्यक्ति [illegible] आवश्यक थे, क्योंकि उनके समान कई शिक्षित और दक्ष लोगोंके बिना भाष्यप्रचारमें और भी कालविलम्ब होता, इस [illegible] भीमसेनके आनेसे स्वामीजीने हृष्टचित्त होकर उपस्थित व्यापारमें उनकी आवश्यकताकी बात उठाई। भीमसेन उसे सुनकर आह्लादके साथ उस प्रस्तावसे सम्मत हो गये। तब और कालक्षेपणको अनर्थक और अनावश्यक समझ कर दयानन्दने पण्डित भीमसेन और पूर्वलिखित बंगाली बाबूके साथ काशीसे अयोध्याकी ओर यात्रा की। मार्गमें जौनपुर नगरमें कुछ दिन रह कर उन्होंने सरयूतटवर्तिनी अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ सरयुबाग नामक मनोरम स्थानमें स्वामीजी रहने लगे। सरयु [illegible] शान्तरसाभिषिक्त भूमिमें स्वामीजीका भाष्यप्रचार रूपी सङ्कल्प-बीज अंकुरित हुआ। उनकी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सरयुबागमें ही रची जाने लगी। इसीलिए दयानन्दके वेदभाष्यके इतिहासमें सरयुबाग स्मरणीय रहने योग्य है। केवल सरयूबाग ही नहीं, १९३३ सम्वत्के भाद्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथि

अन्तमें उनके सुहृदोंमें परिगणित श्रीयुक्त श्यामजी कृष्ण वर्म्मा महाशयके इङ्गलैण्ड जाने पर उन्होंने इस विचारको त्याग दिया था—ऐसा सुना जाता है। स्यात् उन्होंने यह सोच लिया था कि कृष्णवर्मा द्वारा ही उनका इङ्गलैण्ड जानेका उद्देश्य सिद्ध हो जायगा। परन्तु वास्तवमें ऐसा हुआ नहीं।

रविवारका दिन भी स्मरणीय रहेगा, क्योंकि स्वामी दयानन्द इसी दिन वेदभाष्यके प्रचारका सूत्रपात करके आर्यावर्त्तमें अपने अति उज्ज्वल कीर्ति-स्तम्भको स्थापित कर गये हैं।

दयानन्द अयोध्यासे शाहजहाँपुर और बरेली होते हुए अलीगढ़के जिलेमें छलेश्वर गये। छलेश्वरमें दयानन्दकी दूसरी संस्कृतपाठशाला थी। सम्भवतः उसी पाठशालाके निरीक्षणके लिये ही वह छलेश्वर गये थे। छलेश्वरसे स्वामीजी दिल्ली आये। दिल्लीमें उस समय दर्बार था। महारानी विक्टोरियाको "भारतराजराजेश्वरी" की उपाधिसे अभिहित करनेके लिये ही उस दर्बारका समावेश हुआ था। इसलिये बड़े समारोहके साथ उसका आयोजन हो रहा था। राजप्रतिनिधि लार्ड लिटन दर्बारके सम्पूर्ण कामोंको सर्वाङ्ग रूपसे सम्पादित करनेके लिये अक्लान्त-देहसे परिश्रम कर रहे थे, नीची कक्षाके राजकीय कर्मचारिवर्ग दिल्लीकी ओर दौड़े आ रहे थे। दर्बारमें उपस्थित होनेके लिये राजप्रतिनिधि किसीको अनुरोध कर रहे थे, किसीको आह्वान कर रहे थे, और किसीको निमन्त्रित करके आ रहे थे। भारतवर्षके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके विशिष्ट व्यक्तिगण आज्ञाबद्ध होकर सामन्तवर्ग आहूत होकर, और मित्र और करप्रद राजगण निमन्त्रित होकर एक-एक करके दिल्लीमें आ रहे थे। निमन्त्रित राजगणमें कोई ग्रीवा अवनत किये हुए, कोई अस्वाभाविक हास्यसे अपने मुखमण्डलको विकृत किये हुए, और कोई रेखाके ऊपर रेखासे अपने ललाट पटको संकुचित किये हुए दर्बारभूमिमें प्रविष्ट हो रहे थे। इसके अतिरिक्त नाना श्रेणियोंके लोग नाना स्थानोंसे आकर दिल्लीके भीतर प्रवेश कर रहे थे। वहाँके राज-पथ जनप्रवाहसे अवरुद्धप्राय हो रहे थे। अगणित लोगोंके आनेसे, अशेषविध कण्ठोंके कोलाहलसे, और अश्वरथादिके आने-जानेकी घोर रवसे नगरवक्ष विकम्पित हो रहा था। फलतः

जिस समय ऐसे समारोहसे दिल्लीका वक्षःस्थल विलोडित हो रहा था, उस समय दयानन्द सरस्वतीने ऋग्वेदादि भाष्यकी पाण्डुलिपि हाथमें लिये हुए वहाँ पदार्पण किया।

ऐसे समयमें स्वामीजी दिल्लीमें क्यों आये ? क्या वह दर्बार देखनेके अभिप्रायसे उपस्थित हुए थे, अथवा क्या उन्होंने उस समारोहशालितासे आकृष्ट होकर आगमन किया था ? हमारा विश्वास ऐसा नहीं है। तो क्या बंगालके केशवचन्द्र जिस कारणसे उपस्थित हुए थे, बम्बईके गोपालराव हरिदेशमुख जिस कारणसे आये थे, किंवा सय्यद अहमद प्रभृतिके समान प्रतिनिधिपदारूढ़ व्यक्तिगण जिस कारणसे दर्बार-क्षेत्रमें आये थे, दयानन्द भी उसी कारणसे दिल्ली आये थे ? ऐसा भी नहीं है। तो क्या जिस उद्देशसे भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंके राजन्यवर्ग वहां एकत्रित हो रहे थे, जिसउद्देश्यसे ग्वालियर और इन्दौर, जम्मू और जोधपुर, कपूरथला और कोल्हापुर प्रभृतिके अधिपतिगण दर्बार-भूमिके चारों ओर शिविर सन्निवेश करके निवास कर रहे थे; संन्यासी दयानन्दने भी उसी उद्देश्यसे परिचालित होकर दिल्लीमें प्रवेश किया था ? ऐसा भी नहीं है। तो दयानन्दका दिल्ली आनेका क्या प्रयोजन था ? दिल्लीमें आनेका एक विशेष प्रयोजन था। वह प्रयोजन किसी प्रकारसे दयानन्दका स्वार्थप्रसूत नहीं था, किन्तु वह समस्त भारतके स्वार्थके साथ ही संसृष्ट था। दयानन्दने जान लिया था कि भारतभूमि विच्छिन्न विभक्तीकृत है। इन्होंने समझ लिया था कि भारत निवासी भिन्न-भिन्न मन्त्रोंकी सिद्धिमें विभिन्न पथों पर चल रहे हैं। इसी कारण वह वेदकी प्रतिष्ठाके लिये बद्धपरिकर होकर इतने दिन तक संग्राम करते हुए आरहे थे, क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि वेद-प्रकाशके विस्तारसे ही भारतकी सर्व प्रकारकी विभिन्नता दूर होगी। इस समय किस

उपायका अवलम्बन करनेसे वह वेद-प्रतिष्ठा रूपी पवित्रव्रत सर्वतोभावेन सुसाधित हो सकेगा—इस विषयमें मन्त्रणा करनेके लिये ही वह दिल्लीमें आकर उपस्थित हुए थे।

उपस्थित विषयकी आलोचनाके लिये यह एक प्रकृत सुयोग था। क्योंकि जिस स्थानमें भारतके सारे प्रदेशोंके सुधीवर्ग सम्मिलित होंगे, स्वदेशहितैषिताके अग्रणी व्यक्तिगण एकत्रित हो जिस स्थलको समलंकृत करेंगे, और सिन्ध्या, हुल्कर और राणा महाराणाओंके विश्रुतनामा वंशधर जिस स्थलमें इकट्ठे होकर क्षात्र वैभवकी पूर्वस्मृतिको पुनरुद्दीपित करेंगे, उल्लिखित प्रस्तावकी पर्यालोचनाके विषयमें वह स्थान अतीव उपयोगी होगा—इसमें और क्या सन्देह है? अस्तु। दिल्लीका जो भाग अब पुरानी दिल्लीके नामसे प्रसिद्ध है दयानन्द आकर वहांके एक उद्यानमें ठहरे ❀। यद्यपि उस समय दिल्लीकी चारों दिशा सागरवक्षके समान विक्षोभित हो रहीं थीं, तथापि उससे स्वामीजीका अणुमात्र भी चित्तविक्षेप नहीं हुआ। इसलिये वह पूर्वके समान ही अव्याहत भावसे भाष्यकी रचनामें नियोजित रहे। इसके पश्चात् प्रस्तावित विषयकी आलोचनाके लिये एक दिन निरूपित हुआ। उस नियत दिवसके निर्दिष्ट समय पर भारतके नाना सुधी और सज्जनगण एकत्रित हुए।

❀कोई-कोई कहते हैं कि स्वामी दयानन्द दिल्लीमें आकर इन्दौराधीशके शिविरमें ठहरे थे, यहाँ तक कि वह इन्दौराधीशके अनुरोध ही से दिल्लीमें आये थे। ऐसा सुना जाता है कि इन्दौराधीशने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वेदप्रतिष्ठा विषयमें परामर्श करनेके उद्देश्यसे दर्बारमें आये हुए राजगणको स्वामीजीसे मिलायेंगे, परन्तु शोक है कि इन्दौरपति उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर सके।

बंगालदेशके केशवचन्द्रसेन, बम्बईके हरिदेशमुख, अलीगढ़के सैयद अहमद, लुधियानेके कन्हैयालाल अलखधारी, और लाहौरके पण्डित मनफूल प्रभृति प्रोज्ज्वलकीर्त्ति व्यक्तिगण एक एक आकर उस सभाक्षेत्रको सुशोभित करने लगे। फलतः नाना दिशाओंसे आये हुए तारागणके अभ्युदयसे वह सभामण्डल प्रभावित हो उठा। स्वामी दयानन्दने उस सभाभूमिमें चन्द्रमाके समान अधिष्ठित होकर आर्यावर्त्तकी उन्नति और एकता विषयक प्रसङ्ग उठाया। यह मानना होगा कि उत्थापित प्रसङ्ग जैसा क्षेत्रोपयोगी था, वैसा ही पात्रोपयोगी भी था। अधिक क्या, उत्थापित प्रसङ्ग उस सभा और सभासदोंके पक्षमें सर्वतोभावेन गौरवसाधक था। किन्तु ऐसा होने पर भी उस विषयमें सब एकमत नहीं हो सके। इसके सम्बन्धमें उसमें एक दूसरेसे सम्मतिभेद होने लगा। भारतभूमिमें एकता स्थापन करनेके विषयमें प्रायः सब ही भिन्न भिन्न मार्गोंका निर्देश करने लगे। केशवचन्द्रसेनने यह बात कही कि ब्राह्मसमाजप्रसूत शक्ति ही इस देशमें एकतास्थापनका प्रधान कारण होगी। इसलिये उसी शक्ति को सर्वतोभावेन प्रतिष्ठित और प्रसारित करनेकी चेष्टा करना ही, उनके विचारमें, भारतभूमिके लिये नितान्त आवश्यक है। इस प्रकारसे प्रायः सब ही के अपने-अपने मनोभावको व्यक्त करने पर स्वामीजीने अतीव विज्ञताके साथ उनकी सम्मतियोंकी आलोचना करके कहा कि वेदप्रतिष्ठाके सिवाय आर्यावर्त्तमें एकता स्थापित करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है, क्योंकि वेदोंके तुल्य ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसके नाम पर आर्य्यमात्र मस्तक झुकायेंगे, वैदिकमार्गके समान ऐसा कोई मार्ग नहीं है जिसके ऊपर शैव, शाक्त और सौर आदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय आकर समान भावसे खड़े होंगे, और वेदोंके समान आर्य्योंके बीचमें ऐसा कोई आश्रयतरु नहीं है जिसके

नीचे आकर भारतके उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम दिशाओंके नरनारीगण शान्ति लाभ कर सकेंगे। इसलिये वेद ही आर्योंके एकमात्र अवलम्बन हैं और एकमात्रवेदोंके अवलम्बनमें ही आर्यावर्तकी एकता और उन्नति है। स्वामीजीकी इन बातोंने श्रोतृवर्गके हृदयोंमें चोट तो अवश्य लगाई, परन्तु उनके हृदयोंको वे आकृष्ट नहीं कर सकीं। विशेषतः स्वामीजीका यह अशेष-हितकर प्रस्ताव केशवचन्द्रके पक्षमें नितान्त आपत्तिकर हुआ, और उनकी आपत्ति अनेकोंके निकट अनुपेक्षित प्रतीत होने लगी। उसीके होनेकी तो बात थी, क्योंकि उस समयके प्रभाव और ज्ञान सम्बन्धमें केशवचन्द्र जितने अग्रवर्ती हो रहे थे, दयानन्द उतने नहीं हुए थे। इसलिये अपेक्षाकृत अल्पबुद्धि मनुष्योंमें केशवचन्द्रका ही पक्ष प्रबल रहा। सुतरां स्वामीजीको व्यर्थमनोरथ होकर उस सभास्थलको परित्याग करना पड़ा।

उसके पश्चात् दयानन्द मेरठ गये। मेरठ जानेके समय पूर्वोक्त बंगाली बाबू पर वेदभाष्यके मुद्रणका भार अर्पण करके उन्हें काशी भेज दिया। उन्होंने काशी जाकर लाजरस साहबके प्रसिद्ध यन्त्रालयमें भाष्य छपानेका प्रबन्ध किया। स्वामीजी मेरठ आकर वहांके सूर्य्यकुण्डके पास एक गृहमें रहने लगे। इसके अतिरिक्त वहांके एक उद्यानमें भी कुछ दिने रहे। परन्तु स्वामीजी इस यात्रामें एक पक्षके समयसे अधिक नहीं रहे। मेरठमें उनकी वक्तृता या व्याख्यानादि कुछ नहीं हुआ, तो भी उनके आनेका समाचार सुन कर वहांके अनेक व्यक्ति बातचीत करनेके लिये कौतूहलाक्रान्त हुए, और हिन्दू-मुसलमान प्रभृति अनेक सम्प्रदायोंके बहुतसे व्यक्ति उनके पास आकर बहुतसे प्रश्न करने लगे! ऐसा कहा जाता है कि उस समय वहाँके एक पण्डित स्वामीजीके पास आकर प्रायः धूम्रपानका खण्डन किया करते थे। स्वामीजी उस समय धूम्रपान करते थे। स्यात्

इसी कारण पण्डितजी उसके प्रतिवादमें प्रवृत्त हुए थे❋। किम्बहुना, स्वामीजी उनके तम्बाकू सम्बन्धी प्रतिवादको साग्रह होकर सुनते थे। इस यात्राको मेरठमें इस प्रकार अतिवाहित करके दयानन्द चांदापुर चले गये।

चांदापुरमें उस समय मेला था मेलेमें वहुतसे लोग आये हुए थे। इस कारण वहांकी मेलाभूमिमें वैदिकधर्मके विचारके लिये किसी न किसी उपायका अवलम्बन करना अनेक लोगोंने उचित समझा। इसलिये स्वामी दयानन्दसे विशेषरूपसे अनुरोध किया गया, और उन्होंने भी प्रतिज्ञा की कि वे अनुरोधकोंके इच्छानुसार ही कार्य करेंगे। अन्यान्य मेलोंके समान चांदापुरके मेलेमें भी पादरी लोग उपस्थित हुए थे। मुसलमानमतकी महिमाके विस्तार करनेके लिये एक मौलवी भी आये थे। क्या कृष्टान, क्या मुसलमान, सब ही लोग मेले में आये हुए मनुष्योंके सामने अपने-अपने साम्प्रदायिक मतोंकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करनेके लिये बद्धपरिकर होने लगे। उस समय भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंके अनुरोधसे, विशेषतः मुंशी प्यारेलाल नामक एक स्वधर्मनिष्ठ सदाशय व्यक्तिके विशेष उद्योगसे, एक सभा बुलाने-

---

❋दयानन्द उस समय धूम्रपान करते थे, इसलिये अनेक लोग अति उत्कृष्ट और सुगन्धित तम्बाकू क्रय करके उन्हें उपहारमें देते थे। परन्तु एक दिनकी घटनासे स्वामीजीने धूम्रपानका अभ्यास छोड़ दिया। यह एक बार लाहौरमें बैठे हुए धूम्रपान कर रहे थे कि इतनेमें एक व्यक्तिने आकर कहा—"आप सर्वत्यागी संन्यासी हैं। क्या आपके पक्षमें इस प्रकार बहुमूल्य तम्बाकू सेवन करना विधेय है?" इस बातके सुनते ही स्वामीजीने उसी क्षणसे धूम्रपानका अभ्यास छोड़ दिया और उस व्यक्तिकी स्पष्टवादिताकी मन-मनमें प्रशंसा करने लगे।

का आयोजन होने लगा। तदनुसार सन् १८७७ ईस्वीको मार्चकी १६ यीं तारीखको उस विस्तृत मेलाभूमिके एक स्थलमें एक महती सभाका अधिवेशन हुआ। सभास्थलमें नाना सम्प्रदायोंके व्यक्ति आये। कोई सत्यार्थी होकर और कोई-कोई कौतूहलकी तृप्तिके लिये ही आये। कृष्टान, मुसलमान और हिन्दू तीनों सम्प्रदायोंमेंसे कई एक प्रतिनिधि नियत हुए। स्काट, नोबिल, पार्कर और जानसन नामक चार पादरी ईसाईमतके, मोहम्मद-क़ासिम और अब्दुलमंसूर दो मौलवी मुसलमानमतके, और स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिकमतके पक्षसमर्थनार्थ सभाभूमिमें आकर अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। एक वेदनिष्ठ हिन्दू भी सहायक रूपसे स्वामीजीके साथ आये। उन सहायकका नाम मुंशी इन्द्रमणि था। उसके पश्चात् उस सभाके विचारणीय विषय सम्बन्धमें आलोचना होने लगी। अन्तमें सबकी सम्मतिके अनुसार सभाका विचारणीय विषय धर्म्मके मूलतत्वका निरूपण करना निश्चित हुआ। परन्तु विचारणीय विषयकी मीमांसा कतिपय शाखा-प्रश्नोंकी मीमांसा पर निर्भर की गई। वे शाखा-प्रश्न ये थे :—

(१) परमेश्वरने किस समय और किस-किस उपकरणसे सृष्टिरचना की?

(२) परमेश्वर सर्वत्र विद्यमान है वा नहीं?

(३) ईश्वरकी दया और न्याय किस प्रकार है?

(४) वेद, कुरान, और बाइबिलके ईश्वरोक्त होनेका क्या प्रमाण है?

(५) मुक्ति और उसका उपाय क्या है?

इन्हीं पाँच विषयोंपर विचार होने लगा। स्वामीजीने सबसे अनुरोध किया कि इस प्रकार कार्य किया जाय कि जिससे

मौलवी और चारों पादरी सन्तुष्ट नहीं हुए; परन्तु तो भी कोई आपत्ति नहीं कर सके। फलतः वे लोग उस सभामें और अधिक नहीं ठहरे। विशेषतः मौलवियोंके पक्षमें वह सर्वतोभावेन ही अशान्तिकर हो गया। मौलवीगण सभास्थलसे चले गये, और यह कह गये कि वे शाहजहाँपुर जाकर स्वामीजीके साथ विचार करेंगे। शोक है कि स्वामीजीके भविष्यत् शाहजहांपुर जाने पर भी उनमेंसे कोई उनके पास नहीं आया।*

इस प्रकार चांदापुरकी मेलाभूमिमें वैदिकमतकी घोषणा करके स्वामीजीने पञ्जाबमें प्रवेश किया। वह लुधियाना नगरमें जाकर थोड़े दिन ठहरे। पूर्वोक्त कन्हैयालाल अलखधारी लुधियानेके एक विशिष्ट निवासी थे। अधिकन्तु वह पञ्जाबके समाजसंस्कारक करके प्रसिद्ध थे। साधु—सन्यासियोंके प्रति कन्हैयालाल बहुत आस्थावान् नहीं थे, परन्तु ऐसा न होने पर भी दयानन्दसे वह बहुत अनुरक्त हो गये; और इसी कारणसे जब स्वामीजी लुधियाने गये, तो उन्हें आग्रहके साथ अपने घर लिवा ले गये। कन्हैयालालके उद्योगसे लुधियानेमें एक सभा बुलाई गई उस सभामें अप्रैलमासकी पहली तारीखको स्वामीजीने एक वक्तृता दी। उनकी वक्तृतासे लुधियाना नगरमें वैदिकधर्म्मका आन्दोलन होने लगा। किम्बहुना, वहांके निवासी और अधिक ठहरनेके लिये स्वामीजीसे अनुरोध करने लगे। परन्तु वह उनके अनुरोधपालनमें समर्थ नहीं हुए, क्योंकि उन्हें लुधियानासे लाहौरको जाना था।

---

*शास्त्रार्थका विस्तृत विवरण "सत्यधर्मविचार" (मेला चान्दापुर) पुस्तकमें देखिये। मूल्य ≈)॥ मिलने का पता—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

दशम परिच्छेद ।
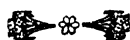
लाहोरमें आना, वहां व्याख्यान और स्थानीय ब्राह्मणोंकी विरोधिता, स्थानीय ब्रह्मसमाजमें वक्तृता, वेदालम्बन विषयमें ब्राह्मोंके साथ विचार, वेदभाष्यके सम्बन्धमें गवर्नमेण्टसे साहाय्यकी प्रार्थना, भाष्य-सम्बन्धमें गवर्मेण्टके मतका संग्रह, पादरी हूपर और कई ब्राह्मणोंके साथ शास्त्रार्थ, लाहौरमें आर्यसमाजस्थापन, रावलपिण्डी प्रभृति स्थानोंमें गमन और आन्दोलन, लाहौरमें प्रत्यागमन और मुल्तानयात्रा, मुल्तानमें व्याख्यान और आर्यसमाज स्थापन, अन्यान्य नगरों में गमन और पंजाब-की सीमा का उत्तरण ।

उन्नीसवों अप्रैल दयानन्दके लाहौर आनेका दिन था । उनसे लाहौर आनेके लिये अनुरोध किया था । इससे पहले कहा जा चुका है कि लाहौरके कतिपय सम्भ्रान्त व्यक्ति दर्बारके उपलक्षमें दिल्ली गये थे । दिल्लीमें वे स्वामीजीसे परिचित हो गयें थे, और परिचिय होनेमें स्वामीजीके असीम पाण्डित्य,

असाधारण प्रतिभा और अकृत्रिम स्वदेशप्रीतिको देख कर विमोहित हो गये थे, और वह पञ्जाबके प्रधान नगरमें एक वार पदार्पण करनेके लिये स्वामीजीसे अनुरोध कर आये थे। परन्तु हमारे विचारमें दयानन्द केवल अनुरोधविवश होकर ही लाहौर नहीं आये। पञ्जाबसे उन्हें बहुत दिनोंसे गाढ़ प्रीति थी, और स्वामी दयानन्द जैसे संस्कारकके लिये पञ्जाबके साथ गाढ़ प्रीति होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि जिस स्थानमें परम शक्तिका प्रथम ही उद्बोधन हुआ था, जिस स्थलमें परा विद्याने जन्म लेकर पृथ्वीकी यावतीय जातियोंको ज्ञान धर्ममें शिक्षित किया था, और जिस स्थलसे सरस्वतीकी शक्तिने सौ धाराओंमें उत्सारित होकर मनुष्यके सुविस्तृत मनोराज्यको सरस और उर्वर किया था, उस स्थलके साथ स्वामी दयानन्दके अकृत्रिम अनुरागसूत्रमें बंधनेमें क्या विचित्रता है? केवल यही नहीं, सप्तसिन्धुके पुण्यमय प्रभावसे जिस देशकी भूमि विशोधित हुई थी, गुरु नानकके शोणित अस्त्राघातसे भ्रान्त विश्वास और भ्रान्त संस्काररूपी कण्टक-जाल जिस प्रदेशसे एक प्रकारसे अन्तर्हित हो गया है, और गुरु गोविन्दसिंहकी गरीयसी साधनामें जिस प्रदेशके निवासिगण सरल और सजीविता-सम्पन्न होकर एक श्रेष्ठ जाति परगणित होते हैं, उस प्रदेशमें अद्वितीय ब्रह्मकी उपासनाका बीज बोनेमें यदि दयानन्द स्वभावतः ही उत्साहित हुए, तो इसमें क्या आश्चर्य है? सुतरां लाहौर-आगमनके विषयमें स्वामीजी जैसे अनुरुद्ध हुए थे, वैसे ही अनुरागी भी हो गये थे। किन्तु ऐसा होनेसे भी, अनुराग-भारावनत हृदयसे पञ्जाब क्षेत्रसे पदार्पण करनेसे भी, उन लोगोंको, जो स्वामीजीको निमन्त्रित कर आये थे, पञ्जाबके हितैषियोंमें निश्चय ही परिगणित करना होगा। आश्चर्य है कि निमन्त्रण देने वालोंमें अधिकतर व्यक्ति ब्राह्मसमाजसंसृष्ट थे, क्योंकि लाला जीवनदास,

पण्डित मनफूल* स्वर्गीय नवीनचन्द्रराय और पण्डित अमरनाथ प्रभृति सब ही लाहौरके ब्राह्मसमाजके साथ किसी न किसी सूत्रमें सम्बद्ध थे। अतएव प्रतीत होता है कि दयानन्दको लाहौर लानेके लिये स्थानीय ब्राह्मणगणने ही विशेष रूपसे चेष्टा की थी।

अस्तु। अप्रैलकी पूर्वोलिखित तारीखको दयानन्द लुधियानेसे लाहौर आ पहुँचे। स्टेशन पर उतरते ही पूर्वोक्त महोदयगणने उनका स्वागत किया। दयानन्दने उन्हें देख कर आनन्द प्रकट किया, और वे भी दयानन्दको देखकर नितान्त हृष्टान्तःकरण हुए। उन्हें लिवानेके लिये स्टेशन पर चार गाड़ियाँ गई थीं, किन्तु उनमेंसे एक गाड़ीको तो स्वामीजीके ग्रन्थोंका बोझ ढोना पड़ा। सुतरां शेष तीन गाड़ियोंमें स्वामीजी और अन्यान्य व्यक्ति-गण बैठे। कुछ काल पीछे उनकी गाड़ियाँ दीवान रत्नचन्द्रके उद्यानके द्वार पर आ पहुँची। इससे विदित होता है कि रत्नचन्द्र-का उद्यानही स्वामीजीके रहनेके लिये नियत हुआ था। फलतः वह उद्यान केवल दयानन्दके रहनेके ही काममें नहीं आया, वहाँ प्रतिदिन अपराह्नमें स्वामीजीके व्याख्यान भी होने लगे। इसके अतिरिक्त अप्रैलकी २५ वीं तारीखको दयानन्दने एक व्याख्यान 'वेद और वेदोक्त धर्म' विषय पर दिया। वह व्याख्यान लाहौरके बावली साहब नामक स्थानमें हुआ था। बावलीसाहब सिक्ख-

---

*कोई-कोई कहते हैं कि पण्डित मनफूलने स्वार्थसे परिचालित हो कर ही दयानन्दसे लाहौर आनेके लिये अनुरोध किया था। उनका एक पुत्र ईसाई धर्म अवलम्बन करनेका उपक्रम कर रहा था; इसलिये स्वामीजीको लाहौर लाकर उनके उपदेशसे उस विपथगमनोद्यत पुत्रको स्वपथस्थ करनेकी इच्छा करते थे। परन्तु अनुसन्धान करने पर विदित हुआ कि यह बात ठीक नहीं है।

सम्प्रदायके निकट एक पवित्र स्थान परिगणित होता है। उल्लिखित वक्तृतासे लाहौरमें चारों ओर तुमुल आन्दोलन होने लगा। उससे ब्राह्मणगण बहुत ही विरक्त हो गये। केवल विरक्त ही नहीं हुए, वे अत्यन्त कोपाविष्ट हो कर स्वामीजीके विरुद्ध आचरण करने लगे। उन ब्राह्मणोंके उद्योगसे शीघ्र ही एक पण्डित-सभा स्थापित हो गई। वह सभा स्वामी दयानन्दकी प्रतिपत्ति नष्ट करनेके लिये सहस्रों प्रकारसे चेष्टा करने लगी। पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी नामक एक हिन्दी कवि उस सभाके अग्रणी रूपसे खड़े हुए। उन्होंने पूर्वोक्त बावली-साहब नामक स्थानमें मूर्तिपूजाके समर्थनमें एक वक्तृता दी थी। उस वक्तृतासे ब्राह्मणगण तो सन्तुष्ट हो गये, परन्तु लाहौरके शिक्षित जन सन्तुष्ट न हो सके। अन्तमें पण्डितसभाकी द्वेषाग्नि क्रमशः प्रबल हो उठी। दयानन्द और उनके पक्षावलम्बियोंके साथ ब्राह्मणगण विवाद पर उद्यत हो गये। यहाँ तक कि दोनों पक्ष जिससे शान्तभावका अवलम्बन करें—इस प्रयोजनसे स्थानीय 'कोहेनूर' पत्रमें लेखादि भी प्रकाशित होने लगे। परन्तु किसी प्रकारसे भी ब्राह्मणोंका कोप शान्त नहीं हुआ। उन्होने रतनचन्द्र-पुत्र दीवान भगवानदासके पास जाकर बहुत अनुयोगके साथ कहा—"आप इस म्लेच्छको बागसे निकाल दीजिये।" ब्राह्मणों-का सम्मिलित अनुरोध भगवानदासके लिये अनतिक्रम्य हो गया। इसलिये उन्होंने स्वामीजीसे दूसरे स्थानमें चले जानेके लिये अनुरोध किया। स्वामीजीने उनके अनुरोधवचनके उत्तरमें कहा, "मैं आपको नहीं जानता। जिन लोगोंने इस उद्यानमें ठहरनेके लिये मुझसे अनुरोध किया है, उनके कहनेसे मैं यहांसे चला जाऊँगा।" भगवानदासने तब और उपाय न देख कर पूर्वोलिखित महोदयोंके पास जाकर अपना मनोभाव प्रकट किया। वे भगवानदासका अभिप्राय जानकर व्यस्त हुए, और शीघ्र ही

डाक्टर रहीमखाँ नामक एक सम्भ्रान्त मुसलमानकी कोठीमें स्वामीजीको लिवा लाये*। परन्तु लाहौरके ब्राह्मणगण इस पर भी चुप नहीं हुए। वे दुरभिसन्धसे परिचालित होकर इधर-उधर यह बात कहने लगे कि दयानन्द सरस्वती अङ्गरेजी राज्यसे वेतन ग्रहण करके हिन्दुओंको धर्मभ्रष्ट करनेका उद्योग करते फिरते हैं।†

उसके पश्चात् स्थानीय ब्राह्मसमाजमें दयानन्दने दो वक्तृतायें दीं। एक वक्तृता पुनर्जन्म विषय पर और दूसरी वेदान्त विषय पर थी। परन्तु ब्राह्मणगण उनकी वक्तृता सुन कर सन्तुष्ट नहीं हुए। यह निश्चय है कि ब्राह्मणगणने दयानन्दको स्वयं ही

---

*उस समय पूर्वोलिखित पण्डित मनफूलने लाला जीवनदास प्रभृतिके निकट आकर कहा कि आप स्वामीजीसे कुछ चुप होनेके लिये कहें जिससे वह मूर्तिपूजाका खण्डन न करें। ऐसा होनेसे जम्बूके महाराजा तक प्रसन्न होकर उनकी बहुत प्रकारसे सहायता करेंगे। जब यह कथा स्वामीजीके कानों तक पहुँची, तो उन्होंने कहा कि—"मैं वेदप्रतिपादित ब्रह्मको प्रसन्न न करके जम्मूके महाराजको कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ।"

† ऐसे अमूलक जनरव दयानन्दके नाम पर नाना स्थानोंमें समय-समय पर प्रचारित होते थे। जब वह कलकत्ता आये थे, तब भी कई दुष्टबुद्धि लोगोंने उनके सम्बन्धमें इसी प्रकारका एक अपवाद उठाया था—हम यह कथा पहले ही कह आये हैं। एक वार बुलन्दशहरमें एक व्यक्तिने दुरभिसन्धिसे परिचालित होकर इसी प्रकारका अपवाद प्रचारित किया था और अपराधी रूपसे अभियुक्त हुआ था, और उसे छः मासके कारागारका भी दण्ड हुआ था। स्वामीजी यह जान कर बहुत दुखित हुए और गवर्नमेण्टसे अधिक अनुरोध करके उसे कारागारसे छुड़ा दिया।

The Regenerator of Aryavarta. 1884 Nov. 10.

बुलाया था, और वक्तृताके लिये अपने मन्दिरका द्वार भी खोल दिया था। तब फिर दयानन्दकी वक्तृता प्रीतिप्रद क्यों नहीं हुई? प्रीतिप्रद होना तो दूर रहा, उनमेंसे कई ब्राह्म लोग तो उनकी वक्तृता सुन कर विरक्त होगये, और स्वामीजीकी वक्तृता पर लाहौरके ब्राह्मोंमें एक आन्दोलन चलने लगा। परन्तु ऐसा होनेका क्या कारण था। कारण यही था कि स्वामीजीने ब्राह्मोंसे वेदके ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया था। उन्होंने मुक्त कण्ठसे कहा था कि ब्रह्म ही आर्यों का चिरन्तन आराध्य है और वही ब्रह्म सब वेदोंका प्रतिपाद्य है। इसलिये ब्रह्मके उपासकोंको वेदच्युत होकर रहना किसी प्रकारसे विधेय नहीं है। दयानन्दकी ये सब बातें निश्चय ही ब्राह्म लोगोंके विरोधी थीं, क्योंकि इदानीन्तन ब्राह्मणोंका* वेदोंको आप्त वा अपौरुषेय शास्त्र मान कर ग्रहण करना तो दूर रहा, वे यह बात स्वीकार करने पर भी प्रस्तुत नहीं हुए कि ब्रह्म ही यावतीय वेदोंका वन्दनीय है। इसलिये यह सहजमें ही समझमें आ जाता हैं कि पूर्वोल्लिखित वेद विषयक अनुरोध ब्राह्मसमाजके सदस्योंके लिये आपत्तिकर क्यों हुआ। अस्तु लाहोरके ब्राह्मोंके भीतर ऐसी वेदवितृष्णा देख कर दयानन्द उन्हें वारम्वार समझाने लगे। वेदोंके समान और कोई ग्रन्थ पृथ्वीमें नहीं है, वेदावलम्बनके बिना भारतमें एकतास्थापनका दूसरा उपाय नहीं है—इत्यादि बातोंके समझानेके लिए वह सर्वदा ही सचेष्ट रहे। किन्तु दुख है कि उनकी चेष्टा अधिक फलदायिनी नहीं हुई है। ब्राह्मसमाजसे केवल थोड़ेसे सदस्य ही इस विषयमें उनके पक्षपाती हुए, और अधिकांश ब्राह्म उनसे

*आधुनिक ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते हैं, पर ब्राह्मसमाजके संस्थापक राजा राममोहनराय वेदोंको आप्त और अपौरुषेय स्वीकार करते थे।

विरक्ति प्रकट करने लगे। वे केवल विरक्ति प्रकट करनेसे ही निश्चिन्त नहीं रहे, किन्तु द्वेषविवश होकर स्वामीजीकी निन्दाके प्रचारमें भी प्रवृत्त हो गये। अधिक क्या, उन द्वेषबुद्धिपरायण ब्राह्मोंने दयानन्दके सम्बन्धमें शिष्टाचारकी सीमाको भी उल्लङ्घन कर डाला। क्योंकि उपस्थित विषयमें उस समयके एक सामयिक पत्रमें जो कुछ प्रकाशित हुआ था वह वास्तवमें अशिष्टताका परिचायक है। यथा :—

"The expenses of the Swami for the first two weeks were paid by the Brahmo Samaj. They amounted to nearly Rs. 25. But when the Brahmos saw that Swami Dayananda would not join their Brahmo Samaj, and that it was impossible for them to convert him to Brahmoism, they not only withheld the payment of the Swamiji's expenses, but also realized the amount they had paid before, out of the subscription collected for his future expenses for one month."$

इस अङ्गरेजी वाक्यका तात्पर्य यह है कि स्वामी दयानन्दके पहले दो सप्ताहका व्यय २५) ब्राह्मसमाजने दिया था; परन्तु उनके साथ जब ब्राह्मोंका मतभेद हो गया, तब ब्राह्मोंने उनका साहाय्य एक दम बन्द कर दिया। यहां तक कि साहाय्यरूपसे दिये हुए पहले २५) रुपयोंके भी लौटा लेनेमें वे तनिक भी कुण्ठित नहीं हुए। हम नहीं कह सकते कि यह घटना कहाँ तक सत्य है। यदि हो, तो इसकी अपेक्षा अनुदारताका परिचय ब्राह्मचरित्रमें और क्या हो सकता है ? फलतः इन सब कारणोंसे लाहौरके ब्राह्मोंमें विच्छेद होनेकी सूचना हुई। ऐसी दशामें

$The Regenerator of Aryavarata 1833 January P. 3.

विच्छेदका होना स्वाभाविक ही था। जिन लोगोंने वेदावलम्बन विषयमें स्वामीजीकी बातको सङ्गत और शुभदायक कहकर ग्रहण कर लिया उनपर अन्यान्य ब्राह्मगण द्वेषविषकी वर्षा करने लगे। यहाँ तक कि यह बात लाहौरमें सब जगह फैल गई कि वे लोग वेदोंका सर्वोपरि प्राधान्य स्वीकार करनेसे ब्राह्मधर्मसे च्युत हो गये हैं। क्रमशः द्वेषका भाव और गहरा होगया। वेदविरोधी ब्राह्मगण उन लोगोंको अब्राह्म कह कर घृणा करने लगे। इसलिये वेदवादी ब्राह्मगणने भी उन लोगोंसे सम्बन्ध तोड़नेका उद्योग किया। इस सब व्यापारका आनुपूर्विक वृत्तान्त दयानन्दके कर्णगोचर होने लगा। वह क्या करते;—अन्य उपाय न देख कर आर्यसमाजका स्थापन करना ही श्रेय समझने लगे। सत्यके अपरिहार्य अनुरोधसे यहाँ यह लिखना नितान्त ही आवश्यक है कि आदिमें स्वामीजीका सङ्कल्प स्वतन्त्र भावसे किसी सभा वा समाजके स्थापित करनेका नहीं था। यदि ब्राह्मगण वेदका अवलम्बन करते, यदि ब्राह्मसमाजके सदस्य-सदस्थगण वेदको सर्वश्रेष्ठ शास्त्र कह कर अन्ततः मान लेते, तो दयानन्द पृथक् भावसे कुछ करनेका कभी प्रयास न करते। परन्तु लाहौरस्थ ब्राह्मणगण जब उनसे किसी प्रकार भी सम्मत नहीं हुए, तो स्वामीजी अगत्या आर्यसमाजके स्थापनमें सङ्कल्पारूढ़ हुए। विशेषतः पूर्वोक्त कतिपय वेदनिष्ठ ब्राह्मलोग ही उपस्थित विषयमें उनसे अनुरोध करने लगे। अस्तु, इस विषय पर लाहौरमें एक आन्दोलन मच गया।

इस ओर वेदभाष्यका कार्य भी शीघ्रतासे हो रहा था। स्वामीजीने भाष्यके प्रकाशमें बहुत शीघ्रताका अवलम्बन किया था। वाराणसीके पूर्वोल्लिखित यन्त्रालयमें भाष्य मुद्रित होकर अंकोंमें प्रकाशित होता था। परन्तु उसकी ग्राहकसंख्या आशाके अनुरूप नहीं हुई। इसके न होनेकी कथा ही क्या है। इसके भिन्न

इसका तो कहना ही क्या है कि यह कार्य विलुप्तव्ययसापेक्ष था। इस कारण वेदभाष्यके व्ययके विषयमें स्वामीजी चिन्तित हो रहे थे। उस समय धन एकत्रित करनेके उपायके सम्बन्धमें स्वामीजीके बान्धववर्ग परामर्श करने लगे। अन्तमें उन्होंने एक उपाय भी सोचा। वह राजकीय साहाय्यके लिये गवर्नमेण्टसे प्रार्थना करने पर उद्यत हुए। यह उपाय असंगत वा अयुक्त नहीं था, क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि अंग्रेजोंके समान विद्योत्साही जाति पृथ्वीमें और नहीं है। क्या विद्याप्रचारमें, क्या ज्ञानलोकके विस्तारमें, अंग्रेजोंके समान मुक्तहस्त राजा बहुत न्यून देखनेमें आते हैं। यह कौन कह सकता है कि भारतवर्षके लुप्तप्राय शास्त्रोंके उद्धारमें और भारतीय प्राचीन तत्वके प्रचारमें अंग्रेजी सरकारने कितनी वार मुक्तहस्तताका परिचय दिया है? तब इसमें सन्देह ही क्या हो सकता था कि उपस्थित कार्यमें भी सरकार अकुण्ठित होकर साहाय्य करेगी? यह सोच कर वे लोग प्रार्थनापत्रकी रचनामें प्रवृत्त हुए, और उसके रचित और प्रस्तुत हो जाने पर उसे पञ्जाब गवर्नमेण्टके पास भेज दिया। प्रार्थनापत्रके साथ स्वामीजीके वेदभाष्यके दो अङ्क भी भेजे गये। उस प्रार्थनाप और वेदभाष्यके प्राप्त होने पर गवर्नमेण्टने उसके सम्बन्धमें पण्डितोंकी सम्मतिका जानना आवश्यक समझा। तदनुसार सेक्रेटरी सर लिपिल ग्रिफनने वेदभाष्यके वह दो अङ्क पञ्जाब यूनीवर्सिटीके रजिस्ट्रारके पास भेज दिये। उस समय लैटनर साहब रजिस्ट्रार थे। लैटनर महोदयने उस वेद-भाष्यके विषयमें पण्डितोंका अभिप्राय जाननेके निमित्तसे एक अनुरोधपत्र भी प्रकाशित किया। उस अनुरोधपत्रके साथ स्वामीजीका भाष्य भी पण्डितोंके पास भेजा गया। पण्डितगण उस विषयमें अपना-अपना अभिप्राय लिख कर भेजने लगे। उनका अभिप्रायसमूह गवर्नमेण्टने मुद्रत करा कर शीघ्र ही

वितरित कर दिया। आश्चर्य है कि उन सब संगृहीत और मुद्रित सम्मतियोंमें कोई भी स्वामीजीके अनुकूल न थी। अधिकन्तु, सब ही पण्डितोंने किसी न किसी प्रकारसे यही सम्मति प्रकट की कि दयानन्द सरस्वती वेदभाष्य रचकर एक स्वकपोलकल्पित विकृत भाष्यका ही प्रचार करते हैं। अधिकतर आश्चर्य यह है कि जिन लोगोंने स्वामीजीके भाष्य पर प्रतिकूल सम्मति प्रकाशित करनेमें अपनी तृप्तिकी थी उनमें सब ही स्वदेशी और सुपण्डित व्यक्ति नहीं थे, टानी और ग्रिफिथके समान वेदज्ञ अध्यापक भी भाष्यकी समालोचनामें संकुचित नहीं हुए, और गवर्नमेण्टने भी उनकी सम्मतिको आदरके साथ ग्रहण करनेमें इतस्ततः नहीं किया। अस्तु। स्वामी दयानन्द सत्यके प्रचारमें पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे। वह जिसे सत्य कह कर धारण करते थे, उसे अकुतोभय होकर प्रचारित करनेमें ही परितृप्त रहते थे। यहाँ तक कि वह उसके लिये वारंवार संग्राम करनेसे भी पराङ्मुख नहीं होते थे। उन्होंने जब देखा कि उपके रचित भाष्यके सम्बन्धमें पण्डितोंने असत्य सम्मति प्रकाशितकी है, जब उन्होंने जाना कि वैदिक साहित्यके सुपण्डित न होकर भी कितने ही व्यक्ति उनके भाष्यकी भ्रान्ति-प्रदर्शनमें प्रवृत्त हुए हैं, तब वह उसका प्रतिवाद किये विना न रह सके। वह एक-एक पण्डितकी सम्मतिको उद्धृत करके उसकी असारता दिखलाने लगे, और इस प्रकार सम्पूर्ण पण्डितोंकी सम्मतियोंका खण्डन करके सर्वतोभावेन स्वकीय भाष्यकी विशुद्धताका प्रतिपादन किया। तब उस प्रगाढ़ पाण्डित्यपूर्ण प्रतिवादकी पुस्तकके साथ पुनर्वार एक प्रार्थनापत्र भेजा गया, परन्तु तो भी उसका कुछ परिणाम न निकला। इसका कारण चाहे पूर्वोक्त पण्डितोंकी प्रतिकूल सम्मतियां ही हो अथवा और कोई कारण हो, स्वामीजीके भाष्य सम्बन्धमें गवर्नमेण्टने यही विचार पुष्ट रक्खा कि उसके सम्बन्धमें वह कोई सहायता करनी उपयुक्त

नहीं समझती। शुतरां वेदभाष्यके विषयमें राजकीय सहायताकी आशाका परित्याग करना पड़ा।

फलतः ब्राह्मोंके भीतर उल्लिखित आन्दोलन क्रमशः घोरतर हो गया। उनका विरोध उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। उस समय वेदवादी ब्राह्मोंको ब्रह्मसमाजका अङ्गीभूत होकर रहना असम्भव हो गया। इसलिये प्रस्थावित आर्यसमाजके स्थापन करनेके विषयमें वह शीघ्रता करने लगे, और तदनुसार सन् १८७७ ईस्वीमें जूनकी २४ तारीख बृहस्पतिवारको लाहौर नगरमें आर्य-समाजको स्थापित कर दिया। स्थानाभावके कारण डाक्टर रहीमखाँकी कोठीमें आर्यसमाज का प्रथम अधिवेशन हुआ। यही कहना पड़ता है कि यह कितने आश्चर्यकी बात है, क्योंकि स्थानीय ब्रह्मसमाजके विस्तृत क्रोडमें आर्यसमाजने स्थान नहीं पाया, लाहौरके किसी स्वधर्मनिष्ठ हिन्दूके आंगनमें भी आर्य-समाजका बीज अंकुरित नहीं हुआ, प्रत्युत जो व्यक्ति मलेच्छा-चारी मुसलमान कह कर उपेक्षित होते थे, आर्यसमाजने उन्हींके आश्रयमें जन्म ग्रहण किया। यह घटना लाहौर निवासियोंके पक्षमें गौरवसाधक थी वा अगौरवसाधक—यह हम नहीं कह सकते; परन्तु इसमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता कि रहीम-खाँके पक्षमें वह विलक्षण उदारताकी परिचायक थी। उसके पश्चात् १ जुलाईके दिन आर्यसमाजका दूसरा अधिवेशन हुआ। वह अधिवेशन सत्सभा नामक सभाविशेषके मन्दिरमें हुआ, और वास्तवमें उसी दिन आर्यसमाजका संगठन भी हुआ। लालामूलराज आर्यसमाजके सभापति हुए, श्रीयुक्त शारदाप्रसाद भट्टाचार्य पर उपसभापतिके पदका भार सौंपा गया, और लाला जीवनदासने उसके मन्त्रित्वका भार ग्रहण किया। इस प्रकार पञ्जाबके पवित्रक्षेत्रमें आर्यसमाज अंकुरित हुआ और चारों ओर अपनी शाखापल्लवादिको विस्तृत करनेके निमित्त शिरा-शिरामें

रस संचारित करने लगा। अस्तु। पूर्वोल्लिखित कई एक व्यक्तियों-के अतिरिक्त लाला साईदास, लाला श्रीराम, पण्डित अमरनाथ और लाला कुन्दनलाल प्रभृति भी आर्यसमाजकी स्थापनाके पक्षमें विलक्षण रूपसे उद्योगी हुए—यह कहना वाहुल्यमात्र है। और यह भी स्यात् अनेक लोगोको विदित हैं कि लाला जीवनदास, लाला साईदास और सहृदय शारदाप्रसाद स्थानीय ब्रह्मसमाजके विशिष्ट सदस्योंमें परिगणित होते थे। सुतरां ऐसा प्रतीत होता हैं कि जैसे पुराने मन्दिरके उपकरणादिको लेकर नये मन्दिरका निर्माण होता है, वैसे ही स्थानीय ब्राह्मसमाजके उपकरणादिको लेकर ही लाहौर-आर्यसमाजका निर्माण हुआ।*

आर्यसमाजकी स्थापनाके कुछ दिन पीछे दयानन्द अमृतसर-को चले गये। उन्होंने अमृतसरमें व्याख्यानादि देकर घोर आन्दोलन उपस्थित कर दिया। उनके व्याख्यानोंको सुन कर अनेक लोग विस्मित होने लगे, और अनेक लोग उनके विपक्षमें खड़े हो गये। विपक्षी लोग ऐसे उत्तेजित हुए कि स्वामीजीको मार डालनेका रौला मचाने लगे। परन्तु स्वामीजी किसीसे भी विचलित होने वाले नहीं थे। वह एक दिन अदम्य उत्साहके साथ व्याख्यान दे रहे थे कि विपक्षी दलवाले उनकी ओर पत्थर फेंकने लगे। यह संवाद पाकर पुलिसके लोग आगये और उनकी

---

*श्रीयुक्त शारदाप्रसाद भट्टाचार्य्य महाशयसे अवगत हुआ कि जिस दिन लाहोरमें आर्यसमाज स्थापित हुआ, उस दिन ब्राह्मसमाजकी निर्दिष्ट उपासना-पद्धतिका अवलम्बन करके ही उसकी उपासनाका कार्य निर्वाहित हुआ था, क्योंकि उस समय तक आर्य्यसमाजकी कोई निर्दिष्ट उपासनाप्रणाली नहीं थी। इससे विदित होगा कि ब्राह्मसमाजके साथ स्वामीजीकी कितनी अविरोधिता थी।

सहायतासे सब गड़बड़ शीघ्र ही शान्त होगई। इस प्रकार अमृतसरमें कई दिन अतिवाहित करके वहांसे प्रस्थान किया और रावलपिंडी वज़ीराबाद प्रभृति स्थानोंमें जाकर भाषण करते हुए घूमने लगे। वज़ीराबादसे पञ्जाबके अन्तर्गत गुजरात पहुँचे और फिर गुजरातसे गुजरानवाला आये। वहाँ ठाकुरदास पुजारी नामक जैन पण्डितके साथ जैनमतकी आलोचनामें प्रवृत्त हुए*। इस प्रकार पञ्जाबके नाना स्थानोंमें भ्रमण करके स्वामीजी फिर लाहौर आये। इस समय पञ्जाबके नाना स्थानोंसे उनके पास निमन्त्रणपत्र आने लगे; परन्तु कहाँका निमन्त्रण स्वीकार करें और कहाँका न करें। वह कुछ स्थिर न कर सके। अन्तमें मुलतानवासियोंका अनुरोध उनके लिये अनतिक्रम्य हो गया। इसलिये वह मुलतानयात्राके लिये उद्यत हुए और सन् १८७८ ई० के मार्चकी ७ वीं तारीख़को मुलतान पहुँच गये। उनके स्वागतके लिये मुलतानमें पहलेसे ही आयोजन हो रहा था, क्योंकि सोशलक्लबके उद्योगसे वहाँके स्कूलगृहमें एक सभा आहूत हुई थी। उस सभामें मुलतानके शिक्षित व्यक्तिगण एकत्रित हुए थे, और सभाके उद्देश्यके साथ सहानुभूति भी प्रकट की थी। सभास्थलमें स्वामीजीके ठहरने आदिके विषयमें यथोचित व्यवस्था निरधारित हो गई थी और उसके उद्देश्यसे व्ययके लिये कुछ चन्देमें भी रुपये एकत्रित हो गये थे। अस्तु। स्वामीजीने मुलतान पहुँचनेके दूसरे ही दिनसे व्याख्यान आरम्भ कर दिये। नवीं मार्चसे दश अप्रैल तक दयानन्द वक्तृता देते रहे। इसके भिन्न किस उद्देशसे और कितने

---

*ठाकुरदास पुजारीके भिन्न पं० आत्माराम नामक प्रसिद्ध जैनमतावलम्बीके साथ दयानन्दका कुछ दिन पीछे घोर विचार हुआ था। दयानन्दने आत्मारामके निकट यह सिद्ध किया था कि जैन और बौद्धमत अभिन्न और एक ही प्रकारके हैं।

दिनसे इस देशमें होली और दिवालीकी प्रथा चली थी—इस विषयमें दयानन्दने वहांके निवासियोंको परिचित किया*। फलतः एक माससे अधिक कालव्यापिनी व्याख्या और विचारका फल यह हुआ कि मुलतानके बहुतसे लोग स्वामीजीके मतावलम्बी होगये। स्वामीजीके उपदेशसे यह उन्हें अच्छे प्रकार निश्चय हो गया कि वैदिकमार्गके आश्रयके विना आर्य्यजातिके परित्राणका और कोई उपाय नहीं है। इसलिये और अधिक समय न विता कर वे लोग आर्य्यसमाज स्थापित करनेका आयोजन करने लगे। उनका आयोजन शीघ्र ही सफल हो गया। मुलतान नगरमें वैदिकधर्म्मके विस्तारार्थ आर्यसमाजके मन्दिरकी नींव रक्खी गई। आर्यसमाज स्थापन करनेके पश्चात् दयानन्द मुलतानसे लाहौर आगये। लाहौरमें कुछ दिन ठहर कर जालन्धर चले आये। जालन्धरमें सर्दार विक्रमसिंहके घर ठहर कर वहांके मौलवियोंके साथ मुसलमान मतकी आलोचनामें नियोजित हुए, और वहाँसे सहारनपुर आनेके अभिप्रायसे पञ्जावकी सीमाका उत्तरण किया।

---

*दयानन्द जिस समय मुलतानमें ठहरे हुए व्याख्यान आदिके कार्यमें व्यापृत थे उस समय वहां होलीका उत्सव होरहा था। यहाँ तक कि जिस उद्यानमें वह वास करते थे एकांशमें उस उद्यानमें भी कई लोग होलीसे मत्त हो रहे थे। यह देख कर किसी-किसी अनुसंधित्सु व्यक्तिने दयानन्दसे होलीके विषयमें जिज्ञासा की थी। इसलिये दयानन्दने होलीके विषयमें कहते-कहते दिवालीके विषयमें भी कहा था।

एकादश परिच्छेद ।
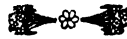
द्वितीयवार मेरठ-यात्रा, मेरठमें वक्तृता और नाना प्रश्नोंकी मीमांसा. लाला रामशरणदास प्रभृतियोंका उपनयन-संस्कार, आर्यसमाजस्थापन, अजमेरगमन और पुष्करके मेलेमें व्याख्यान, अजमेरमें बारह व्याख्यान, पादरी ग्रे साहबके साथ विचार, हरिद्वारके कुम्भमें व्याख्यान, सहारनपुर कर्नलअलकाट और मैडेम ब्लेवस्टटीके साथ साक्षात्, कर्नल अलकाट प्रभृतिके पत्र और थ्यासोफिकल सोसाइटीका जन्मवृत्तान्त, मेरठमें कर्नलके साथ योगादि विषय पर विचार, स्वामीजीकी पीड़ा और नाना स्थानोंमें भ्रमण, काशीमें आगमन और शास्त्रार्थके लिये विज्ञापन देना, राजा शिवप्रसादके साथ वाद, प्रतिवाद, स्वामीजीकी वक्तृताको काशीके मजिस्ट्रेटका बन्द करना ।

दयानन्द सहारनपुरसे रुड़की होते हुए मेरठ आये । सन् १८७८ ईस्वीके अगस्त मासकी २६ वीं तारीख़को मेरठ पहुँचे । वहाँ पहुँच कर छावनीके पास दामोदरदासके बंगलेमें ठहरे । स्वामीजीने उस बंगलेमें ३१ अगस्त तक रह कर उसके पश्चात्

अन्यत्र रहनेकी व्यवस्था की। १ सितम्बरको मेरठ नगरमें स्वामीजीका घोषणापत्र प्रचारित हुआ। प्रचारित घोषणाके अनुसार राय गणेशीलालके भवनमें प्रति दिन सन्ध्याकालमें व्याख्यान होने लगे। व्याख्यानके पश्चात् प्रश्न करनेके लिये आधा घण्टा समय दिया जाता था। पहिली तीसरी सितम्बर तक तीन दिन तीन विषयों पर वक्तृता हुई। वे तीन विषय 'ईश्वर' 'धर्म्माधर्म्म' और 'स्तुति और प्रार्थना' थे। उसके पश्चात् चौथा दिन केवल प्रश्न-मीमांसाके लिये ही निरधारित रहा। परन्तु शोक है कि उस दिन प्रश्न करनेके लिये सभामें कोई नहीं आया स्वामीजी उसके लिए प्रायः १ घण्टा तक प्रतीक्षा करते रहे, और अन्तमें 'सृष्टि' विषय पर वक्तृता देकर श्रोतृ-वृन्दको विमोहित करने लगे। इस प्रकार चौथी सितम्बर तक अतिवाहित हो गया। उसके पश्चात् नगरमें लाला रामशरण-दासके मकान पर दयानन्दके व्याख्यान होने लगे। यहां ५ से १० सितम्बर तक ६ दिन अविश्रान्त रूपसे वक्तृता-श्रोत्र चलता रहा। स्वामीजीकी इस प्रकारकी अग्निस्राविनी वक्तृताओंसे मेरठके निवासिवर्ग बहुत कुछ अस्थिर हो गये। वे लोग नाना विषयोंमें जिज्ञासु हुए, अनेक कथा जाननेके निमित्त स्वामीजीके निकट जाकर नितान्त आग्रह प्रकट करने लगे। तदनुसार उन्होंने जिज्ञासुओंके लिखित और कथित प्रश्नोंकी मीमांसाके लिए तीन दिन निर्धारित किये। इसलिये १० वीं सितम्बरके पश्चात् ३ दिनका समय लोगोंका प्रश्न मीमांसामें ही व्यतीत हो गया। जिज्ञासुओंमें मौलवी और पण्डितश्रेणीके लोग भी आते थे, विशेषतः स्थानीय धर्म्मसभाके लोग प्रायः उपस्थित होकर नाना कथा उत्थापित करते थे। अस्तु ऐसे अक्लान्त परिश्रमका फल यह हुआ कि मेरठकी भूमि मार्जित और कुछ उर्वरा होगई, यहाँ तक कि आर्यसमाजका बीज बोनेके लिये सर्वतोभावेन ही

उपयोगी हो गई। देशकालज्ञ दयानन्द इसको जान गये, और जानते ही सितम्बरकी २६ तारीखको मेरठ नगरमें आर्यसमाज स्थापित कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और क्रियाका अनुष्ठान करके मेरठनिवासियोंके निकट अपनेको चिरस्मरणीय कर दिया। वह क्रिया कुछ अंशमें आश्चर्यसूचक होने पर भी अश्रुतपूर्व नहीं थी, और इदानीन्तन समयमें अप्रसिद्ध होने पर भी अपरिचलित कह कर परिगणित होने वाली नहीं थी। फलतः वह लाला रामशरणदास प्रभृति कई एक वेदनिष्ठ वैश्योंका उपनयन करानेके भिन्न और कुछ नहीं थी। लाला रामशरणदास, लाला छेदीलाल और लाला शिवनारायण प्रभृति वैश्यवंशीय कई एक व्यक्ति स्वामीजीके उपदेशसे वेदादि आर्षग्रन्थों पर बड़े आस्थावान् होगये थे। वैदिक आचारके प्रति वे लोग स्वभावसे ही निष्ठावान् थे, और यह भी उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि नियत समय पर गायत्री और संध्योपासना करके ही वह अपनेको आर्यनामके उपयुक्त कर सकते हैं। दयानन्दने इन सब कारणोंसे उनका उपनयन संस्कार करना आवश्यक समझा और इसीलिये पूर्वोक्त छेदीलालके गृहमें एक यज्ञका अनुष्ठान करके उनको उपनीत कर दिया। उन थोड़ेसे वैश्योंको यज्ञोपवीत धारण किये हुए देख कर मेरठ निवासिगण अवश्य ही आश्चर्यान्वित हुए। अधिकन्तु, इसको एक अविधेय और अदृष्टपूर्व व्यापार विचार कर* तुमुल आन्दोलन उपस्थित करने लगे।

---

*वैश्यका उपनयन-संस्कार वास्तवमें अविधेय वा अदृष्टपूर्व नहीं है, क्योंकि वैश्य लोग आर्य्योंमें ही परिगणित हैं। पूर्वकालमें आर्य्य कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही समझे जाते थे, और इसी कारण तीनो जातियोंके मध्यमें उपनयन यहाँ तक कि ब्रह्मचर्य्य तक की प्रथा थी। तब फिर वैश्योंको सन्ध्या-गायत्रीका

मेरठमें एक मासका समय इस सारे व्यापारमें अतिवाहित करके दयानन्द दिल्ली गये, और दिल्लीसे रिवाड़ी होकर अजमेर नगरमें पदार्पण किया। उस समय कातिका अन्त और नवम्बरका आरम्भ था। उस समय पुष्करक्षेत्रमें मेला लग रहा था। इसी कारण वह अजमेरमें अधिक दिन न ठहर कर पुष्कर चले गये। व्याख्यान सुननेके लिये सहस्रों लोग आने लगे। वह उस मनुष्यारण्यमें खड़े होकर वैदिक फर्मकी जयघोषणा करने लगे; और कुछ दिन व्याख्यानकार्यमें नियोजित रह कर फिर अजमेर चले आये। अजमेरमें १५ नवम्बरसे दयानन्द व्याख्यान आरंभ हुए। क्रमशः १२ दिन तक उनके व्याख्यान होते रहे। इन १२ दिनमें उन्होंने १२ ही वक्तृतायें दीं। प्रत्यादेशकी आवश्यकता, वेद ही सत्य ज्ञानके आधार हैं, सतीदाहकी अशास्त्रीयता और जलयानमें हिन्दुओंका नाना देशमें यात्रा करना प्रभृति विषयोंका अवलम्बन करके ही वह वक्तृता देने लगे। १२ वक्तृताओंमें स्वामीजीका समय २७ नवम्बर तक अतिवाहित हो गया। २८ वीं नवम्बर पादरी ग्रे साहबके साथ शास्त्रार्थका दिन था। तदनुसार ग्रे साहब स्वामीजीके सम्मुख आये। दयानन्दने बाइबिलको भ्रान्तिपूर्ण कहा। ग्रे साहब उनके प्रतिबादी हुए। इसलिये उस समय तर्क होने लगा। दोनों पक्षोंका वादप्रतिवाद लिपिबद्ध होने लगा। परन्तु स्वामीजीकी बातोंके उत्तरमें ग्रे साहब क्रमशः विचलित होने लगे। अधिक क्या, अन्तमें वह एक प्रकारसे निरुत्तर हो गये। ग्रेकी पराभूतिके समय पादरी हसबैण्ड आकर उपस्थि हुए। किन्तु ग्रे साहबके साथ हसबैण्ड

अधिकार क्यों न हो? अतएव यह कहना बाहुल्यमात्र है कि स्वामीजीने पूर्वोक्त वैश्योंको उपनीत करके और उसके साथ सन्ध्योपासनका अधिकार प्रदान करके विहित कार्य ही किया था।

साहबके मिल जाने पर भी स्वामीजीकी बात अखण्डित रही। ग्रे साहबने देखा कि वादप्रतिवादको लिपिबद्ध करनेमें पदे-पदे पराभूतिकी सम्भावना है। इसलिये तीसरे दिन वह पूर्वोक्त प्रणालीसे शास्त्रार्थ करने पर सम्मत नहीं हुए। परन्तु स्वामीजी इस बातको माननेवाले नहीं थे, इसलिये ग्रे साहबके साथ स्वामीजीको शास्त्रार्थ बन्द करना पड़ा। यह कहना अनावश्यक है कि दयानन्द इस यात्रामें अजमेरमें आकर सेठ रामप्रसादके उद्यानमें रहे थे, और उनकी इस बारकी वक्तृतायें प्रधानतः सर्दार अमीचन्द बहादुरके ही उद्योगसे हुई थीं।

इसके पश्चात् स्वामीजी हरिद्वार आये। उस समय हरिद्वारमें कुम्भका महामेला था। उसी महामेलेके जनसमूहको व्याख्यान सुनाने के लिये ही वह वहां उपस्थित हुए थे। फलतः कुम्भक्षेत्रमें कई एक दिन व्याख्यान और शास्त्रालोचना करके वह अपेक्षाकृत सत्वरताके साथ सहारनपुर चले आये। सहारनपुरमें ऐसी शीघ्र आनेका क्या कारण था? कारण यह था कि कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवट्स्की अमेरिकासे आकर सहारनपुरमें उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे *। दयानन्द के पास कर्नल और मैडमके अमेरिकासे आनेका क्या कारण था? कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवट्स्की तो इस देशमें थियासोफिस्ट सम्प्रदायके संस्थापक प्रसिद्ध हैं। तो क्या स्वामी

* कर्नल और मैडम सन् १८७८ ई० की १७ वीं दिसम्बरको अमेरिकाके न्यूयार्क नगरसे चल कर लण्डनमें दो सप्ताह यापन करके सन् १८७९ ई० के फर्वरी मासकी १६ वीं तारीखको बम्बईमें आकर उपस्थित हुए थे। उसके पश्चात् वहां कुछ दिन ठहर कर सहारनपुरमें जाकर दयानन्दसे मिलनेके लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। The Theosophist Vol 1. P. 1.

दयानन्दके साथ थियासोफिस्ट सम्प्रदायका कुछ संसर्ग था ?

स्यात् बहुतोंको यह बात विदित नहीं है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ही अवलम्बन करके थियासोफिस्ट सम्प्रदायके अधिनायकगण इस देशमें आये थे; यहां तक कि स्वामी दयानन्दके नामसे ही कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवट्स्की की भारतवासियोंमें प्रतिष्ठा हुई थी। अस्तु। प्रायः बीस वर्ष (इस समय ५५ वर्षसे अधिक—प्रका०) पहले कर्नल और मैडमके विशेष उद्योगसे अमेरिका देशमें एक सभा स्थापित हुई थी। उस सभाका नाम 'थियासोफिकल सोसाइटी' था। उस सभाके अभिप्राय या उद्देश्य सम्बन्धमें सभासद्गण ऐसा निर्धारित करते थे। यथाः—

"The Society teaches and expects its fellows.... ... to disseminate a knowledge of the sublime teachings of that pure eoteric system of the archaic period, which are mirrored in the oldest Vedas and in the philosophy of Gautama Buddha, Zoroaster and Confucius; finally and chiefly to aid in the institution of a brotherhood of Humanity, wherein all good and pure men, of every race, shall recognize each other as the equal effects (upon this planet) of one Uncreate, Universal, Infinite and Everlasting Cause."❀

इस अंग्रेजी उद्धृतांशका स्थूल मर्म यह है कि "वेदादि प्राचीन ग्रन्थोमें जो पवित्र पारमार्थिक तत्त्व प्रतिभात हो रहा है थियासोफिकल सोसाइटी विचारपूर्वक उसका प्रचार करेगी और जनसाधारणको भ्रातृत्वके सूत्रमें सम्बन्ध करनेके लिये सचेष्ट

❀The Arya Magazine vol 1. No. 3 page 54.

रहेगी ।" सुतरां थियासोफिकल सोसाइटीको 'तत्त्वालोचनी' सभाके नामसे अभिहित करना ही युक्तिसङ्गत है। अस्तु। यह सभा यद्यपि अमेरिका देशमें स्थापित हुई थी, परन्तु स्वामी दयानन्दसे उपदेशप्रार्थी हुई थी, यहां तक कि उन्हें अपना आचार्य और उपदेष्टा ग्रहण किया था। कर्नेल अलकाटने अमेरिकासे इस विषयमें स्वामीजीको जितने पत्र लिखे हमने उनमेंसे यहां एक पत्रका सारांश नीचे उद्धृत किया है। वह यह है :—

"Extract from letters No. 71, Broadway, New York, 18th February 1878.

To the Most Honorable Pandit Dayananda Saraswati, India.

Venerated Teacher—A number of American and other students who generally seek after spiritual knowledge place themselves at your feet and pray you to enlighten them. The boldness of their conduct naturally drew upon them public attention and reprobation of all influential organs and persons whose worldly interests or private prejudices were linked with the established order.

We have been called Aheists, infields and pagans.

We need the assistance not only of the young and the enthusiastic but also of the wise and the venerated. For this reason we come to your feet as children to a parent and say look at us, our teacher; tell us what we out to do, Give us your counsel and your aid.

See that we approach you not in pride but humility, that we are prepared to receive your counsel and do our duty as it may be shown to us." ❀

(Sd.) HENRYS, OLCOTT.
President of the Theosophical Society.

❀ The Arya Magazine vol 1. No. 3. page 54.

दयानन्द सरस्वती थियासोफिकल सोसाइटीके केवल आचार्य वा उपदेष्टा रूपसे ही परिगणित नहीं हुए, प्रत्युत निम्नोद्धृत पत्रांश द्वारा यह सिद्ध होता है कि थियासोफिकल

इस अंग्रेजी उद्धृतांशका भावानुवाद यह है :—

ब्राडवे, न्यूयार्क, १८ फर्वरी १८७८,–पत्रसंख्या ७१ का भाग।

सेवामें महामान्यवर पण्डित दयानन्द सरस्वती, भारतवर्ष।

पूजनीय गुरो! अमेरिका तथा अन्य देशोंके कतिपय शिक्षार्थी जो अध्यात्मविद्याके हृदयसे जिज्ञासु हैं, अपने आपको आपके चरणों में नत करके प्रार्थी हैं कि आप उनके हृदयोंको प्रकाशित करें। उनके आचरणकी साहसिकताने सर्वसाधारणके ध्यानको उनकी ओर प्रकृतक्रमानुसार खींचा तथा प्रभावान्वित जन व समाचारपत्र जिनका सांसारिक लाभ वा स्वीकीय परम्परागत मत ईसाई धर्मके साथ सम्बद्ध है उनकी निन्दा करने लगे।

हमको नास्तिक म्लेच्छ और खिष्टीयधर्मविरोधी कहा गया है। हमें न केवल नवयुवक और उत्साही पुरुषोंकी ही सहायताकी आवश्यकता है, किन्तु उन लोगोंकी जो सुधी और पूजनीय हैं। इस कारण हम आपके चरणोंमें उसी भावसे आते हैं जिस भावसे कि पुत्र पिताके चरणोंमें जाते हैं और कहते हैं कि हे गुरो! हमारी ओर देखिये और हमको बतलाइये कि हमें क्या करना चाहिये। हमको अपनी शिक्षा सहायता दीजिये, हम आपके समीप गर्वके साथ नहीं किन्तु नम्रताके साथ आते हैं, और आपकी शिक्षाको माननेके लिये और अपना कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये जैसा कि हमको बताया जावे हम उद्यत हैं।"

(ह०) हेनरी ऐस० अलकाट

प्रधान, थियोसोफिकल सोसाइटी—(अनुवादक)

सोसाइटी उनके आर्यसमाजकी ही शाखास्वरूप थी। इसलिये सोसाइटीके मन्त्री महोदय लिखते हैं:—

"The Theosophical Society, New York.
May 22nd 1878.

To the Chief of the Arya Samaj.

Honoured Sir: —You are respectfully informed that at a meeting of the Council of the Theosophical Society, held at New York on the 22nd of May 1878, the President in the chair upon motion of Vice-President A. Wilder seconded by the Corresponding Secretary H P. Blavatsky, it was unanimously resolved that the society accept the proposal of the Arya Samaj, the unite with itself, and that the title of this Society be changed to "The Theosophical Society of the Arya Samaj of India."

Resolved, that the Theosophical Society for itself and branches in America, Europe and elsewhere, hereby recognize Swami Dayanand Saraswati, Pandit, Founder of the Arya Samaj, as its lawful Director or Chief.

Awaiting the signification of your approval and any instructions that you may be pleased to give."†

I am, honoured Sir, by order of Council.

Respectfully your
(Sd.) AUGUSTUS GUSTAM,
Recording Secretary.

•†Ibid. इस अंशका मर्म यह है:—

अब थियासोफिकल सोसाइटी का आदिम वृत्तान्त पाठक-वर्ग कुछ समझ सकेंगे। स्वामी दयानन्द जब पूर्वोक्त सभाके आचार्यरूपसे स्वीकृत हुए, अधिनायकरूपसे परिगणित हुए, और जब वह आर्यसमाजकी ही अंगीभूत संस्था होकर परिगृहीत हुई,

---

"थियासोफिकल सोसाइटी, न्यूयार्क मई २२, सन् १८७८ ई०।
सेवामें प्रधान आर्यसमाज—

माननीय महोदय ! आपको विनयपूर्वक सूचना दी जाती है कि थियासोफिकल सोसाइटीकी कौन्सिलके एक अधिवेशनमें, जो न्यूयार्कमें २२ मई १८७८ को सामयिक प्रधानके सभापतित्व-में संघठित हुआ ए० वाइल्डर साहब।उपसभापतिके प्रस्ताव और पत्रव्यवहारकर्त्ता मन्त्री एच० पी० ब्लेवट्स्कीके अनुमोदन पर सर्वसम्मतिसे निर्धारित हुआ कि यह सभा आर्यसमाजके इस प्रस्तावको कि सभा उक्त समाजके साथ मिल जावे और इस सभाका नाम परिवर्तित करके "भारतवर्षीय आर्यसमाजकी थियासोफिकल सोसाइटी" रक्खा जावे स्वीकार करती है।

यह भी निश्चय हुआ कि थियासोफिकल सोसाइटी अपनी और अपनी शाखाओंकी ओरसे जो अमेरिका, यूरोप और अन्य प्रदेशोंमें हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती पण्डित, संस्थापक आर्यसमाज, को अपना नियमानुकूल आचार्य वा अधिनायक मानती है।

आपकी स्वीकारीकी सूचना और किन्हीं आज्ञाओंकी जो आप कृपापूर्वक देवें प्रतीक्षा करता हुआ"

मैं हूं, माननीय महोदय, कौंसिलकी आज्ञानुसार

आपका

(ह०) आगस्टम गस्टम

रिकार्डिंग सेक्रेटरी—(अनुवादक)

तब इसको विशेष रूपसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि थियासौफिकल सोसाइटीके साथ स्वामी दयानन्दका कितना घनिष्ट सम्बन्ध था। फिर इसमें आश्चर्य क्या है कर्नल और मैडम भारतक्षेत्रमें स्वामीजीके नामसे ही परिचित हुए, और स्वामीजीके दर्शनाकांक्षी होकर वह सहारनपुरमें प्रतीक्षा कर रहे थे। अस्तु। कर्नल और मैडमको संग लेकर स्वामीजी सहारनपुरसे मेरठ आये। मेरठमें उनके रहनेके लिये स्वतन्त्र प्रबन्ध हो गया। मई मासकी पंचवीं तारीखको कर्नल अलकाटने छेदीलालकी कोठीमें एक वक्तृता दी। उसके पश्चात् दो दिन तक कर्नल और मैडम आर्यावर्त्तकी धर्मोन्नतिके सम्बन्धमें दयानन्दके साथ बातचीत करते रहे। आर्योंकी योगविद्या विषयमें वे दोनों ही नितान्त कौतूहलाक्रान्त थे। इस कारण उन्होंने योग और योगैश्वर्य सम्बन्धमें स्वामीजी से बहुत प्रश्न किये। इस प्रकार कई एक दिन स्वामीजीके सान्निध्य-सुखका सम्भोग करके और किसी-किसी विषयमें विगतसंशय होकर कर्नल और मैडम मेरठसे चले गये। उनके चले जाने पर दयानन्द मेरठमें थोड़े दिन तक रहे, परन्तु उन दिनोंमें उन्होंने कोई व्याख्यान या वक्तृता नहीं दी। फलतः अलकाट और ब्लेवटस्कीके साथ वार्तालाप और विचारके भिन्न इस यात्राका मेरठमें और कोई विशेष फल नहीं हुआ।

इसके पश्चात् दयानन्द मेरठसे मुरादाबाद होते हुए कानपुर चले गये। कानपुरमें राजा जयकृष्णदासके गृह पर ठहर कर एक व्याख्यान दिया। इसके पश्चात् इलाहाबाद, मिरजापुर और दानापुर प्रभृति स्थानोंमें भ्रमण करते हुए काशी जा पहुँचे। दयानन्द इससे पहले काशीमें छः वार आये थे। इसलिये इस वार उनका काशीमें सातवीं वार आगमन था। उन्होंने इस वार आकर भी वहाँके पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ करनेका विज्ञापन दिया। इससे पहले काशीमें जितनी वार आये थे उतनी ही वार उन्होंने

पूर्वोक्त अभिप्रायका विज्ञापन दिया था, क्योंकि काशीके पण्डितोंके साथ, विशेषकर पण्डितपुङ्गव नामसे प्रसिद्ध बालशास्त्री और विशुद्धानन्द स्वामीके साथ, एक वार शास्त्रीय संग्राम करनेकी स्वामीजीकी बड़ी अभिलाषा थी। यद्यपि पहिले शास्त्रार्थके समय बालशास्त्री और विशुद्धानन्द दयानन्दके सामने आये थे, यद्यपि उन्होंने दयानन्दके सामने कोई-कोई शास्त्रीय कथा भी उत्थापित की थी, तथापि उस वारके शास्त्रार्थ को किसी अर्थमें भी शास्त्रार्थका नाम नहीं दे सकते हैं। पक्षान्तरमें वह "काशीका कोलाहल" इन शब्दोंसे ही अभिहित होनेके योग्य है। इसलिये इस यात्रामें भी आकर शास्त्रार्थका बिज्ञापन देना स्वामीजीके लिए अत्यन्त आवश्यक था। किन्तु आश्चर्य है कि इस वार भी काशीका कोई पण्डित दयानन्दके सामने नहीं आया यहाँ तक कि जिन लोगोंको उस विज्ञापनमें विशिष्ट भावसे आहूत किया था, उनमेंसे क्या विशुद्धानन्द क्या बालशास्त्री कोई भी नहीं आये। तब राजा शिवप्रसाद नामक एक वैश्यसन्तान वाराणसीके गौरवकी रक्षा करनेके लिये खड़े हुए। उन्होंने स्वामीजीके मन्तव्यामन्तव्यको शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करनेके उद्देशसे 'प्रथम निवेदन' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इस जगह यह कहना अत्यन्त ही आवश्यक है कि राजा शिवप्रसादने स्वामी विशुद्धानन्द और पण्डित बालशास्त्रीकी उकसाहट और प्रेरणासे ही इस काममें हाथ डाला था। केवल यही नहीं अनेक लोगोंका यह विश्वास है कि पूर्वोक्त पुस्तिका भी या तो शास्त्री-जीने या स्वामीजीने ही लिख कर दी थी। क्योंकि आर्य्यशास्त्रमें जिस प्रकारकी भूयोदर्शिता रहनेसे किंवा वेदादि ग्रन्थोंमें जिस प्रकार व्युत्पन्न होनेसे दयानन्द सरस्वती सरीखे दिग्विजयी पंडितकेसाथ मनुष्य विचारक्षम हो सकता था उनमेंसे राजा शिवप्रसादमें कुछ भी नहीं था। अस्तु। दयानन्द 'प्रथम निवेदन'

के खण्डनके लिये शीघ्र ही उद्यत होगये, और उनके प्रतिवादमें 'भ्रमोच्छेदन' नामकी पुस्तक प्रकाशित की।

जिस समय स्वामीजी राजा शिवप्रसादके भ्रमोच्छेदनादि कार्यमें इस प्रकार लगे हुए थे, उसी समयमें काशीके बंगाली-टोलाके स्कूलमें एक वक्तृता देनेके लिये विज्ञापन दिया गया। उस वक्तृताका २० दिसम्बर नियत किया गया था। स्वामीजी नियत समय पर वक्तृताके स्थानमें उपस्थित हुए; परन्तु उपस्थित होते ही मजिस्ट्रेटका हस्ताक्षरयुक्त एक आज्ञापत्र उन्हें मिला। उस आज्ञापत्रमें लिखा हुआ था काशीमें स्वामी दयानन्दकी वक्तृता एकदम बन्द की जाती है। उस आज्ञा-पत्रको पढ़ कर स्वामीजी बहुत कुछ विस्मयान्वित हुए, परन्तु निरुद्यम नहीं हो गये। उन्होंने उस अयथा और अप्रत्याशित आदेशके प्रतिकारके लिये पश्चिमोत्तरप्रदेश (वर्तमान संयुक्तप्रांत) के छोटे लाटके पास निवेदन करनेका उद्योग करना आरम्भ किया। फलतः मजिस्ट्रेट वाल साहबके इस व्यापारसे काशीके सुशिक्षित व्यक्तिमात्रने विरक्ति प्रकाशकी; यहाँ तक कि उपस्थित घटनाके सम्बन्धमें पायोनियर पत्रमें भी कुछ समय तक लिखा-पढ़ी होने लगी। एक सुलेखक व्यक्तिने इस विषय पर "गवर्न-मेण्टका मूर्त्तिपूजाका समर्थन" शीर्षक देकर पायोनियर पत्रमें एक लेख लिखा था। हम यहाँ उस लेखका कुछ अंश उद्धृत करते हैं:—

"With irresistible logic and fiery eloquence he preached, like a second Luther, against the abuses which in the course of time had loaded down and corrupted a once grand faith. He touched the heart of young India by painting the faded glories of the ancient Aryavart, and biding them be worthy

of their ancestors. He was not a political agitator stirring up sedition. Quite the contrary; for he told his audiences that the paramount powers was, despite all that could justly be brought against it, the friend of India, as it guaranteed the free discussion of religious questions, and made it possible for him and his followers to worship the one God of the Veda In a word, the tendency of the great man's work was all in the right direction, and likely to prove a blessing for his country and countrymen. This man was Pundit Dayananda Saraswati Swamy, founder of the Arya Samaj......

"At last he came to Benares to attack orthodoxy in its stronghold. He issued a handbill announcing his arrival, and challenged the best Pundits of the place to publicly discuss the questions above enumerated. The two greatest of them, whose rank as Vedic expositors was universally acknowledged, he specially asked to meet him, well knowing that if he vanquished them, idol-worship would have a short lease of life But they made no response. If he was wrong, here was their chance to confute him; a defeat of so audacious an assailant would shake this growing reform movement into bits, and fasten tighter the slipping hold of the Brahmins upon the native public. It would be doubly dramatic if effected at holy Benares, within whose sacred precints this iconoclast had dared to set up his alter to

the one God. But they made no sign, and so the Swami, no more patient a man than our Luther, gave notice that, on the evening of Saturday, December 20th, he would address the public at the Bengali School House. Colonel Olcott, the American Theosophist, an ally of the Swamy's within certain stated limits, was announced to speak on behalf of his own Society at the same time and place. These two attraction naturally drew a crowd, of whom at best. as many came to hear the Swamy as the other lecturer. On reaching the School House the Swamy was served with a written notice that Mr. Wall, the magistrate forbade his engaging in any religious discussions in Benares. The pretext taken was that when Swami spoke here some ten or a dozen years ago, there had been a disturbance by the orthodox party, and his re-appearance at this time might again cause a breach of the peace. I have been told that Mr. Wall, in this instance, suffared himself to be influenced by the orthodox Pundits, in other words. to be made their cat's paw."†

इस उद्धृत अंग्रेजी अंशका मर्म यह है:—"वह अकाट्य तर्क और अग्निस्राविणी वाग्मिताके साथ, द्वितीय लूथरके समान, उन दूषणोंके विरुद्ध प्रचार करता था जिन्होंने कालान्तरमें पूर्व कालमें उच्चपदस्थ धर्मको भारावनत और दूषित कर दिया है। वह प्राचीन आर्यावर्त्तकी क्षीण महिमाका

†The Pioneer 30th December 1879.

चित्र खींच-खींच कर नवयुवक भारतवासियोंके हृदयोंको आकर्षित करके, उनको अपने पूर्व पुरुषाओंके योग्य बननेकी प्रेरणा करता था। वह कोई विद्रोह फैलानेवाला राजनैतिक आन्दोलनकारी नहीं था। प्रत्युत वह इसके विरुद्ध था; वह अपने श्रोतृवृन्दको कहा करता था कि गवर्नमेण्ट, उन सब बातोंके वर्तमान होते हुए भी जो कि न्यायपूर्वक उसके विरुद्ध कही जा सकती हैं, भारतवर्षकी हिताकांक्षी है, क्योंकि उसने धार्मिक प्रश्नोंके वादविवादकी स्वतन्त्रता दे रक्खी है और इस प्रकार मेरे तथा मेरे अनुयायियोंके लिये वेदवर्णित एक परमात्माकी उपासना करनी सम्भावित करदी है। संक्षेपतः इस महापुरुषके कार्यका झुकाव उचित ओर ही था और अधिकांशमें वह उसके देश और देशवासियोंके लिये मङ्गलकारी प्रमाणित होने की सम्भावना रखता था। यह व्यक्ति आर्यसमाजका संस्थापक पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी था। ... ...

"अन्तमें वह मूर्तिपूजा पर उसके ही गढ़में आक्रमण करनेके उद्देशसे बनारसमें आया। अपने आगमनकी सूचना इनके लिये उसने विज्ञापन प्रकाशित किये और स्थानिक सर्वश्रेष्ठ पण्डितोंको आहूत किया कि वे ऊपर गिनाये हुए प्रश्नों पर सर्वसाधारणके सामने शास्त्रार्थ करें। उनमेंसे दो सबसे बड़े पण्डितोंको, जिनको वेदविख्याताकी पदवी सबने प्रदान कर रक्खी थी, उसने विशेषतः विचारार्थ आहूत किया; क्योंकि वह (दयानन्द) भले प्रकार जानता था कि यदि मैं उनको पराजित कर दूंगा तो मूर्तिपूजाका जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जायगा। परन्तु उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। यदि उसका मत मिथ्या था तो उसके खण्डन करनेका अवसर उसके हस्तगत था। ऐसे साहसिक आक्रमणकारीका पराजय इस बढ़ते हुए सुधार आन्दोलनके टुकड़े-टुकड़े कर देता और देशीय जन-साधारण

पर ब्राह्मणोंके शिथिल होते हुए बन्धनोंको और भी दृढ कर देता। इसका प्रभाव द्विगुण होता यदि वह बनारसमें ही पराजित किया जाता, जिसकी पवित्र सीमाओंके भीतर मूर्तिपूजाके इस कट्टर विरोधीने एक परमात्माकी उपासनावेदि स्थापित करनेका साहस किया था। किन्तु उन्होंने कुछ भी न किया और इसलिये स्वामीने, जो हमारे लूथरसे अधिक सहिष्णु नहीं था, एक विज्ञापन प्रचारित किया कि शनिवारकी सायङ्कालको, २० दिसम्बरके दिन, बङ्गाली स्कूलगृहमें मेरी वक्तृता होगी। अमेरिकावासी थियासोफिस्ट कर्नल अलकाटके सम्बन्धमें, जो कि परिमित अंशमें स्वामीजीके साथी थे, यह विज्ञापित किया गया कि वह उसी स्थानमें और उसी समय पर अपनी सोसाइटीके विषयमें कथन करेंगे। इन दो कारणोंसे बहुतसे लोग एकत्रित हो गये, जिनमें स्वामीजीकी वक्तृता सुननेके अभिप्रायसे भी उतने ही आये थे जितने दूसरे वक्ता महाशयका कथन सुननेको। स्कूलगृहमें पहुँचने पर स्वामीजीको एक लिखी हुई विज्ञप्ति दी गई मजिस्ट्रेट वाल साहब बनारसमें उन्हें धार्मिक विषय पर विचार करनेसे रोकते हैं। बहाना यह बतलाया गया था कि लग-भग १० या १२ वर्ष पूर्व जब स्वामीजीकी यहां वक्तृता हुई थी तो कट्टर-दलने दङ्गा किया था और उनके यहां पुनः आगमनसे इस समय शान्तिभङ्गका फिर डर है। कि इस घटनामें मिस्टर वालने अपने ऊपर कट्टर पण्डितोंका प्रभाव परतन्त्र हो जाने दिया अर्थात् वह उनके हाथमें हानि पहुँचानेके यन्त्र बन गये।" (अनुवादक)

वस्तुतः दयानन्द राजविद्रोही नहीं थे। यह किसी प्रकार राजनैतिक आन्दोलन करके प्रजावर्गको उत्तेजित नहीं करते थे, प्रत्युत अंग्रेजोंके अधीन रह कर भारतीय प्रजागण धर्म्मसम्बन्धमें स्वतन्त्र रह कर अपने-अपने मन्तव्योंको प्रकट

कर सकते हैं—यह कथा समय समय पर कह कर वह गवर्नमेण्टकी बहुत प्रशंसा करते थे इसलिये स्वामीजीके सम्बन्धमें वालसाहबके उपर्युक्त व्यवहारको अत्यन्त अदूरदर्शिताका परिचायक कहना पड़ेगा! अस्तु। परन्तु वालसाहबको थोड़े ही समय पीछे अपनी अदूरिर्शिता विदित हो गई थी और उन्होंने स्वामीजीको वक्तृता देनेकी आज्ञा देकर पहले अपराधका प्रायश्चित्त कर दिया था। इस विषयमें पाठकोंका संशय निवारण करनेके लिये हम एक और पत्र पायोनियरसे उद्धृत करते हैं। पत्रलेखक पायोनियरके सम्पादकको सम्बोधन करके कहते हैं:—

"Your strictures on the proceedings of Mr. Wall the collector of Benares, relating to Pandit Dayanand Saraswati, the well-known vedic scholar, do you infinite credit as an impartial journalist; but permit me to bring to your notice the extenuating circumstances which underlie the matter. Mr. Wall was at Cdakia (the shooting-box of the Maharaja of Benares) when the proposed lecture was to be deliberered by the Pandit. Some influential native gentlemen, I have reason to believe, misrepresented to him the naturo of the Pandit's preachings, and got an order issued, calling upon Dayanand "to desist from giving public lectures at present." Be it spoken, in justice to the collector, that no sooner was he aware of the justice he did to to the Pandit, than he immediately sent a counter order, giving him full liberty to preach his sermons. Mr. Wall may have been

guilty of a little indiscretion; but his action, as far as I know, was not a deliberate one "$

इसका अर्थ यही है कि पूर्वोक्त नियमविरुद्ध आज्ञा देते समय वाल साहब काशीमें नहीं थे। वह उस समय चकिया नामक स्थानमें थे। चकिया काशीके समीप और काशीके महाराजका प्यारा और प्रसिद्ध मृगयास्थल है। चकियामें रहनेके समय काशीके कई सम्भ्रान्त व्यक्तियोंने † वाल साहबके पास जाकर स्वामीजीके व्याख्यानोंके विषयमें कहा था, और उनको यह समझा दिया था कि स्वामीजीके व्याख्यानोंसे प्रथम वारके समान इस वार भी काशीमें घोर अशान्ति उपस्थित होगी। यह कहना बाहुल्यमात्र है कि वाल साहबने ऐसा समझ कर ही पूर्वोक्त आज्ञा दी थी।

$The Pioneer 6th January 1880.

* जो लोग वाल साहबके पास स्वामीजीके विरुद्ध कहने गये थे राजा शिवप्रासाद उनके अग्रणी थे। और यह भी सुना जाता है कि शिवप्रसाद के इस कार्य्यके पीछे पण्डित बालशास्त्री और विशुद्धानन्दकी भी उत्तेजना और उपदेश था।

द्वादश परिच्छेद ।
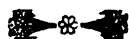
आगरा नगरमें व्याख्यान, आर्कविशपके साथ बातचीत, प्रश्न-मीमांसाके लिये आह्वानपत्र, नारायणदास सेठकी विपन्नता, आगरामें आर्यसमाज स्थापन, गोरक्षणी सभाका स्थापन, कलकत्तेके सिनेट हालमें महासभा, तृतीयवार अजमेरकी यात्रा, बम्बईकी यात्रा और पादरी कुकको शास्त्रार्थके लिये आह्वान, थियासोफिस्टोंके मन्तव्यामन्तव्यका प्रतिवाद, मोनियर विलियम्सके साथ साक्षात्, महाराणाके साथ धर्मालोचना, जोधपुरकी यात्रा, जोधपुराधीशका सौजन्य, स्वामीजीकी पीड़ा, अजमेरमें आना और देहान्त ।

इस वार वाराणसीमें स्वामीजी प्रायः छः मास अतिवाहित करके आगरा आये । २५ नवम्बर को आगरा पहुँच कर २८ से व्याख्यान आरम्भ किये । आगराके मुफीदआम स्कूलमें उनकी वक्तृतायें होने लगीं । उनकी वक्तृता २२ दिसम्बर तक अव्याहत रूपसे चलती रहीं । इसके बीचमें एक दिन अर्थात् १२ दिसम्बरको स्थानीय रोमन कैथलिक सम्प्रदायके अधिनायक आर्कविशपसे निमिन्त्रित होकर वह उनके भजनालयमें गये । वेदोंकी निर्भ्रान्तताके विषयमें स्वामीजी के साथ बिशप साहबकी अनेक बातें हुई । बिशप साहबके साथ बातचीत समाप्त होने पर

दयानन्दने उनसे पूछा—"अच्छा, क्या आप बता सकते हैं कि आप तो सबके पाप क्षमा करते हैं, किन्तु आपके पाप कौन क्षमा करेगा ?" इसके उत्तरमें बिशप साहबने जो कुछ कहा उससे स्वमीजीका सन्तोष नहीं हुआ। उसके पश्चात् स्वामी दयानन्द बिशप साहबके साथ उनके भजनायल प्रभृतिका दर्शन करके चले आये।

यद्यपि दयानन्द प्रत्येक वक्तृताके अन्तमें प्रश्न पूछनेके लिये आध घण्टेका समय रखते थे, परन्तु उससे सबको सब बातोंकी जिज्ञासा करनेमें सुभीता होता न देख कर उन्होंने एक आह्वानपत्र प्रकाशित किया। उस आह्वानपत्रका मर्म यही था कि २२ दिसम्बर के पश्चात् निर्दिष्ट दश दिनोंके भीतर हरेक व्यक्ति स्वामीजीके पास आकर चाहे जो प्रश्न पूछ सकता है। तदनुसार आगरेके पण्डितगण परामर्श करनेके लिये एक दो बार एकत्रित तो हुए, परन्तु उनमेंसे किसीने दयानन्दके पास आकर कोई बात नहीं पूछी। तब मथुरा के पूर्वोल्लिखित सेठवंशोत्पन्न नारयणदासने आकर स्वामीजीके पास एक प्रस्ताव किया। नारायणदासका अभिप्राय यह था कि उनके वृन्दावनस्थ मन्दिरके एक संन्यासीके साथ स्वामीजीको शास्त्रार्थ करना होगा। वह संन्यासी आचारी सम्प्रदायके थे, परन्तु उनका पाण्डित्य वैसा वा प्रसिद्ध नहीं था। यहां तक कि शास्त्रज्ञताके सम्बन्धमें वह अपने पूर्ववर्त्ती रङ्गाचारीके समान भी नहीं थे। इसलिये नारायणदासके प्रस्तावको स्वीकार करना स्वामीजीको युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं हुआ; प्रत्युत नारायणदाससे यही अनुरोध किया कि वह संन्यासी ही आगरेमें आकर शास्त्रार्थ कर सकते हैं। परन्तु नारायणदास इससे सहमत नहीं हुए। तब किसी किसी ने आगरा और मथुराके मध्यवर्ती फारा नामक स्थानका निर्देश किया। परन्तु वहां जाकर शास्त्रार्थ करना स्वामीजीके लिये

आपत्तिका कारण न होने पर भी उनके साथियोंको अत्यन्त आपत्तिकर हुआ। उनके आपत्ति करनेका विशेष कारण भी था; क्योंकि कई वर्ष पहले पूर्वोल्लिखित रङ्गाचारीके साथ स्वामीके शास्त्रार्थकी बात उठने पर ही मथुराके चौबौंने जिस प्रकारके उपद्रव करनेका उद्योग किया था; उससे उपस्थित स्थानमें मथुराका सामीप्य भी उनके विचारमें निरापद् नहीं था। इसलिये फारामें जाकर शास्त्रार्थ करनेमें भी दयानन्द सहमत नहीं हुए।

इस घटनासे नारायणदास क्रुद्ध हो गये। वह विद्वेषपरवश होकर स्वामीजीकी प्रतिपत्तिके नाशका उद्योग करने लगे। अन्तमें नारायणदास रामसुवा शास्त्री नामक एक पण्डितके साथ कलकत्ता आये, और महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न प्रभृतिके साथ परामर्श करके यहांके सिनेट हालमें एक महती सभा आहूत की। वह सभा २२ जनवरी सन् १८८१ ई० को आहूत हुई। उस सभामें नवद्वीप, भाटपाड़ा और विक्रमपुर प्रभृति स्थानोंके प्रायः तीन सौ पण्डित आये। कलकत्तेके बहुतसे सम्भ्रान्त व्यक्ति और कई एक राजा महाराजा भी सभाक्षेत्रमें उपस्थित हुए। अन्तमें सभामें आये हुए पण्डितवर्गके परामर्शके अनुसार स्थिर हुआ कि स्वामी दयानन्दके समस्त सिद्धान्त हिन्दूशास्त्रके विरुद्ध हैं। उस समय रामसुवा शास्त्रीने स्वप्रणीत 'दयानन्दकण्टकोद्धारक' नामक पुस्तकका सभास्थलमें पाठ किया उसे सुनकर सभामें बैठे हुए सब लोग शास्त्री महाशयकी प्रशंसा करने लगे और दयानन्दकण्टकोद्धारक' वास्तवमें दयानन्द कण्टकोद्धारक ही है, पण्डितगणने यह कह कर अपने अपने हस्ताक्षर कर दिये।

इस ओर आगरा नगरमें भी दयानन्दके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। चतुर्भुज शास्त्री नामक एक व्यक्तिने दयानन्दकी

पुनर्वार आरंभ हो गये। वह २६ जनवरीसे यमुनादासके गृह पर व्याख्यान देने लगे। लोगोंकी संख्या पहिलेके ही समान होने लगी। श्रोतृवर्गका उत्साह और आग्रह पूर्वके समान ही रहा व्याख्यान सुनकर आगरेके लोग उत्साहित हो गये। वह वैदिक धर्मके पवित्रस्रोतको आगरा नगरमें अव्याहत रखनेके लिये आर्यसमाजके स्थान पर सङ्कल्पारूढ़ हो गये। तदनुसार उन्होंने शीघ्र ही आगरेमें एक आर्यसमाज स्थापित कर दिया। कुछ दिन पीछे स्वामीजीने आगरासे विदा होनेका उद्योग किया, और १० वीं मार्चकी रात्रि को दश बजे आगरा परित्याग करके चले गये।

दयानन्द आगरासे भरतपुर होकर सम्भवतः अजमेर गये। उस समय मई मासका आरम्भ था। अजमेर जाकर सेठ फतहमलकी कोठीमें रहे। इस यात्रामें दो माससे कुछ अधिक रह कर प्रायः ४३ व्याख्यान दिये। इससे पहले ही अजमेरमें आर्यसमाज स्थापित होगया था। इसलिये स्वामीजीके ये सब व्याख्यान वहांके आर्यसमाजके उद्योगसे ही हुए। उसके पश्चात् स्वामीजीने अजमेर से प्रस्थान करके नाना स्थानोंमें भ्रमण किया और इन्दौर होते हुए सन् १८८१ में २६ दिसम्बरके दिन बम्बईमें

सभाओंकी निर्माणविधिमें यह नियम भी रक्खा था कि कोई राजद्रोही पुरुष उनका सभासद् नहीं हो सकेगा। इससे स्वामीजीकी पारदर्शिता और राजहिताकांक्षाका परिचय मिलता है। इसलिये यह कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि स्वामीजी गोरक्षाविषयक किसी अनुचित और राजनैतिक आन्दोलनके प्रवर्तक थे। —अनुवादक)

जाकर दूसरी वार उपस्थित हुए ❀। बम्बईमें उपस्थित होकर उन्होंने प्रथम वहांके आर्यसमाजकी उन्नतिमें मनोवेश किया। बम्बईके आर्यसमाजके लिए एक मन्दिर बनानेका उद्योग हुआ और उसे स्थायी भित्ति पर स्थापित करनेके उद्देशसे ट्रस्टी प्रभृति नियत होने लगे। आर्यसमाजके इतिहासकी आलोचना करनेसे बम्बईके समाजको ही शीर्षस्थानीय स्वीकार करना होगा, क्योंकि बम्बईका आर्यसमाजही आदिसमाज$ है। बोध होता है इसीलिये स्वामी दयानन्द उसके स्थायित्वसाधनमें इतने सचेष्ट हुए थे। अस्तु। इसके पश्चात् स्वामीजीको एक और गुरुतर कार्यमें हस्तक्षेप करना पड़ा। वह कार्यसम्प्रदायके पक्षमें बहुत कुछ

❀Our esteemed friend Dayanand Saraswati Swami arrived at Bombay on the 29th Ultimo from Indore and is putting up at Walkeshwar. He is looking in roubust health. It is expected that he will remain in town two or three months, to expound his views on the Vedas, and place the Bombay Arya Samaj on a stable footing. The Theosophist 1882 January, P. 105.

इस अंशका अनुवाद यह है:—"हमारे माननीय मित्र दयानन्द सरस्वती स्वामी गत मासकी २९ वीं तारीखको इन्दौरसे बम्बईमें पधारे और बालकेश्वरमें ठहरे हुँए हैं। उनकी शारीरिक दशा उत्तम है। यह आशा की जाती है कि वह नगरमें वेदों पर अपना मत प्रकाश करने और बम्बई आर्यसमाजको दृढ़भित्ति पर स्थापित करनेके उद्देशसे दो या तीन मास ठहरेंगे।" थियोसोफिस्ट १८८२ जनवरी पृष्ठ १०५। अनुवादक।

$ पृष्ठ २२९ पर अनुवादकका नोट देखिये।

अप्रीतिकर था, तथापि सत्यके अनुरोधसे उसे करने पर वह बाध्य हुए। हमने यह पहले ही कह दिया है कि थियोसोफिस्ट सम्प्रदायके लोगोंने स्वामी दयानन्दको ही अपना आचार्य ग्रहण कर लिया था, और उनके प्रवर्तक स्वामीजीकी शक्ति और सहायताका नाम लेकर ही भारतभूमिमें अपनी भित्तिके स्थापनमें समर्थ हुए थे। और हमने पाठकोंके सामने यह भी प्रतिपादित कर दिया है कि थियासोफिकल सोसाइटी आर्यसमाजकी शाखाके नामसे ही परिचित होती थी, और मतामतके सम्बन्धमें थियासोफिकल सोसाइटी आर्यसमाजके साथ एकीभूत थी। परन्तु पूर्वोक्त सोसाइटी प्रथमतः जिस भावसे प्रवुद्ध हुई थी, जिस भावसे प्रणोदित होकर स्वामी दयानन्दके पैरोंमें बैठकर पारमार्थतत्वकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये प्रतिश्रुत हुई थी, और जिस भावसे प्रेरित होकर उसके अधिनायकगणने जिज्ञासुओंके समान नितान्त विनीत चित्तसे आकर भारत भूमिमें प्रवेश किया था, शोक है कि समय बीतने पर उनका वह भाव रक्षित नहीं रहा, अर्थात् वे शिक्षार्थीके समान आये हुए शीघ्र ही शिक्षक हो गये, जिज्ञासुओंके भावसे प्रविष्ट हुए-हुए अचिरेण उपदेष्टाके उच्चतर पद पर आरूढ़ हो गये, और भारतके योगक्षेत्रमें थोड़े ही दिन निवास करके अपनेको योगी और योगाचार्य नामसे परिचित करने लगे। इन सब कारणोंसे थियासोफिस्ट सम्प्रदायके साथ सर्वतोभावेन सम्बन्ध तोड़ना ही स्वामीजी कर्तव्य समझ रहे थे। इसके अनुसार बम्बई नगरमें एक विराट सभा आहूत हुई। दयानन्दने उस सभाक्षेत्रमें खड़े होकर थियासोफिकल सोसाइटीका क्रमबद्ध इतिहास वर्णन किया और अन्तमें यह बात भी स्पष्ट शब्दोंमें परिघोषित की कि आर्यसमाजसंक्रान्त आन्दोलनके साथ पूर्वोक्त सोसाइटीका किसी रूपसे भी सम्बन्ध नहीं रह सकता। इस प्रकार थियासोफिकल सोसाइटीके साथ आर्य-

समाजका सम्पर्क छिन्न-भिन्न हो गया।

अमेरिकाके विख्यात प्रचारक जोज़फ कुक साहब उस समय बम्बई नगरमें ठहरे हुए थे। वह ईसाई धर्मकी निभ्रान्तता प्रतिपादन करनेके उद्देशसे भारतक्षेत्रमें आये थे और नाना स्थानोंमें व्याख्यान और तर्कवितर्क करते हुए अन्तमें बम्बई जाकर समर-घोषणा कर रहे थे। स्वामीजी उनके समारोहेश्यको जानकर कुछ विस्मित हुए और अपने सामने ईसाई धर्मकी निभ्रान्तता और अपौरुषेयता सिद्ध करनेके लिये कुक साहबको विना विलम्ब ही आहूत किया। परन्तु कुक साहब स्वामीजीके आह्वान पर कर्ण-पात न करके ही चले गये, उसके पश्चात् गोरक्षा विषयक आन्दोलन उत्थापित हुआ। बम्बई आर्यसमाजके उद्योगसे एक महा-सभाका अधिवेशन हुआ। उस महासभामें स्वामी दयानन्दने गोरक्षाकी आवश्यकता पर एक तेजस्विनी वक्तृता दी। उस वक्तृताको सुनकर बम्बईके निवासी स्तम्भित होगये; यहाँ तक कि उस वक्तृताने ही उस प्रदेशमें गोरक्षा बिषयक आन्दोलनका सूत्रपात किया। उस समय इङ्गलैण्डके विख्यात पण्डित मोनियर विलियम्स् बम्बईमें आये हुए थे। वह दयानन्दके साथ बातचीत करनेकी अभिलाषासे एक दिन वहांके आर्यसमाजमें उपस्थित हुए। दयानन्दकी अत्यन्त सरल और मधुर संस्कृतव्याख्याको सुनकर मोनियर विलियम्स् विमोहित होगये, और व्याख्याके अन्तमें उनके साथ वार्त्तालाप करके सन्तुष्ट होकर चले गये। इस प्रकार बम्बईमें ज्येष्ठ मास पर्यन्त अतिवाहित करके स्वामीजीने खण्डवाकी ओर यात्रा की।

उसके पश्चात् खण्डवा और मध्यभारतके अन्यान्य स्थानोंमें भ्रमण करके आषाढ़के अन्तिम भागमें महाराणासे निमन्त्रित होकर दयानन्द उदयपुर आये। सम्भ्रम और मर्यादा विषयमें उदयपुर राजस्थानमें अग्रणी है। इसी कारण राजस्थानके भीतर

उदयपुरके महाराणा चिरकालसे सम्मानित हैं। किन्तु महाराणा सज्जनसिंह केवल सम्मानित ही नहीं थे, प्रत्युत सच्चरित्रता और सदाशयताके लिये वह भारतीय राजन्यवर्गके भीतर एक आदर्श स्थानीय थे। वास्तवमें महाराणा सज्जनसिंह सज्जनताकी प्रतिमूर्ति थे। स्वामी दयानन्दके पदार्पणसे उदयपुरके धन्यभाग हैं—यह कहकर वह जैसे अतिशय हृष्ट हुए, वैसे ही उनका यथोचित सत्कार करके उन्होंने अपनेको कृतार्थ बोध किया। स्वामीजीके ठहरनेके लिये महाराणाने अपना रमणीक उद्यान दे दिया, सेवाके लिये भृत्यादि नियुक्त कर दिये, और जिससे कि किसी प्रकारके असुख वा असुविधाका लेशमात्र भी सहन करना न हो, इसके लिये वह स्वयं सयत्न रहे। महाराणा स्वामीजीके सम्मानके लिये प्रथम दिन प्रासादसे उद्यानवाटिका तक पैदल गये। उदयपुरके सैकड़ों लोग महाराणाके पीछे-पीछे गये और सबने ही सातिशय भक्तिके भारसे अवनतिचित्त होकर स्वामीजी को प्रणाम किया।

स्वामीजीने उन सबको आशीर्वाद दिया; विशेषतः महाराणाको क्षात्र धर्म्म विषयकी शिक्षा देने लगे। उसके पश्चात् उदयपुरमें दयानन्दकी वक्तृता आरम्भ हुई। वक्तृतास्थल सहस्रों मनुष्योंसे परिपूर्ण होने लगा। स्वामी दयानन्दके साथ सज्जनसिंहके आलापने धीरे २ आत्मीयताका आकार धारण कर लिया। महाराणाका शास्त्रनुराग उत्तरोत्तर वर्द्धित होने लगा। उन्होंने स्वामीजीसे संस्कृत सीखनेकी अभिलाषा की। प्रायः छः मासमें ही महाराणाने संस्कृतसाहित्यमें आशातीत अधिकार प्राप्त कर लिया। स्वामीजीने महाराणाको स्वंय ही मनुस्मृति पढ़ाई। राजाओंके प्रात्यहिक कर्तव्यनिर्धारणके निमित्त दयानन्दने महाराणाको एक दिनचर्य्या लिख दी। महारणाका दैनिक कार्य्य उसके अनुसार ही सम्पादित होने लगा। स्वामीजीकी शिक्षा

और सत्सङ्गके प्रभावसे महाराणाके बुरे अभ्यास दूर हो गये। उनके प्रासादमें प्रति अपराह्नको प्रायः पापाचारिणी नृत्यकारिणी स्त्रियोंका नृत्यगीत हुआ करता था। महाराणा प्रायः वहां उपस्थित हो कर उनका नृत्य आदि देखा करते थे। परन्तु अब उससे विरत हो गये। इसके अतिरिक्त महाराणाकी आज्ञाके अनुसार उदयपुरके राजभवन और राजोद्यानमें दो यज्ञवेदि निर्मित हुईं और जिससे कि उन दोनों वेदियोंमें यज्ञकार्य नियमित रूपसे निर्वाहित हो—इसके लिये प्रबन्ध होने लगा। इन सब कारणोंसे स्वामीजीके साथ महाराणाका संसर्ग उत्तरोत्तर प्रीतिदायक होने लगा; यहां तक कि दोनोंका संसर्ग दोनोंके लिये ही अपरिहार्य्य हो गया। एक दिन महाराणाकी अस्वस्थताका संवाद सुन कर स्वामीजी ऐसे चिन्तित हुए कि विना विलम्बके ही प्रासादमें जाकर उनको देख आये।

इसी समय स्वामीजीकी परोपकारिणी सभा * स्थापित हुई। जिससे कि वह सभा चिरस्थायिनी होकर भारतका कल्याण साधन कर सके ऐसा यत्न करनेमें दयानन्दने त्रुटि नहीं की। उन्होंने उस सभाके लिये एक स्वीकारपत्र प्रस्तुत किया। महाराणाके दर्बारमें वह स्वीकारपत्र पढ़ा गया और यथानियम उसपर हस्ताक्षर हुए। दर्बारके प्रधान-प्रधान तेरह सरदारोंने साक्षी रूपसे उस पत्र पर हस्ताक्षर किये, और उदयपुराधीश स्वयं ही उस

* परोपकारिणी सभाका प्रधान उद्देश्य भारतवर्षमें वैदिक-धर्मका प्रचार करना, और नाना उपायोंसे परोपकारके साधन उपस्थित करना था। इसके अतिरिक्त स्वामीजी रचित और अधिकृत जितने ग्रन्थ और धन और यन्त्रालय आदि थे वह सब ही परोपकारिणी सभाकी सम्पत्ति परिगणीत की गई। यह सभा २३ सभ्योंसे संगठित हुई थी।

सभाके प्रधानपद पर प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार परोपकारिणी सभाको स्थापित और महाराणा सज्जनसिंहको उसके प्रधानपद पर प्रतिष्ठित करके स्वामीजीने शाहपुरकी ओर यात्रा की ❀।

शाहपुर उदयपुरके अन्तर्गत एक करप्रद राज्य है। शाहपुराधीश एक धर्म्मानुरागी व्यक्ति हैं। जिससे कि स्वामी दयानन्द शाहपुर आकर धर्मान्दोलन उठावें, उन्होंने इसलिये चेष्टा की थी। उन्होंने स्वामीजीको विशेष अनुनयके साथ वारंवार निमन्त्रित किया था। इसी लिये दयानन्द शीघ्रही उदयपुर छोड़ कर गये थे। मागमें ३ दिन चितौड़में रहकर मार्च मासकी सातवीं तारीखको शाहपुर पहुँचे। शाहपुराधीशने यथोचित सम्मान और समारोहके साथ स्वामीजीका स्वागत किया। स्वामीजीका व्याख्यान एक अपूर्व सामग्री थी। जो व्यक्ति उनके व्याख्यानको एकवार सुन लेता था। वह विमोहित हुए विना नहीं रह सकता था। फलतः शाहपुराधिपति स्वामीजीके व्याख्यानको सुन कर विमोहित और विस्मयान्वित होगये। अधिकन्तु, यह सोच कर कि स्वामी दयानन्द सच-मुच ही आर्य्यावर्त्तके उद्धार-साधनके लिये मर्त्यलोकमें आविर्भूत हुए हैं, वह एक साथ विस्मित और आनन्दित होगये। शाहपुर रहनेके समय स्वामीजीके पास जोधपुरसे एक निमन्त्रणपत्र आया। वह पत्र स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंहका लिखा हुआ था। उन्होंने उस पत्रमें स्वामीजीको जोधपुर पधारनेके लिये अत्यन्त अनुरोध प्रकट किया था। इसलिये दयानन्दने शाहपुरमें और काल विलम्ब न

❀ उदयपुरसेविदा होनेके समय महाराणाने वेदभाष्य आदिकी साहाय्य और पाथेय आदिके लिये १२००) रुपये प्रदान किये थे और उसीके साथ पुनर्वार उदयपुर आनेके लिये स्वामीजीसे वारंवार अनुरोध किया था

करके जोधपुरकी ओर यात्रा की ।

जोधपुरके मार्गमें स्वामीजीको विशेष क्लेशभोग करना पड़ा । प्रबल वृष्टिपात और वायुके प्रचण्ड आघातसे उनकी गाड़ीकी छत उड़ गई । विशेषकर मार्गमें आश्रय लेनेका कोई स्थल भी उन्हें न दीख पड़ा । सुतरां वृष्टि और वायुका क्लेश सहन करते-करते वह अजमेर आकर पहुँचे । स्वामीजीके मार्गक्लेशकी कथा सुनकर अजमेरके सभासद्गण अतिशय दुःखित हुए, और उनमेंसे कोई-कोई मारवाड़के स्थान और जनमाहात्म्यके सम्बन्धमें नाना कथायें कहने लगे । दयानन्द अजमेरमें केवल एक दिन रह कर दूसरे दिन जोधपुर आ पहुँचे । स्वामीजी जोधपुरमें फ़ैजुल्लाखांके बंगलेमें जाकर ठहरे । महाराजा उनके आनेका समाचार सुनते ही आत्मीय और सदस्यवर्गके साथ उपस्थित हुए, और स्वामीजीके सामने पांच स्वर्णमुद्रा और ६५ रुपये उपस्थित करके आप अत्यन्त सम्भ्रमके साथ भूमिमें बैठ गये । तब स्वामीजीने प्रीतिप्रफुल्लहृदयके साथ महाराजाका हाथ पकड़ कर अपने पास लाकर बिठाया । उसके पश्चात् महाराजाने दयानन्दके साथ कुछ देर तक वार्त्तालाप करके प्रसादकी ओर प्रत्यावर्तन किया । तदनन्तर स्वामीजीके ठहरनेके लिये एक स्वतन्त्र गृह निर्दिष्ट हो गया और महाराजाकी आज्ञानुसार भारप्राप्त भृत्यवर्ग उनकी सेवाके लिये अहरह नियोजित होते रहे । स्वामीजी आने वालोंके साथ धर्मवार्त्ता करने लगे । किसी-किसी दिन व्याख्याकार्यमें भी प्रवृत्त होते थे । उनकी निर्भीकता, सत्यनिष्ठा और शास्त्रदर्शिताको देख कर जोधपुरके रहने वाले चकित होगये । उन्होंने व्याख्याप्रसङ्गमें आर्यजातिकी उन्नति और अवनतिकी कथा वर्णन की; वैदिक धर्मकी शोचनीय विकृतिको वर्णन करके वह क्षुण्ण हुए और ब्राह्मणोंकी वृत्तिच्युति और विशेषकर क्षत्रियोंकी वर्त्तमान अधो-

गतिको उद्घोषित करके अतिशय खेद प्रकट करने लगे। कुसंग और कापुरुषताके सञ्चारसे क्षात्रधर्म्म कलंकित होगया है, अमिताचार और इन्द्रियासक्तिके प्रभावसे क्षात्रवीर्य्य निर्वापित होगया है* इत्यादि बातोंको भी जसवन्तसिंह प्रभृतियोंके सामने तीव्रभाव और तीव्रभाषामें वर्णन करनेमें दयानन्द कुण्ठित नहीं हुए। स्वामीजीकी इन तीव्रोक्तियोंसे घोरतर आन्दोलन उपस्थित हो गया। इससे जोधपुरके अनेक व्यक्ति विचलित हो गये, और कोई-कोई विरक्ति प्रकट करने लगे। किन्तु महाराजके चित्तमें एक-एक दो-दो करके चिन्ताका रेखापात होने लगा। इस प्रकार स्वामीजीका जोधपुरमें चतुर्थ मास अतिवाहित होगया।

पंचम मासमें दयानन्दके ऊपर विपत्तिके ऊपर विपत्ति आने लगी। प्रथमतः उनके आश्रममें चोरी हो गई, जिससे उन्हें ५००) रुपयेकी क्षति हुई। रुपये रखनेका काम रामानन्द ब्रह्मचारीके अधिकारमें था, परन्तु उस रातको रामानन्दके असावधान रहनेसे यह काम हुआ। सब लोगोंको यह सन्देह हुआ कि स्वामीजीका एक भृत्य इस काममें लिप्त था। दयानन्द स्थानीय चौकीदार और कोतवालको तिरस्कृत करने लगे। तिरस्कृत होते समय तो कोतवाल स्वामीजीके हाथ जोड़कर खड़ा होकर अपना अपराध स्वीकार कर लेता, परन्तु स्वामीजीके पीछे उनकी निन्दा किया करता। उसके पश्चात् आश्विन मासमें स्वामीजीको एक दिन

*स्वामीजीने क्षत्रियपुत्रकी सिंहसे और वाराङ्गणाकी कुक्कुरी से तुलना की थी। इसी कारण क्षत्रियके लिये वेश्यागमन सिंहके साथ कुक्करीके समागमकी न्याईं स्वभाव-विरुद्ध कर्म और महापाप है—उन्होंने यह भी स्पष्टतया कहा। ऐसा सुना जाता है कि इसी प्रकारकी तीव्र तुलनाने यसवन्तसिंहको बहुत कुछ विचलित कर दिया था।

ठण्ड लग गई। उस दिन बृहस्पतिवार और एकादशी थी। ठंडके कारण शरीरके अस्वस्थ होनेसे चतुर्दशीकी रातको दयानन्द केवल दुग्धपान करके सोये। रात्रिमें दो-तीन वार वमन हुई। परन्तु वह किसीसे भी कुछ न कह कर स्वयं ही आचमन करके सोते रहे। प्रातःकाल उठ कर भ्रमण करना दयानन्दका दैनिक अभ्यास था। परन्तु उस दिन अपेक्षाकृत विलम्बसे उठे और उठ कर एक वार वमन हुई। इस प्रकार वमन पर वमन होनेसे दयानन्दके मनमें सन्देह हुआ। उन्होंने इच्छापूर्वक बहुतसा जलपान करके और एक वार वमन की। परन्तु उससे भी उनकी वमन निवृत्ति नहीं हुई। तब दुर्गन्ध दूर करनेके लिये उन्होंने कमरेमें अग्नि जलानेके लिये कहा, और उस अग्निकुण्डमें धूप आदि सुगन्धित द्रव्य डालने लगे। धूपादिकी सुगन्धसे वहांका दुर्गन्ध तो दूर हो गया, परन्तु उनसे उदरमें शूलकी पीड़ा आरम्भ होगई। इसलिये डाक्टर सूरजमलको बुलाया गया। सूरजमलके पीडाकी कथाको सविस्तार पूछने पर स्वामीजी उदरकी असह्य वेदना और पिपासाकी कथा पुनः पुनः कहने लगे। तब सूरज-मलकी समझमें ठीक व्यवस्था आगई और प्रस्थान करनेके समय स्वामीजी पर लक्ष्यपात करके यह कह कर चले गये कि आपके समान कोई महापुरुष मारवाड़में कभी नहीं आये, इसलिये मारवाड़के लोग आपके महात्म्यको कैसे समझ सकते हैं। सूरजमलके चले जाने पर उनकी शूलवेदना क्रमशः यहाँ तक बढ़ी कि निश्वास-प्रश्वासकी क्रियाके साथ उनकी वेदनाका वेग बढ़ने लगा। सुतरां निश्वास-प्रश्वास करना स्वामीजीके लिये विशेष क्लेशदायक होगया। आश्चर्य है कि स्वामीजी ने इस असहनीय यन्त्रणाके बीचमें ईश्वरचिन्तन और नामोच्चारणके भिन्न और कुछ नहीं किया। ३० वीं सितम्बरको महाराज प्रतापसिंह परिषद्वर्गके साथ दयानन्दके पास आये। महाराजके

साथ अलीमर्दानखां नामक एक डाक्टर भी आये। अलीमर्दानने स्वामीजीकी सारी अवस्थाको जान कर उनके उदर पर ब्लिस्टर लगाया। उस दिन सन्ध्याकालको महाराजा तेजसिंह भी स्वामीजीके देखनेके लिये आये, ब्लिस्टरके लगानेसे दयानन्दको विशेष क्लेश होने लगा। दूसरी अक्तूबरको स्वामीजीने अलीमर्दानको बुला कर कहा—"हम एक जुल्लाब लेना चाहते हैं, क्योंकि उससे उदरकी यावतीय ग्लानि दूर हो जायगी।" अलीमर्दाने उसे युक्तिसङ्गत विवेचना करके घर चले गये, स्वामीजीके पास एक विरेचक औषधि भेजी। तीसरी अक्तूबरके प्रातःकाल डाक्टरके निर्देशानुकूल दयानन्दने उस विरेचक औषधिका सेवन किया। एक प्रहर तक औषधिका फल कुछ मालूम नहीं हुआ, परन्तु दश बजेके पीछे उसका प्रभाव होने लगा। दश बजेसे रात्रितक ३० से न्यून दस्त नहीं आये। दूसरे दिन प्रातःकाल डाक्टरके आने पर स्वामीजीने धीरे-धीरे कहा—"आपने तो कहा था कि छः या सातसे अधिक दस्त नहीं आयेंगे, परन्तु तीससे अधिक दस्त आये। यह सुन कर डाक्टर चुप हो गये। पहिले दिनके समान उस दिन भी दस्त आने लगे। दो दिन बराबर दस्त आनेसे स्वामीजी नितान्त निर्बल होगये; यहाँ तक कि उनकी दोनों आँखें कुछ बाहरको निकल आईं। छठी अक्तूबरको उन्होंने डाक्टरसे कहा—"दस्त बन्द नहीं होंगे तो मैं नहीं बचूंगा।" इसके उत्तरमें डाक्टरने कहा—"दस्तोंका अपने आप बन्द होना अच्छा है। चेष्टा करके बन्द करनेसे रोगवृद्धिकी सम्भावना है।" इसके पश्चात् दयानन्दके उदरसे कण्ठदेश तक सारे स्थलमें, मुख-विवरमें, हाथमें, पैरोंके तलुओंमें छोटी-छोटी फुंसियां दिखाई पड़ने लगीं। इसलिये वह बहुत क्लेशके साथ बातें करने लगे। इसके भिन्न उन्हें हुचकी आने लगीं। हुचकी निवारणके लिये स्वामीजी प्राणायाम करने लगे। इतनेमें अजमेरसमाजसे जेठमल

नामक एक सभासद् आकर उपस्थित हुए*। जेठमल स्वामीजी-की अवस्था देखकर आक्षेप प्रकट करके बोले—"महाराज! यह क्या हुआ? आपने हम लोगोंके पास संवाद क्यों नहीं भेजा?" इसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा—"शरीरका तो यही धर्म है। शरीरकी दशा लिख कर आप लोगोंको वृथा कष्ट क्यों देता?"

जोधपुरमें रोगनिवृत्ति की कोई सम्भावना न देखकर दयानन्द आबू जाने पर उद्यत हुए। आबू जानेके दो विशेष कारण थे। जैसा आबू स्वास्थ्यकारिताके लिए प्रसिद्ध है वैसा ही साधु-महात्माओंके निवासस्थल होनेसे पवित्र था। स्वामीजीने आबू जानेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु महाराज जसवन्तसिंहने उससे अनिच्छा प्रकट की। उन्होंने एक दिन अनुनयके साथ कह कर भेजा कि ऐसी अवस्थामें स्वामीजीका जोधपुर छोड़ना अच्छा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेसे उन पर और जोधपुर पर चिरकाल तक कलङ्क रहेगा। परन्तु जसवन्तसिंहकी इस बातसे दयानन्द सन्तुष्ट नहीं हो सके, और उन्होंने १६ वीं अक्तूबरका दिन आबू जानेके लिये स्थिर कर दिया। सुतरां १५ वीं अक्तूबरके अपराह्णमें महाराज जसवन्तसिंह अनुचरवर्गके साथ स्वामीजीके पास आये, और जिससे कि वह ऐसी अवस्थामें जोधपुर छोड़कर

---

*इस स्थलमें यह कहना उचित है कि स्वामीजीने अपनी पीड़ाके सम्वादसे किसी समाजको सूचना नहीं दी। हमारा विश्वास है कि यदि सूचना देते, तो उनकी पीड़ा इतनी न बढ़ने पाती। १२ वीं अक्तूबरको स्थानीय समाजके किसी सभासद्ने अजमेरमें स्वामीजीकी पीड़ाकी कथा पहिले पहल कही थी; परन्तु अजमेरके लोगोंने उस समय उसका विश्वास नहीं किया। परन्तु उसके पीछे उनका सन्देह बढ़ गया, और उन्होंने स्वामीजीका सम्वाद लेनेके लिये जेठमलको भेज दिया।

न जावें, इस प्रयोजनसे पुनर्वार अनुरोध करने लगे। परन्तु दयानन्दको इस विषयमें कृतप्रतिज्ञ देख कर जसवन्तसिंहको और अनुरोध करनेका साहस नहीं हुआ। तब अगत्या आबू जानेके लिये आयोजन होने लगा। महाराजने २५००) रुपये और उत्तम शाल स्वामीजीको प्रदान किये ※।

इसके भिन्न राजकीय डेरे और शिविका लाई गई। ※ दयानन्द अपने उस रोगजीर्ण देहको लेकर शिविकामें बैठ गये। जसवन्तसिंह स्वयं शिविकाका द्वार पकड़कर स्वामीजीके साथ नगरप्रान्त तक पैदल आये; राजकीय अनुचरवर्ग और अन्यान्य लोग महाराजका अनुगमन करने लगे। विदा समय महाराजने विशेष आक्षेप प्रकट करके कहा:—"आपने श्रीमान् महाराणाको शिक्षा दी है। मुझे भी महाराणाके समान ही समझें। आबू पर आरोग्य होते ही मुझे सम्बाद दें, जिससे कि मैं स्वयं जाकर आपको पुनर्वार जोधपुर ले आऊँ।"

आबूके मार्गमें दयानन्दको कई बार हुचकी और वमन हुई। इस कारण वह अति कष्टसे आबू पर चढ़े। आबू पर पहुँच कर डाक्टर लक्ष्मणदासकी चिकित्सामें रहे। लक्ष्मणदासकी चिकित्सा से स्वामीजीके दस्त और हुचकी बन्द होगई, परन्तु वह वहाँ

※स्वामीजीने इन २५००) रुपये और अन्यान्य सामग्रीको जोधपुरसे चलनेसे पहले ही परोपकारिणीसभाके कोषमें भेज दिया था।

※उस समय कार्तिक मास था, परन्तु तो भी पीड़ाके कारण स्वामीजीको गर्मी लगती थी। इसलिये महाराज स्वयं ग्रीष्मकालमें जिस तम्बूका व्यवहार करते थे वह खसका तम्बू ही स्वामीजीको आबू जाने के समय प्रदान कर दिया।

और अधिक दिन न रह सके, क्योंकि वह एक अङ्गरेज डाक्टरके परामर्शके अनुसार अजमेर आने पर बाध्य होगये। अजमेर पहुँचते ही उनका रोगसमाचार चारों दिशाओंकी आर्यसमाजोंमें फैल गया। तब स्वामीजीकी चिकित्सा सम्बन्धमें आर्यसमाजके प्रधान-प्रधान सदस्य और उनके सुहृदोंकी सम्मतिके अनुसार कार्य होने लगा। परन्तु अजमेरमें उनका रोग क्रमशः सांघातिक हो गया। २८ अक्तूबर तक दयानन्दकी चिकित्सा डाक्टर लक्ष्मणदासके ही अधीन रही। परन्तु २६ अक्तूबरकी रातमें उनका रोग अप्रत्याशित रूपसे वर्द्धित होगया, और उसके रोकनेके लिये सबने उत्कण्ठित होकर प्रातःकाल स्थानीय सिविल-सर्जनको बुलाया। डाक्टर न्यूमैन आये, परन्तु उन्होंने विशेष कुछ नहीं किया। वह १६) रुपयेकी दर्शनी हुण्डी भुनाकर केवल एक व्यवस्थापत्र लिख कर चले गये। सदस्यवर्ग न्यूमैनकी चिकित्सासे सन्तुष्ट नहीं हो सके, इसलिये आगरेको तार द्वारा सम्वाद भेजा गया। परन्तु डाक्टर मुकुन्दलालके पहुंचनेसे पहले ही स्वामीजीका देहान्त हो गया*।

देहान्त होनेसे पहले दयानन्दको वाक्स्फूर्ति हो गई थी। यह कहना बाहुल्य है कि मुखविवरमें बहुत सी छोटी-छोटी फुंसियोंके होजाने से वह कई दिनसे रुद्धवाक हो गये थे। इसलिये देहान्त होनेसे कुछ देर पहले वाक्स्फूर्ति होजानेसे अनेक लोग स्वामीजीकी अवस्थाके विषयमें आशान्वित होगये थे, परन्तु अनेक लोग फिर निराशामें मुह्यमान होगये। अस्तु। स्वामीजीने आत्मानन्द सरस्वती प्रभृति कतिपय सुहृद्जनोंको

*स्वामीजीका देहान्त सन् १८८३ ई० के अक्तूबर मासकी ३० वीं तारीख तदनुसार सम्वत् १९४० विक्रमीके कार्तिक मासकी अमावस्याको हुआ था—अनुवादक।

अपने पास बुलाया। वे शोकार्त्त मूर्त्तिसे उनके समीप गये। समीप जाने पर दयानन्दने कातर कण्ठसे पूछा—"तुम्हारी क्या अभिलाषा है ?" इसे सुन कर आत्मानन्द प्रभृतिकी आंखों-से अश्रुधारा चलने लगी। उन्होंने स्वामीजीकी इस कथाके उत्तरमें वाष्पावरुद्ध कण्ठसे कहा—"हमारी एकमात्र अभिलाषा यही है कि आप आरोग्य हो जांय।" तब दयानन्द प्रीतिके उच्छ्वसित आवेगको न छिपा सके और उनके शिर पर हाथ रखकर रुद्धप्राय स्वरसे धीरेसे कहा—"इस शरीरका और क्या भला होगा ? जो भला है वह चिरकाल ही भला रहेगा। शरीर-का यही धर्म्म है; इसलिये तुम इसके निमित्त शोक मत करो।" यह कह कर दयानन्दने उनसे जाने के लिये और उस कमरेके सारे द्वार और खिड़की खोल देनेके लिये कहा। इतनेमें पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल उदयपुरसे आकर पहुँचे। वह स्वामीजीकी अवस्था जाननेके लिये महाराणाकी आज्ञासे आये थे। मोहन-लालके आने पर स्वामीजीने पूछा कि क्या वार और क्या तिथि है। इसके उत्तरमें मोहनलालने कहा—"दिन मङ्गलवार और तिथि अमावस्या है।" यह सुन कर स्वामीजी उस कमरेकी छत और चारों ओरकी भित्तियोंको देखने लगे ❀। तदनन्तर वह

❀मृत्युके समय स्वामीजीकी और भी दो एक विस्मयकर घटनाओंकी कथा सुनी जाती है। जिस दिन देहान्त हुआ, उस दिन मध्याह्नमें स्वामीजीने कहा कि "पण्डित सुन्दरलालको अभी हमारे पास लाओ।" सुन्दरलाल उस समय अलीगढ़में रहते थे, इसलिये अनुचरोंने कहा कि "सुन्दरलालको अलीगढ़से इस समय लाना किस प्रकार सम्भव हो सकता है।" इसके उत्तरमें दयानन्दने कहा—"सुन्दरलाल अजमेरमें ही है।" किम्बहुना, देहान्तसे कुछ देर पीछे ही सुन्दरलाल आकर उपस्थित होगये।

ध्यानावस्थित होगये और गायत्री मन्त्रका जप करते-करते मर्त्य-लोकसे सब सम्बन्ध छोड़कर अमरधामकी ओर यात्रा कर गये।

उसके पश्चात् अन्त्येष्टिक्रियाका उद्योग होने लगा। उनके देहको स्नान कराकर उस पर चन्दन केसर लगाया गया। इसके भिन्न पुष्पमाला पहना कर स्वामीजीके देहको अति शोभायमान किया गया। इस प्रकार सुसज्जित और सुगन्धित कराकर उस देहको श्मशानभूमिमें ले जानेके लिये उठाया गया। अजमेरके सैकड़ों लोग उस शवके पीछे चले, और कतिपय महात्मा जन इसके अग्रवर्ती होकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चलने लगे कुछ देर पीछे ले जाने वालोंने आकर निदिष्ट*वेदी पर शव को

इनको देख कर सब लोग विस्मित होगये और जिज्ञासा करने पर सुन्दरलालने कहा—"मैं आज मध्याह्नकालमें ही अजमेर पहुँचा हूं।" इसके पश्चात् मृत्युके कुछ घण्टे पहले स्वामीजीने अपने पहरनेके वस्त्रादि उतार कर शिष्योंको दिये थे। इससे अनेक लोग अनुमान करते हैं कि वह अपनी मृत्युके सम्बन्धमें पहलेसे ही निस्सन्देह हो गये थे। और भी एक घटना है कि मृत्युसे कुछ पहले स्वामीजीने अपना केशमुण्डन कराया था। और केशमुण्डनके लिये नाईको पांच रुपये देनेके लिये कहा था। परन्तु जिनके हाथमें रुपये देनेका काम था उन्होंने पाँच रुपये न देकर एकही रुपया दिया। स्वामीजीने पीछे किसी अज्ञातसूत्रसे यह जान कर फिर पांच रुपये देनेका आदेश किया। यह सारी घटनायें साधारण बुद्धिसे बहुत परे हैं—इस विषयमें सन्देह नहीं है।

*स्वामीजीकी आज्ञानुसार वह वेदी वेदविहित प्रणालीके अनुसार निर्मित हुई थी। दयानन्द इतने वेदपरायण थे कि उन्होंने मुमूर्षु शय्या पर लेटे-लेटे भी शिष्यवर्गसे अनुरोध किया

स्थापित कर दिया। वह वेदी नगरके दक्षिणभागमें तारागढ़के नीचे निर्मित हुई थी। शवके स्थापित होने पर पण्डित भागराम नामक एक शिक्षित और सहृदय व्यक्तिने स्वामीजीके सम्पर्कमें कुछ कथायें कहीं। उन्हें सुन कर आये हुए व्यक्तिमात्र विना अश्रुपात किये न रह सके। उसके पश्चात् चार मन घी, पाँच सेर कपूर, आध सेर केसर, दो तोला कस्तूरी, दो मन पांच सेर चन्दन, एक मन पलाश और कई एक मन आमकी लकड़ीके संयोगसे वेदोक्त प्रणालीके अनुसार स्वामी दयानन्दके "भस्मान्त" देहको भस्मस्तूपमें परिणत कर दिया। स्वामी दयानन्दके वियोग में आर्य्यवर्त्त कम्पित हो गया, आर्यप्रकृति-परिम्लाना हो गई, और आर्यजाति अनाथके समान अश्रुपात करती हुई बैठ गई। मैं भी अश्रुपात करता हुआ बैठ गया और पाठकवर्गसे इस यात्रामें इसी स्थलमें विदा लेकर अपनी कम्पाना लेखनीको परित्याग कर दिया।

था कि मृत्युके पश्चात् उनके देहको समाधिस्थ न करके अग्निमें ही दाह करना; क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि जब यजुर्वेदमें 'वायुमनिलमथेदं भस्मान्तꣳशरीरं' इत्यादि वाक्य हैं तब मनुष्यके शरीरका मृत्युके पश्चात् भस्मीभूत होना ही विधेय है। किम्बहुना, शिष्योंने उनके विश्वासके अनुकूल ही कार्य्य किया। इसलिये स्वामीजीके शवको समाधिस्थ करनेके अभिप्रायसे जो संन्यासी आये थे वे सब व्यर्थमनोरथ होकर चले गये।

परिशिष्ट

स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में विदेशियों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सम्मतियाँ

—: ❀ :—

अध्यापक मैक्समूलर

दयानन्द सरस्वतीके जीवनका हमारे पास बहुत पूर्ण वृत्तान्त है। उन्होंने ब्राह्मण धर्म्म में एक बड़े संशोधन का उद्घाटन किया, और जहां तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदारचरित मनुष्य प्रतीत होते हैं। वह ब्राह्मणग्रन्थोंमें अपौरुषेयत्वमें विश्वासको भी छोड़ने पर उद्यत थे, यद्यपि वैदिक मन्त्रोंके सम्बन्धमें इस विश्वासको पूर्ण बलके साथ स्थित रक्खा। उन्होंने वेदों का सविस्तर भाष्य प्रकाशित किया जिससे उनका संस्कृत के साथ गाढ़ परिचय और अति विस्तृत ग्रन्थानुशीलन प्रकट होता है, परन्तु विश्लेषणकारिणी बुद्धि का अत्यन्त अभाव झलकता है। उन्होंने विधवाविवाहको विधेय बतलाया, कुमार और कुमारियोंके अवस्था बढ़ानेके आन्दोलनको सहारा दिया, और अपने आपको जातपात खानपान आदि विषयोंमें बहुतसे निर्मूल विश्वासोंसे स्वतन्त्र सिद्ध किया। उन्होंने मूर्त्तिपूजा और अनेकेश्वरवाद तकका खण्डन किया। योरुपमें भी उनका नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया है जबसे वह उस पाशमें फंसे जो मैडम

ब्लेवट्स्कीने उनके लिये बिछाया था। परन्तु यह अवस्था थोड़े काल तक रही, और जब संन्यासीजीने यह देख लिया कि मैडमका वास्तविक अभिप्राय क्या था, तो उन्होंने उनसे सब प्रकारका सम्बन्ध छोड़ दिया। मैडम वैसी मैत्रेयी न निकली जिसकी उन्होंने आशा की थी। वह अङ्गरेज़ी नहीं जानते थे और मैडम बङ्गला या संस्कृत नही जानती थी, इस कारण आरम्भमें वे एक दूसरेको न समझ सके। परन्तु पीछे आकर, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, वे एक दूसरेको भले प्रकार समझ गये। कुछ ही हो इसमें सन्देह नहीं कि वह बड़े बलवान् विपक्षी थे, और उनका प्रभाव बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ा कि यह सन्देह किया जाता है कि अन्तमें उनके विरोधी कट्टर और एक लकीर पर चलनेवाले ब्राह्मणने अपने भयानक प्रतिद्वन्द्वी को विष दे दिया। उनकी मृत्यु आकस्मिक हुई; परन्तु भारतवर्षमें उनके अनुयायियोंका आर्यसमाजके नामसे अब भी बहुत बड़ा और बढ़ता हुआ समुदाय है। जो योरुपीय प्रभावोंसे अलग रहता है।

मिस्टर फ्रैड्रिक पाथौम !

"स्वामीजीकी मृत्युका समाचार मेरे लिये एक बड़ा प्रहार था।..............उनमें भारतवर्षने एक तत्ववेत्ता खो दिया है सरीखा भविष्यत्में भारतवर्ष में स्यात् कभी नहीं मिलेगा।"

मिसेज़ एनी बेसेन्ट

"मैंने स्वामी दयानन्दकी पुस्तकें कभी नहीं पढ़ीं, परन्तु मैं उन्हें सदैव धार्मिक और सामाजिक सुधारक समझती रही हूँ, न कि राजनीतिमें भाग लेनेवाला। जिस समय उन्होंने 'अपने

ग्रन्थ लिखे थे, उस समय वर्तमान राजनैतिक टण्टोंकी छाया भी नहीं थी; और यह न्याययुक्त नहीं है कि ऐसी पुस्तकको जो वर्तमान अवस्थामें ऐसी लिखी गई हो इसप्रकार काममें लाया जावे कि मानो वह आजकलकी राजनैतिक दशामे सम्बन्ध रखती है। मेरे अनुभवके अनुसार आर्यसमाजकी कार्यवृत्तियां धार्मिक और सामाजिक सुधारोंको उदार भावसे करनेमें लगी हुई हैं। मैं सन् १८६३ मे भारतवर्षमें हूँ, और अबसे पहले मैंने आर्य-समाज पर राजविद्रोहका दोष आरोपित होते हुए कभी नहीं सुना। उसने बालक और बालिकाओं की शिक्षाके विषयमें प्रशस्त कार्य किया है।..............आर्यसमाजमें सम्मलित व्यक्तिविशेष, अन्य धार्मिक सभाओंके व्यक्तियोंकी न्याई, अपनी-अपनी राजनीति सम्बन्धी सम्मतियोंके अनुसार अनेक प्रकारके राजनैतिक कर्म करते हैं, परन्तु इससे आर्यसमाज कोई विशेष राजनैतिकसमूह—अनुदार, राष्ट्रीय, वा अराजक—नहीं बन जाता, जैसे कि ईसाई धर्म इस कारणसे हाउस आव् लार्डसका ध्वंसकर्त्ता नहीं बन जाता कि उदारदलके नेता लोग ईसाई हैं। आर्यसमाजने जो विद्यालय स्थापित किये हैं उनका अभिप्राय यह है कि उच्च आचारवाले और अच्छे नागरिक उत्पन्न किये जायँ या बनाये जायँ, न कि यह कि उनको किसी राजनैतिक दलका अनुगामी बनाया जाय।"

सर सय्यद अहमद

(एम० ए० ओ० कालिज अलीगढ़ के संस्थापक।)

"यह बड़े शोकका विषय है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जो संस्कृतके धुरन्धर पण्डित और वेदोंके बड़े विद्वान थे

अजमेरमें ३० अक्टूबर सन् १८८३ को सायंकालके ६ बजे देहपात हो गया। वह केवल विद्वान् ही नहीं थे, प्रत्युत सत्पुरुष भी थे जिनमें सच्चे तपस्वीके गुण विद्यमान थे।...........वह केवल ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वरकी उपासनाकी शिक्षा देते थे और उसके भिन्न और किसीकी नहीं। हमारी परलोगत स्वामीजीसे मित्रता थी, और हम उनकी सदा बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। वह ऐसे विद्वान् और सत्पुरुष थे कि सम्पूर्ण धर्मोंके अनुयायियोंसे प्रतिष्ठा पानेके योग्य थे।.........वह ऐसे पुरुष थे कि जिनके समान इस समय सारे भारतवर्षमें कोई नहीं मिल सकता। उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है, क्योंकि वह ऐसे अद्वितीय पुरुष थे।"

प्रोफेसर एम० रंगाचारियर एम० ए० मद्रास।

"स्वामी दयानन्द वास्तवमें भारतवर्षके प्रसिद्ध पुरुषोंके तारा-मण्डलमें चमकते हुए सितारे थे।.........स्वामीजी संसारके समस्त हिन्दूधर्मके सच्चे सिद्धान्तोंको प्रकट करनमें समर्थ हुए और उन्होंने यह सिद्ध किया कि हिन्दूधर्म सामाजिक उन्नति और बन्धमोचनके सारे उच्च और उत्तम कार्योंके करने में समर्थ है जिनके करनेका गर्व मूर्तिनाशक इस्लाम और स्वतन्त्र क्रिश्चियन करते हैं ....स्वामी दयानन्दने अपने आपको धर्मोत्तेजक शक्ति का प्रबल केन्द्र सिद्ध किया, जो समाज और सदाचारिता में समानता उत्पन्न करनेमें और उन लोगों में जो उसकी शिक्षाको माननेवाले थे उत्साह और स्फूर्ति और सेवा और स्वार्थत्यागका प्रेम संचारित करनेमें प्रयत्नशील था।"

मिस्टर के० नतरजन

सम्पादक 'इण्डियन-शोशलरिफार्मर' मिस्टर चिरलके लेखकी समीक्षा करते हुए लिखते हैं:—"जब कि मृत सुधारकर्त्ता अस्थियाँ उखाड़ी जायँ और जानबूझ कर उनके विषयमें भ्रान्ति फैलाई जाय, तो यह अनुसन्धान करने योग्य है कि उनके स्वतन्त्र समकालवर्ती उसके और उसके उद्देश्यके विषयमें क्या सम्मति रखते थे। मिस्टर वेलन्टाइन चिरलकी सम्मति यह है कि स्वामी जी राजनीतिके गहरे रङ्गमें डूबा हुआ था, जिसका लक्ष्य ब्रिटिश-राज्यको विपर्यस्त करना था। वह कहते थे कि दयानन्दकी सम्पूर्ण शिक्षाओंका प्रयोजन उतना हिन्दूधर्मको सुधारना नहीं था जितना विदेशी प्रभावको बलपूर्वक रोकनेके लिये उत्तेजना देना था। यह सर्वथा सत्य है कि सुधरा हुआ हिन्दूधर्म बेसुधरे हिन्दूधर्मकी अपेक्षा अधिक कड़ा ग्राहक होगा, परन्तु यह कहना कि वेदोंके अधिक शुद्ध और वीररसयुक्त धर्मकी ओर चलनेकी प्रेरणा करनेमें दयानन्दके हार्दिक भाव राजनैतिक थे न कि आध्यात्मिक अन्तिम निर्णयके दिनको पहलेसे ही आया हुआ मान लेना है, जैसा मिस्टर ग्लैडस्टनने एक बार एक ऐसी ही घटनाके सम्बन्धमें कहा था। स्वामीजीके जीवनकी थोड़ीसी प्रारम्भिक घटनाओंके जान लेनेसे ही मिस्टर चिरल उसके जीवनोद्देश्यके विषयमें ऐसी बड़ी भूल करनेसे बच जाते। बालकपन ही से वह धर्म-पुस्तकोंके पढ़नेकी ओर झुका हुआ था। वह अपने घरसे विवाहसे बचने के लिये भागा था, और एक स्थानसे दूसरे स्थानमें घूमता फिरा। वह सत्यके अनुसन्धानमें पर्यटन करनेवाला और संन्यासी था जिसने ऐसे समयमें जबकि वह अपनी पैत्रिक सम्पत्तिमें धन और सुख-सम्पन्न अवस्थामें रह सकता था, निर्धनता, ब्रह्मचर्यके साथ लोकप्रसिद्धिसे दूर रहनेका व्रत

धारण किया।......समाचार-पत्रलेखन वास्तवमें बहुत ही नीचे गिर जायगा यदि वह ऐसे महापुरुष की जिसके जीवनकार्यको जिसे हमारे सहस्रों भाई गुरु और आचार्य मान कर बड़ीसे बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं तोड़ने मरोड़नेकी आज्ञा दे। हमारा इस लेखमें आर्यसमाजके वर्तमान लक्ष्य और कार्यप्रणालीसे कोई सम्बन्ध नहीं है, और यदि मि० वेलन्टाइन चिरल उन्हीं तक रहते, तो हम रक्षा करनेके कार्यको उन लोगों पर छोड़ देते जो उस समूहमें सम्मिलित हैं। परन्तु एक मृत पुरुषकी देहभस्मको इस प्रकारसे उखाड़ना घृणित कार्य है, चाहे वह मृत पुरुष कोई प्रतिष्ठाशाली व्यक्ति भी न हो। स्वामी दयानन्द ऐसा व्यक्ति नहीं था। उसमें अलौकिक उत्पादक-शक्तिकी दिव्य चिंगारी थीं; और जब कि हममेंसे बहुतोंको दयामयी विस्मृतिमें विलीन हुए बहुत समय बीत जायगा, तब भी उसका नाम उस पुरुषके नामके समान स्मरण किया जायगा जिसके छूनेसे ही घाटीमें पड़ी हुई सूखी अस्थियाँ सजीव हो जाती थीं। क्या युवाभारतको सम्मान, सदाचार और धर्मकी शिक्षा देनेका यही मार्ग है?"

मिस्टर पी० हैरिसन

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट प्रयाग, अभियोग राजराजेश्वर बनाम आलारामके निर्णय ता० २६ नवम्बर १६०२ में कहते हैं:—"इन उद्धृत अंशोंमें मैं राजद्रोहकी उकसाहटके कोई चिह्न नहीं पाता, प्रत्युत उनमें शोक प्रकट किया गया है कि हिन्दू लोग बहुतसे धार्मिक और सदाचार सम्बन्धी कारणोंसे एक परतन्त्र जाति बन गये हैं। मुझे दयानन्दके प्रचारका साधारणतः यह उद्देश्य जान पड़ता है कि वह सुधारके लिये प्रबल प्रेरणा थी जिसका स्यात् यह लक्ष्य था कि अन्तमें राज देशीय हाथोंमें वापिस

आजाय। एक प्रकारसे दयानन्दने यह मान ही लिया है कि आजकलके हिन्दुओंके गुणोंमें ऐसे स्वाभाविक दोष हैं जिन्होंने उन्हें अपने ऊपर शासन करनेके अयोग्य बना दिया है।"

———

मिस्टर एच० डबल्यू० नेविन्सन

अपने पुस्तक 'भारतवर्ष में नया जीवन' नामकमें कहते हैं:—"...........परन्तु दोनों (महात्मा पार्टी तथा कलचर्ड पार्टी) अपने संस्थापक दयानन्द सरस्वतीके सिद्धान्तोंके अनुयायी होनेका आग्रह करते हैं, जिन्होंने सन् १८८३ ई० में अजमेरमें ऐहिक जीवनको छोड़ कर प्रयाण किया। उनका जीवन परिव्राजकका जीवन था, पवित्र धनजुगुप्सासे युक्त था, जिसे उन्होंने मूर्तिपूजा, जातपातके बन्धन, पशुबलिदान, कामुकतासे युक्त आचार, अनेक देवता और अन्य ऊपरी बनावटोंके खण्डनमें लगाया हुआ था, जिनसे दुर्बल आत्मावाले मनुष्योंने ईश्वरोक्त वेदोंकी स्वच्छ निर्मलताको छिपा दिया था। दयानन्दने विषयजनित विवाहके बन्धनमें पड़नेसे एक जातिच्युत मनुष्यके समान घर छोड़ना अच्छा समझा और उन्होंने युवावस्था और तरुणावस्थाके पहले भागके १६ वर्ष उत्तर भारतमें पवित्र स्थानोंमें घूमनेमें व्यतीत किये।..................और विज्ञानकी भूखके कारण उन्होंने हर जगह उस गुरूका अनुसन्धान किया जिसके चरणोंमें बैठ कर वह उस विज्ञान का आनन्द भोग सकें। अन्तमें उन्हें वह विज्ञान निकट ही मिल गया अर्थात् उन्हीं धर्मग्रन्थोंमें जिनको उन्होंने रात दिन विचारा था, और सुधारके उत्साहसे परिपूर्ण होकर वह बनारस और धार्मिक ज्ञानकी अन्य पीठोंकी ओर गये, जहाँ कि वह पण्डितोंको परास्त कर सकें जिनके अन्धकारयुक्त हृदयोंने परमात्माके पवित्र वचनके दृढ़ प्रकाशको

धुधला कर दिया है। एक नगरके पीछे दूसरे नगरमें बड़े-बड़े श्रोतृसमूहके सामने शास्त्रार्थ किये गये, और दयानन्दने अपने अकेले ज्ञानसे सारे धर्मनेताओंके सम्मिलित पुरोहितोचित द्वेष-का सामना किया। साधारणतः बृटिश राजके स्थानिक प्रीतिनिधिको सभापतिका आसन ग्रहण करके और धार्मिक विषयों पर विवादोंकी सूक्ष्मताओंमें न्याययुक्त व्यवहार स्थित रखने या पारितोषिक प्रदान करनेके लिये निमन्त्रित किया जाता था। यह ऐसा काम था कि जिसके लिये हमारे पब्लिक विद्यालयोंकी शिक्षा हमें विशेष रूपसे सज्जित नहीं करती, परन्तु बहुधा पण्डित लोग स्वयं ही बृटिश प्रतिनिधिको दार्शनिक विषयोंके निर्णय करनेके कठिन कार्यसे छुटकारा दे देते थे, क्योंकि वह यह समझ कर कि हम परास्त होंगे कोलाहल मचाकर सभाको विसर्जन कर देते थे। स्यात् यह दयानन्दके उद्देश्यके लिये अच्छा नहीं हुआ कि उसने अपने कार्यको हिन्दुओंके विश्वास और समाजिक बुराइयों तक ही परिमित नहीं रक्खा, प्रत्युत वह उन अनुचित अवस्थाओं और व्यवहारों पर आक्रमण करनेमें भी वैसे ही प्रचण्ड था जो खिृष्टीय धर्म और इस्लामके चारों ओर इकट्ठे हो गये हैं, और हम कह सकते हैं कि उस बड़े द्वेषका कारण जो ईसाई और मुसलमान प्रचारकोंने समाजके प्रति दिखलाया है दयानन्दकी वह सफलता थी जो उनको हिन्दु-ओंके अन्य मतोंके स्वीकार करनेके कार्यको रोकनेमें हुई।" ❀

❀ यह परिशिष्ट 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक अंग्रेजी पुस्तिकासे उद्धृत किया गया है।